# प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन
## (प्रारम्भ से - 8वीं शताब्दी तक)

**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)**

**डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी**

**(Ph.D.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत**

**शोध प्रबन्ध**


**शोध निर्देशिका:-**

**प्रो. डॉ. (श्रीमती) कमलेश शर्मा**
**पूर्व आचार्या व विभागाध्यक्ष (इतिहास विभाग)**
**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,**
**कोटा (राजस्थान)**

**शोधार्थी:-**

**प्रभावती मालव**
**VMOU/Research/Ph.D./HI/2015/70**
**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,**
**कोटा (राजस्थान)**


**इतिहास विभाग**

**मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ**

**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)**

**वर्ष 2022**

शोध विषय

# प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन

(प्रारम्भ से - 8वीं शताब्दी तक)

# DECLARATION

I hereby, declare that the thesis entitled, **प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन (प्रारम्भ से - 8वीं शताब्दी तक)** submitted for the award of the degree of Doctor of Philosophy (Ph.D) in History, Vardhman Mahaveer Open University, Kota is a faithful record of the bonafide research work carried out by me. The work is original and has not been submitted previously to any other university for any other degree. I have carried out the present research under the able guidance and supervision of Professor (Dr.) Kamlesh Sharma, Department of History, Vardhman Mahaveer Open University, Kota. The sources of material used and all assistance received during the course of research have been duly acknowledged. The thesis has been submitted in accordance with the "University Grants Commission (Minimum Standards and Procedure for award of Ph.D. Degree), Regulations 2009."

Place– Kota
Date:

**Prabhavati Malav**
**Research Scholar**
**Reg.No: VMOU/Research/Ph.D/ HI/ 2015/ 70**
**Department of History V.M. Open University, Kota (Rajasthan)**

**प्रो. डॉ. कमलेश शर्मा**
**पूर्व आचार्या व विभागाध्यक्ष**
**व. म. खु. विश्वविद्यालय,**
**कोटा (राजस्थान)**

**इतिहास विभाग**
**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,**
**कोटा (राजस्थान)**

# CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled, **प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन (प्रारम्भ से - 8वीं शताब्दी तक)**, submitted for the award of the degree of Ph.D. in History, Vardhman Mahaveer Open University, Kota is a faithful record of the bonafide work carried out by **Prabhavati Malav** under my supervision and guidance. The work is carried out by her and no part of the thesis has been submitted by her to this university or any other university for any degree.

She has fulfilled the requirements for the degree of Doctor of Philosophy in History at Vardhman Mahaveer Open University, Kota, Rajasthan, regarding the nature and prescribed period of work as per UGC Ph.D. Regulations, 2009.

Place - Kota
Date :

**Prof. (Dr.) Kamlesh Sharma**
**Former Professor and Head,**
**Departinent of History,**
**Vardhman Mahaveer Open University, Kota (Rajasthan)**

# CERTIFICATE

## Pre-Ph.D. COURSE WORK COMPLETION

This is to certify that **Prabhavati Malav**, a Reasearch scholar in History, Vardhman Mahaveer Open University Kota, Rajasthan, India has successfully completed the Pre-Ph.D. course work and passed the exam. of the same subsequently as a part and requirement of Ph.D. Programme as per the UGC Ph.D. Regulations, 2009.

The course work has been completed in accordance with the "University Grants Commission (Minimum Standards and Procedure for award of Ph.D. Degree) Regulations, 2009."

Place - Kota
Date :

**Director (Research)**
Vardhman Mahaveer Open
University, Kota (Rajasthan)

# SUBMISSION

## Pre-Ph.D. COMPLETION CERTIFICATE

This is to certify that **Prabhavati Malav**, a Reasearch scholar in History, at the Deparment of History, Vardhman Mahaveer Open University Kota, Rajasthan, India has satisfactorily completed the Pre–Ph.D Seminar Presentation, 2009. The thesis also complies with UGC Ph.D Regualations, 2009

The Pre-Ph.D. Submission Presentation has been given in accordance with the "University Grants Commission (Minimum Standards and Procedure for award of Ph.D. Degree), Regulations 2009."

Place - Kota

Date :

**Director (Research)**

Vardhman Mahaveer

Open University, Kota (Rajasthan)

# आभार

परम श्रद्धेय आदरणीया प्रो. (डॉ.) श्रीमती कमलेश शर्मा पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज0) की हृदय से आभारी हूँ कि आपने शोध प्रबंध की रूपरेखा निर्माण एवं विषय वस्तु के चयन से शोध प्रबंध के पूर्ण करने तक अपने विद्वतापूर्ण निर्देशन, आत्मीयतापूर्ण मार्गदर्शन व सतत् अभिप्रेरणा से मेरा मार्ग प्रशस्त एवं अभिप्रेरित किया। आपकी अध्ययन के प्रति निरन्तरता, सक्रियता एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने कार्य के प्रति तत्परता ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया है। आपका अमूल्य मार्गदर्शन, अनुपम सहयोग एवं अप्रतिम योगदान मुझे सदैव प्रेरित करते रहेंगे।

मैं, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा के प्रो. (डॉ.) आर.एल.गोदारा, कुलपति महोदय, प्रो. (डॉ.) विनयकुमार पाठक, पूर्व कुलपति एवं प्रो. (डॉ.) अशोक शर्मा, कुलपति, आप सभी के प्रति अपना विशेष आभार व्यक्त करती हूँ कि आपके कार्यकाल में मुझे यह शोध कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

डॉ. क्षमता चौधरी, शोध निदेशक, पूर्व प्रो. (डॉ.) याकूब अली खान इतिहास विभाग वी.एम.ओ.यू. कोटा, पूर्व प्रो. (डॉ.) दिनेश कुमार गुप्ता, वी.एम.ओ.यू. कोटा, डॉ. सुबोध कुमार, पूर्व शोध निदेशक, डॉ. पतंजलि मिश्रा आप सभी को हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ कि आप व्यस्त होने पर भी बेहतर शोध कार्य के लिए प्रेरित एवं सहयोग करते रहे। साथ ही विश्वविद्यालय के प्रो. (डॉ.) पी.के.शर्मा, प्रो. (डॉ.) बी.अरूण कुमार, डॉ. अनिल कुमार जैन, डॉ. अखिलेश कुमार, डॉ. आलोक चौहान, डॉ. कीर्ति सिंह, डॉ. अनुरोध गोधा, डॉ. कपिल गौतम, डॉ. सुरेन्द्र कुलश्रेष्ठ, डॉ. अकबर अली एवं फेकल्टी के अन्य महानुभावों की मैं हार्दिक आभारी हूँ कि आप सभी के द्वारा करवाये गये पी.एच.डी. कोर्स वर्क में रिसर्च मैथाडोलॉजी एवं शोध क्रियाकलाप का गुणवत्तापूर्ण शिक्षण एवं सेमीनार, वर्कशाप, शोध प्रस्तुतीकरण सेमीनार में आपके अमूल्य अनुभवों से मैं विशेष लाभान्वित हुई।

शोध विभाग के कनिष्ठ लिपिक सुरेश कुमार सैनी जिन्होंने निरन्तर शोध कार्य प्रगति के प्रति सजगता, सतर्कता एवं प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी मार्गदर्शन दिया तथा यू.जी.सी. एवं विश्वविद्यालय की शोध संबंधी नवीनतम जानकारियों से अवगत करवाते

रहे साथ ही श्री बालकिशन, सहायक कर्मचारी उनके विनम्रतापूर्ण व्यवहार एवं सहयोग के लिए आभार व्यक्त करती हूँ।

वी.एम.ओ.यू. की लाइब्रेरी जो मेरे शोधकार्य में अलादीन का चिराग साबित हुई है इसकी मैं दिल से प्रशंसा करती हूँ, एवं लाइब्रेरी के समस्त स्टाफ के प्रति विशेष कृतज्ञ हूँ, साथ ही प्रोफेसर कमलेश शर्मा जी की व्यक्तिगत लाइब्रेरी से भी बहुत सी पुस्तकें, शोध पत्रिकायें व शोध ग्रन्थ मेरे शोध में सहायक रहे।

उन समस्त लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिनके द्वारा किये गये कार्यों का सहयोग शोधकार्य में लिया है।

मैं अपने कार्यरत विभाग (शिक्षा विभाग) के प्रति भी कृतज्ञ हूँ कि मुझे पी.एच.डी. करने की अनुमति प्रदान की।

मैं अपने समस्त परिवार के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सहयोग एवं स्नेहमयी भावना के कारण मैं अपनी पी.एच.डी. थीसिस प्रस्तुत कर रही हूँ। पिता श्री रामचन्द्र मालव (रि. प्राचार्य) माता श्रीमती रूकमणी मालव, बड़े भाई राजेश मालव (अध्यापक) जिनके आशीर्वाद से मैं शोधकार्य पूर्ण कर सकी। इसके साथ ही मेरा आभार एवं कृतज्ञता पति श्री बृजराज मालव (AEN) जिन्होंने मुझे पारिवारिक दायित्व से मुक्त रखा, मेरी ऊर्जा के स्त्रोत पुत्री उर्वशी मालव व पुत्र उत्सव के प्रति है जो मेरा मानसिक सम्बलन बनें। आभार अनुजा किरन मालव - राहुल विष्ट को जिन्होंने मेरी तकनीकी समस्याओं का समाधान किया। साथ ही आभार सरस्वती कम्प्यूटर्स, कोटा का जिन्होंने इस सम्पूर्ण शोध ग्रंथ को मेरे शब्दों में ढालकर एक पुस्तक का रूप प्रदान किया।

- प्रभावती मालव

Curiginal

## Document Information

| | |
|---|---|
| **Analyzed document** | Plag check (Prabhavati Malav).docx (D137777556) |
| **Submitted** | 2022-05-24T10:51:00.0000000 |
| **Submitted by** | Kshamata Chaudhary |
| **Submitter email** | kchaudhary@vmou.ac.in |
| **Similarity** | 9% |
| **Analysis address** | kchaudhary.vmou@analysis.urkund.com |

## Sources included in the report

| | | |
|---|---|---|
| SA | **_____ _____.doc**<br>Document ..... doc (D82161556) | |
| SA | **Chapter 01.docx**<br>Document Chapter 01.docx (D77182161) | |
| SA | **Ranjna Devi.doc**<br>Document Ranjna Devi.doc (D109989957) | |
| SA | **chapter 2.docx**<br>Document chapter 2.docx (D77868053) | |
| SA | **Gulab Chand Singh_History_P.237.docx**<br>Document Gulab Chand Singh_History_P.237.docx (D121964463) | |
| SA | **Sansrkrit_Purnima Pandey.docx**<br>Document Sansrkrit_Purnima Pandey.docx (D132447571) | |
| SA | **Chapter 02.docx**<br>Document Chapter 02.docx (D77577663) | |

# विषय सूची


| विवरण | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| ➢ DECLARATION | i |
| ➢ CERTIFICATE | ii |
| ➢ PRE-Ph.D. COURSE WORK COMPLETION CERTIFICATE | iii |
| ➢ PRE-Ph.D. SUBMISSION COMPLETION CERTIFICATE | iv |
| आभार | v-vi |
| PLAGIARISM REPORT | vii |
| विषय-सूची | viii-xii |
| छायाचित्र सूची | xii |
| शोध का महत्व | xiii |
| शोध के उद्देश्य | xiv |
| शोध क्षेत्र एवं प्रविधि | xv |
| संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन | xvi-xxv |
| अध्याय-प्रथम | |
| प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली का स्वरूप | 1-77 |
| खण्ड – अ<br>प्रस्तावना -<br>● प्राकृतिक स्वरूप में शिक्षा<br>● मान्यतापूर्ण स्वरूप में शिक्षा<br>● शिक्षा की आवश्यकता<br>● शिक्षा के उद्देश्य | 1-10 |
| खण्ड – ब<br>शिक्षा का स्वरूप<br>● सैंधवकाल में शिक्षा का स्वरूप<br>● वैदिक काल में शिक्षा का स्वरूप<br>● रामायण काल में शिक्षा का स्वरूप<br>● महाभारत काल में शिक्षा का स्वरूप | 10-26 |

| | |
|---|---|
| • बौद्धकाल में शिक्षा स्वरूप<br>• मौर्यकाल में विद्या विषयक विचार एवं महत्व<br>• मौर्यकालीन भारत में शिक्षा विकास<br>• गुप्तयुगीन समाज में भाषा और शिक्षा<br>• हर्षकालीन शिक्षा एवं हर्ष का विद्यानुराग | |
| खण्ड - स<br>शिक्षा का सुव्यवस्थित प्रारम्भ -<br>• शिक्षा काल, अवधि एवं अवकाश<br>• शिक्षा संस्कार<br>• शिक्षा प्रारम्भ करने के लिए विद्यार्थी आयु व शिक्षावधि<br>• पाठ्य विषय एवं अध्ययन प्रक्रिया<br>• शिक्षण प्रणाली एवं शिक्षा प्रविधियाँ<br>• प्राचीन भारत में शिक्षा के विभाग एवं विषय<br>• शिक्षण संस्थाओं की प्रबंध व्यवस्था एवं आर्थिक संरक्षण<br>i. वैदिक काल में शिक्षा का प्रशासन एवं वित्त<br>ii. शिक्षा संस्थाओं की प्रबंध व्यवस्था<br>iii. शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक संरक्षण | **26-52** |
| खण्ड - द<br>• गुरू-शिष्य स्वरूप -<br>• शिक्षकों की योग्यता<br>• गुरू की आवश्यकता एवं महत्व<br>• गुरू-शिष्य संबंध<br>• गुरू का स्वरूप एवं कर्तव्य<br>• शिष्य का स्वरूप एवं कर्तव्य<br>• प्राचीन गुरूकुल और उनके आचार्य | **52-67** |
| सन्दर्भ | **68-77** |

| विवरण | **पृष्ठ संख्या** |
|---|---|
| अध्याय-द्वितीय | |
| सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की भूमिका | **78-107** |
| खण्ड - अ<br>● प्रागैतिहासिक काल की नारी<br>● वैदिक काल में नारी<br>● महाकाव्यकाल में नारी<br>● मौर्यकाल से पूर्व मध्यकाल तक नारी<br>● स्मृति एवं धर्मसूत्र काल में नारी | **78-84** |
| खण्ड - ब<br>● राजनीतिक क्षेत्र में नारी की भूमिका<br>● आर्थिक क्षेत्र में नारी की भूमिका<br>● नारी का धार्मिक क्षेत्र में स्थान<br>i. धार्मिक क्षेत्र में नारी<br>ii. धार्मिक समारोह एवं उत्सव में महिलाओं की सहभागिता<br>iii. स्त्रियों का लौकिक विश्वास<br>iv. धार्मिक जीवन में देवदासी<br>● सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका<br>i. पारिवारिक पृष्ठभूमि में महिला<br>ii. दाम्पत्य जीवन में महिला भूमिका<br>iii. प्राचीन काल की स्त्रियों के जीवन में आनन्दोत्सव | **84-103** |
| सन्दर्भ | **104-107** |
| अध्याय-तृतीय | |
| प्रारम्भिक काल से मौर्य काल तक महिला शिक्षा | **108-122** |
| ● वैदिक काल में महिला शिक्षा<br>● उपनिषद काल में महिला शिक्षा<br>● महाकाव्य काल में महिला शिक्षा | **108-122** |

| | |
|---|---|
| • बौद्ध एवं जैन युगीन महिला शिक्षा<br>• स्मृतिकाल में महिला शिक्षा<br>• प्राचीन भारत में सहशिक्षा<br>• प्राचीनकाल में महिलाओं की उच्च शिक्षा | |
| सन्दर्भ | **121-122** |
| अध्याय-चतुर्थ | |
| मौर्योत्तर काल से पूर्व मध्यकाल तक महिला शिक्षा | **123-136** |
| • मौर्योत्तर काल में महिला शिक्षा<br>• स्मृतियों में महिला शिक्षा<br>• गुप्तकाल में महिला शिक्षा<br>• गुप्तकाल एवं पूर्व मध्यकाल के मध्य नारी<br>• पूर्व मध्यकाल में महिला शिक्षा<br>• राजपूत काल में महिला शिक्षा | **123-136** |
| सन्दर्भ | **136** |
| अध्याय-पंचम | |
| प्राचीन काल की प्रमुख विदुषी महिलाएँ | **137-199** |
| • वैदिक कालीन विदुषी महिलाएँ<br>प्रस्तावना, घोषा, विश्ववारा, सिकता-निवावरी, अदिति, अपाला, इन्द्राणी, शाश्वती, दक्षिणा, यम-यमी, रोमशा, शची, गोधा, श्रद्धा, सार्पराज्ञी, सरमा, लोपामुद्रा, शिखंडिनी- काश्यपी, मंत्र के महत्त्व को समझने वाली नारियाँ, नारी के विभिन्न प्रमाणिक रूप | **137-164** |
| • उत्तर वैदिककालीन विदुषियाँ<br>मैत्रेयी, गार्गी, गन्धर्व गृहीता, अरून्धती, वाक् | **165-170** |
| • रामायण काल की विदुषियाँ<br>कौशल्या, सीता, कैकयी, शबरी, मंदोदरी, अनुसूया, अनुसूया द्वारा सीता जी को शिक्षा, अन्य विदुषी महिलाएँ- तारा, अहल्या | **170-177** |

| | |
|---|---|
| • महाभारत काल की विदुषी महिलाएँ<br>कुंती , गान्धारी, द्रोपदी, शकुन्तला, काशकृत्सनी, देवयानी, शिवा, उत्तरा | **177-183** |
| • बौद्ध व जैन काल की विदुषी महिलाएँ<br>भद्राकुण्डलकेशा, सुक्का, खेमा, धम्मदिन्ना, संघमित्रा, पाटच्चरा, अंजली, जयंती, कुण्डलकेशा अन्य विदुषियाँ | **183-185** |
| • मौर्योत्तरकाल से पूर्वमध्य काल तक की प्रमुख विदुषी महिलाएँ<br>राजश्री, चित्रलेखा, रूसा, अवन्ति सुन्दरी, मोरिखा एवं विज्जा, उभय भारती, राजकुमारी उषा | **186-189** |
| **सन्दर्भ** | **190-199** |
| ➢ उपसंहार | **200-210** |
| ➢ सन्दर्भ मूल ग्रंथ सूची | **211-213** |
| ➢ सन्दर्भ ग्रंथ सूची | **213-218** |
| ➢ जर्नल्स | **218-219** |
| ➢ आर्टिकल्स | **219** |
| ➢ शोध लेख एवं रिपोर्ट्स, कोश | **220** |
| ➢ पत्र-पत्रिकाएँ | **221** |
| ➢ WIKISOURCE | **222** |
| ➢ पुस्तकालय | **223** |
| ➢ परिशिष्ट - प्रकाशित शोध-पत्र, सेमीनार, वर्कशाप प्रमाण पत्र | **224-243** |


## छायाचित्र सूची


| क्र.सं. | विवरण पृष्ठ संख्या | |
|---|---|---|
| 2.1 | प्रागैतिहासिक काल की नारी | **80** |
| 3.1 | वैदिक कालीन नारी | **110** |
| 3.2 | युद्धभूमि में नारी | **112** |
| 3.3 | गार्गी | **119** |

## शोध का महत्व

किसी भी देश की विरासत उसकी सभ्यता एवं संस्कृति होती है। भारतीय समाज एवं संस्कृति को जानने का प्रमुख स्त्रोत प्राचीन भारतीय इतिहास है। संस्कृति में वह सब शामिल है, जो समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिया जाता है, जैसे संस्कार ज्ञान, धार्मिक विश्वास, कला, कानून नैतिक नियम, रीति-रिवाज, तौर तरीके, साहित्य, भाषा इत्यादि। संस्कृति की संवाहक होती है 'शिक्षा'।

प्राचीन काल में नारी को शिक्षा ने किस प्रकार सशक्त बनाया? सम्मान की दृष्टि से समय-समय पर उसकी स्थिति में क्या परिवर्तन आया? प्राचीन काल की स्त्रियां दार्शनिक, कवियित्रियाँ, संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं की ज्ञाता, गीत, कला, संगीत, नृत्य, सैन्य शिक्षा में निपुण थी। इसका शैक्षणिक का आधार क्या रहा होगा? इस शोध के माध्यम से प्राचीन भारत में सामान्य एवं उच्च वर्ग की महिला शिक्षा की वास्तविक स्थिति की खोज करके वर्तमान में उसकी उपयोगिता एवं अनुपयोगिता को समाज के सामने अपनी भारतीय संस्कृति के सकारात्मक एवं नकारात्मक स्वरूप को महिला शिक्षा संदर्भ में प्रस्तुत करके समाज के लिए इस शोध को उपयोगी बनाना है।

## प्रस्तुत शोध के उद्देश्य

प्राचीन भारत में महिला शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन (प्रारम्भ से - 8वीं शताब्दी तक) करना जिसमें सैंधवकाल से राजपूत काल के प्रारम्भ तक महिला शिक्षा स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

- प्राचीन भारत में महिला शिक्षा के स्वरूप का ऐतिहासिक अध्ययन करना।
- प्राचीन भारत में शैक्षणिक संस्थानों में महिला प्रवेश की स्थिति एवं प्रोत्साहन का अध्ययन करना।
- महिलाओं से सम्बन्धित पाठ्यक्रम एवं शैक्षणिक गतिविधियों का अध्ययन करना।
- महिलाओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करना।
- प्राचीन काल में साहित्य, कला के आदर्शमय चित्रण एवं व्यावहारिक रूप में शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करना।
- सभी वर्ग की महिला शिक्षा व्यवस्था की तुलनात्मक स्थिति को प्रस्तुत करना।
- महिला शिक्षा को दिये जाने वाले पारिवारिक व राजकीय संरक्षण का अध्ययन करना।

## शोध क्षेत्र एवं प्रविधि

**शोध क्षेत्र -**

प्राचीन भारत में (प्रारम्भ से - 8वीं शताब्दी तक) सैंधवकाल से राजपूत काल के प्रारम्भ तक।

**शोध प्रविधि -**

ऐतिहासिक शोध पद्धति से प्रस्तावित शोध प्रस्ताव पूर्ण किया गया।

ऐतिहासिक शोध पद्धति -

जो कार्य या घटनाएं भूतकाल में घटित हो चुकी हैं, उन घटनाओं को समझने एवं समझाने के लिए सुव्यवस्थित तरीके से तथ्यों का संग्रह, विश्लेषण, व्याख्या तथा उस संदर्भ में उसे विस्तृत रूप से समझना ऐतिहासिक शोध पद्धति है।

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में ऐतिहासिक शोध पद्धति द्वारा मूल ग्रन्थ, प्राथमिक स्त्रोतों, द्वितीयक स्त्रोतों, का उपयोग किया गया। समस्त वांछनीय अभिलेखीय स्त्रोत, प्रमाणिक रिकार्ड आदि का विश्लेषण करके शोध प्रबन्ध में उपयोग किया गया। प्राचीन भारतीय इतिहास पर शोध एक दुरूह कार्य है, क्योंकि अधिकतर स्त्रोत नष्ट कर दिये गये हैं, बहुत सों का अनुवाद संशय उत्पन्न करने वाला है। समसामयिक एवं संदर्भ ग्रंथों, जर्नल, पत्रिकाओं, शोध-पत्रों, कोश और विकिसोर्स को भी शोध में स्थान दिया गया है तथा शोध सामग्री संकलन में विभिन्न पुस्तकालयों की सहायता ली गई है।

भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर एवं कोटा स्थित इसकी शाखा से प्राथमिक स्तर की शोध सामग्री संकलित की गई है।

# संबंधित साहित्य का पुनरावलोकन

**पुस्तक समीक्षाः-**

**"प्राचीन भारत (प्रा. से 1200 ई. तक)" पंचम संशोधित संस्करण, 2005, जैन प्रकाशन मंदिर, जयपुर, लेखक – डॉ. कमलेश शर्मा, पी.एल.गौतम**

इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत ब्राह्मण ग्रंथ, बौद्ध-जैन साहित्य, धर्मेत्तर साहित्य, विदेशियों का विवरण, अभिलेख, स्मारक, मुद्राएँ, मुहरों का उल्लेख किया है, जो प्राचीन इतिहास को तर्क संगत ढंग से समझाते हैं। पुस्तक सुबोध शैली में रोचक ढ़ग से लिखी गई है, इसमें प्राचीन भारतीय राज्य व प्रशासन, समाज व अर्थव्यवस्था, धर्म, कला, साहित्य एवं विज्ञान आदि का विस्तृत एवं आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। लेखकगण ने आधुनिक विद्धानों के महत्वपूर्ण ग्रंथों का समुचित उपयोग करते हुए विषय से सम्बन्धित आवश्यक सामग्री को एक युक्तिसंगत तरीके से प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में प्राचीन भारत की प्रमुख घटनाओं, परिवर्तित अवस्थाओं, सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ ही शिक्षा एवं ज्ञान, दार्शनिक विचारधाराओं, प्रौद्योगिकी, स्थापत्य, शिल्प की विस्तृत जानकारी को समाहित किया गया है। पुस्तक में मूल ग्रंथों का उचित संदर्भ एवं पुरातत्व स्थापत्य को छाया चित्रों से अलंकृत किया है। यह पुस्तक सभी प्रतियोगियों, शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है।

**पुस्तक समीक्षाः-**

**"धर्मशास्त्र का इतिहास" 1600, प्रथम संस्करण, प्रकाशन- हिन्दी समिति, सूचना विभाग लखनऊ, उत्तर प्रदेश, लेखक- पी.वी. काणे (पाण्डूरंग वामन काणे)**

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म की विस्तृत क्षेत्र एवं व्यापक अर्थ में व्याख्या की गई है। व्यापक दृष्टि से हिन्दू धर्म-स्वरूप की ठीक-ठीक व्याख्या करना और विभिन्न धर्मग्रंथों के आधार पर उसके नियमों, सिद्धान्तों आदि का विवेचन 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में किया गया है। वेदों से लेकर उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों की प्रचुर सामग्री का सुचारू रूप से अध्ययन, संकलन, सम्पादन आदि का भागीरथ प्रयत्न विलक्षण प्रतिभावान लेखक महोदय पी.वी. काणे ने किया है। यह ग्रंथ जो, मूलग्रन्थ पर आधारित है, मेरे लिए शोध में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

**पुस्तक समीक्षाः-**

**हिन्दू सभ्यता में नारियों की स्थिति, संस्करण 2020, प्रकाशन- राजस्थानी ग्रन्थगार, जोधपुर, लेखक ए.एस, अल्तेकर (अनु.) प्रो. गणेशीलाल सुथार.**

यह पुस्तक, भारतीय विश्व इतिहासकार प्रो. ए. एस. अल्तेकर द्वारा रचित "The Position of women in Hindu civilization" नामक उत्कृष्ट और अद्वितीय ग्रंथ का "हिन्दू सभ्यता में नारियों की स्थिति" शीर्षक से युक्त यह हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक में प्रागैतिहासिक कालावधि से लेकर आधुनिक काल के प्रारम्भ तक हिन्दू नारी जाति के जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण अवस्थाओं और पक्षों का तुलनात्मक, समीक्षात्मक और विशद विवेचन किये जाने के कारण डॉ. अल्तेकर का ग्रंथ सर्वातिशायी, अतिविशिष्ट और अद्वितीय है।

इस ग्रंथ के ग्यारह अध्यायों में हिन्दू नारियों की बाल्यावस्था और शिक्षा, विवाह-विच्छेद, विवाहित जीवन में नारियाँ और धर्म, अधिकार-उत्तराधिकार आदि का विवेचन किया गया है। वैदिक वाड्.मय, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृति ग्रंथों, कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामसूत्र, संस्कृत साहित्य, बौद्ध धर्म जैन धर्म के प्रमुख ग्रंथों से यथा प्रसंग मूल उद्धरण तथा संदर्भ प्रस्तुत करने के कारण प्रो. अल्तेकर महोदय का ग्रंथ सर्वथा शास्त्रान्वित, मौलिक तथा प्रमाणिक है। अनुवादक प्रो. गणेशीलाल सुथार महोदय ने अनुवाद में मूल ग्रन्थ को इतना सुस्पष्ट कर दिया कि अनुवाद मूल जैसा प्रतीत होता है।

**पुस्तक समीक्षाः-**

**प्राचीन भारत में नारी (600 से 1200 ई. तक), प्रथम संस्करण 1987, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, लेखिका डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र**

इस पुस्तक में "प्राचीन भारत में नारी" की स्थिति को विभिन्न कालों की सामाजिक व्यवस्था में साहित्यिक साक्ष्यों, अभिलेखों, मूर्तिकला, चित्रकला तथा मुद्रा शास्त्र के प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया है। अभिलेखों व मुद्राओं में राजकुल की नारियों की, वहीं स्मृतियों, पुराणों एवं कथा साहित्य में विभिन्न वर्गों की नारियों की झाँकी मिलती है, उसी आधार पर कुलीन तथा मर्यादेत्तर नारियों का वर्गीकरण किया गया है।

इसी वर्गीकरण के आधार पर पुस्तक में पूर्व मध्यकालीन भारत की नारी सम्बन्धी विवेचना प्रस्तुत की गई है।

पुस्तक ग्यारह अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में पूर्व वैदिक काल से पाँचवीं ई. तक नारी शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति की स्थिति, कन्या, पत्नी, मातृ रूप में नारी का वर्णन किया गया है। अन्य अध्यायों में नारी के अधिकार, परित्याग, वैधव्य, प्रथाएँ, राजनीतिक अधिकार, नारी शिक्षा, संस्कार, परिवार, समाज धर्म, न्याय व्यवस्था, सम्पत्ति विभाजन, प्रसाधन, वेशभूषा, आमोद-प्रमोद आदि व्यवस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इस पुस्तक का अध्ययन करने के बाद हम प्राचीन नारी के किसी भी तथ्य को अछूता नहीं पाते हैं। साहित्यिक व अन्य स्त्रोतों, छायाचित्रों के माध्यम से विषय को दृढ़ता एवं जीवन्त तरीके से प्रस्तुत किया है जो पाठकों के मन-मस्तिष्क को नारी जीवन के पक्षों की झलक दिखाता है।

**पुस्तक समीक्षाः-**

**"Ancient Indian Culture and Literature" First Edition 1980, Eastern Book Linkers Edited by – Mohanchand New Delhi**

This book is a collection of research papers presented by various scholars at a seminar organized by the Sanskrit Sahitya a Parishad of the Ramjas College, University of Delhi.

शोध पत्र समीक्षा- **"Ancient Indian Culture and Lilerature"** में प्रकाशित प्राचीन भारतीय शिक्षाः आधुनिक शिक्षा- वैज्ञानिक सन्दर्भ, डॉ. मोहनचंद - संस्कृत साहित्य परिषद के सम्पादक।

यह शोध पत्र विभिन्न शोधार्थियों द्वारा प्रकाशित शोध पत्रों में से एक है। इस शोध पत्र में प्राचीन भारतीय शिक्षा के आधुनिक शिक्षा वैज्ञानिक सन्दर्भ पर विचारणीय पक्षों को प्रस्तुत किया है जैसे प्राचीन आश्रम व्यवस्था तथा आधुनिक चेतनाओं के परिप्रेक्ष्य में समाज शास्त्रीय ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति द्वारा प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर एक विहंगम प्रकाश डाला गया है। इस शोध पत्र में प्राचीन भारतीय शिक्षा केवल धर्म से जुड़कर साम्प्रदायिक चेतना को ही बढ़ावा नहीं दे रही थी, अपितु विशुद्ध

बौद्धिक चिन्तन हेतु स्वस्थ परम्परा का निर्वाह भी किया गया था। वैदिक युग से बौद्धकालीन तक शैक्षिक गतिविधियों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। भारतीय शिक्षा के उत्कर्ष काल में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जो प्रगति हुई उसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है वैदिक साहित्य, संहिताकाल, ब्राह्मणकाल, बौद्धकाल में शिक्षा का प्रभावी रूप उत्कृष्ट, विकसित एवं शिक्षित समाज की ओर इंगित करता है। यह शोध पत्र वैज्ञानिक, तकनीकी, गणितीय, चिकित्सा, रासायनिक, भौतिक शिक्षा को प्राचीन भारतीय शिक्षा से जोड़कर आधुनिक भारतीय शिक्षा के आविष्कारों, प्रयोगों को प्राचीन शिक्षा की देन प्रमाणित करता है। तकनीकी ज्ञान व वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले पाठकों को यह शोध पत्र बहुत सहायक सिद्ध होगा। शोधकर्ता ने इस शोध में प्राथमिक स्त्रोतों ऋग्वेद, यजुर्वेद भाष्य, उपनिषद, ब्राह्मण, धर्मसूत्रों, संस्कृत साहित्य जातक, जैन आगमों आदि का संदर्भ लिया गया है, जबकि द्वितीयक स्त्रोतों में राधाकुमुद मुकर्जी, अल्तेकर, वी.एस. अग्रवाल, जगदीश चन्द्र जैन जैसे इतिहासकारों का संदर्भ लिया है।

**Female Education (Article– September, 2014) Wikkipedia– The Encyclopedia,**

**Ancient Vedic Age (1000 B.C)**

इस आर्टिकल में वैदिक काल की विदुषी महिलाओं घोषा, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गार्गी का उल्लेख है। प्राचीन हिन्दू दर्शन में महिला को 'शक्ति' का प्रतीक माना गया है। आज के सन्दर्भ में शिक्षा की देवी 'सरस्वती' की पूजा का उल्लेख इस आर्टिकल में किया गया है। वैदिक साहित्य में एक विदुषी कन्या के जन्म की प्रशंसा की है, एवं उसे महान प्रयासों द्वारा बड़ा किया जाना चाहिए, इसका विवरण आर्टिकल में है। महिला के महत्व का महत्वपूर्ण आर्टिकल है, इसमें मूल एवं आधुनिक संदर्भ ग्रंथों का उपयोग किया गया है। प्राचीन महिला शिक्षा के विषय पर कार्य करने वाले शोधार्थी व पाठकों को आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

**पुस्तक समीक्षा -**

**भारत का इतिहास, प्रथम संस्करण 1975, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, लेखिका रोमिला थापर**

यह पुस्तक आर्य संस्कृति प्रभाव से लेकर दक्कन की सामाजिक पृष्ठभूमि में परिवर्तन पर आधारित है। इसका हिन्दी अनुवाद जिसकी समीक्षा की जा रही है, वह पूरी तरह से पाठकों को संतुष्ट नहीं कर सकता है, क्योंकि शब्दों का प्रवाह भलीभाँति नहीं है परन्तु पुस्तक भारतीय इतिहास को जानने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। पुस्तक मेरे शोध में आंशिक रूप से उपयोगी रही है।

**पुस्तक समीक्षा -**

**डॉ. राजबली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक "अशोख के अभिलेख" 1965 (सवंत 2022) प्रथम संस्करण, प्रकाशन ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी**

अभिलेखों पर पुस्तक लिखना एक दुः साध्य कार्य है लेकिन इस पुस्तक को अपनी सीमाओं और परिस्थितियों से बद्ध होकर अशोक के अभिलेखों का ऐतिहासिक रिसर्च एवं अध्ययन करके लिखा गया है। इसमें स्तरीय संदर्भ साहित्य का उपयोग किया गया है, जो पुस्तक की गुणवत्ता को बताता है। किसी भी शोधार्थी, पाठक के लिए अभिलेखों की जानकारी के लिए बहुत महत्वपूर्ण पुस्तक है, इस पुस्तक में सम्राट अशोक की पत्नी कारूवाकी का नाम कौशाम्बी के स्तम्भ अभिलेख में मिलता है इन अभिलेखों में रानी कारूवाकी के प्रजा हेतु जनकल्याणार्थ किये गये कार्यों एवं दान का उल्लेख है। इसे रानी का अभिलेख भी कहते है। यह पुस्तक प्रतियोगियों के लिए बहुत सहायक है।

**पुस्तक समीक्षा -**

**"प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास (320 ई. से 1200 ई. तक)" प्रथम संस्करण, 1971, प्रकाशक सेन्ट्रल बुक डिपों, इलाहबाद, लेखक विमल चन्द्र पाण्डेय**

इस पुस्तक से "प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास" (320 ई. से 1200 ई.) काल तक गुप्त वंश के उदय से पल्लव-चालुक्य वंश तक विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इस पुस्तक का उद्देश्य स्वरूप एवं लेखन पद्धति का साम्य इसके प्रारम्भिक ग्रंथ से है। गुप्त सम्राटों के समय साहित्य, मुद्राओं से उस काल की सामाजिक स्थिति का पता लगता है। इस पुस्तक में मूल संदर्भ साहित्य एवं अन्य आधुनिक विद्वान

इतिहासकारों के ग्रंथों का संदर्भ लिया गया है। साहित्य, मुद्राओं व राजनीतिक, सांस्कृतिक इतिहास से इस युग की महिला स्थिति का पता चलता है, जो शोध में बहुत उपयोगी है।

**पुस्तक समीक्षा -**

**"प्राचीन भारत का इतिहास, नया संस्करण" 26 मार्च 2018, Out India**
**लेखक - रामशरण शर्मा**

इस पुस्तक की भाषा बहुत ही सरल, प्रवाहपूर्ण और रोचक है। इस भाषायी विशेषताओं के कारण ही यह पुस्तक प्राचीन भारतीय इतिहास को बेहद आसानी से समझाने में समर्थ है। इसमें प्राचीन भारत के सभी अध्याय कालानुक्रमिक ढ़ग से क्रमबद्ध तरीके से वर्णित किये गए हैं। प्राचीन भारत के आधारभूत तथ्यों को बहुत ही अच्छे से समझाया है। इसकी पेपर क्वालिटी भी बहुत अच्छी है। इस पुस्तक में नक्शों और चित्रों के माध्यम से प्राचीन इतिहास की व्याख्या की गई है, जिससे यह बहुत स्पष्ट और रोचक बन जाती है। यह पुस्तक हिन्दी एवं अंग्रेजी दोनों भाषाओं में है। प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के लिए शोधार्थी, विद्यार्थियों एवं पाठकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

**शोध पत्र समीक्षा:-**

**"याज्ञवल्क्य स्मृति में नारी की स्थिति" शोध सम्वेद/ XXII–2/ 24 By –**
**डॉ. कमलेश शर्मा (VMOU)**

शोध पत्र में ऐतिहासिक दृष्टिकोण रखते हुए स्मृतियों में नारी की स्थिति के अध्ययन को उपयोगी बताया गया है। सूत्र एवं स्मृति साहित्य के प्रणयन काल में नारी की दशा में विशेष परिवर्तन का उल्लेख किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद में गार्गी याज्ञवल्क्य संवाद से यह ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ ब्रह्मविद्या व शास्त्रार्थ में प्रवीण होती थीं। वे शिक्षा की विभिन्न शाखाओं का ज्ञान प्राप्त करती थी। शोध पत्र स्मृतियों विशेषतः "याज्ञवल्क्य स्मृति में नारी" प्राचीन भारत में नारी शिक्षा शोध के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। आर्टिकल में मूल ग्रंथों का संदर्भ दिया गया है, जो इसे और भी महत्व का बनाता है।

**शोध पत्र समीक्षा -**

**"Educational Heritage of Ancient India" (University News) Vol. 46 No. 21, 2008 By – Anand Bhushan**

इस शोध पत्र में प्राचीन काल में महिला शिक्षा, शैक्षणिक संरचना, प्रवेश स्थिति, आश्रमों का जीवन, पाठ्यक्रम, विधि, कला, संगीत, वास्तु आदि की शिक्षा का उल्लेख किया गया है। यह शोध पत्र शिक्षा के स्तर, उच्च शिक्षा संस्थानों एवं उनके पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है। आधुनिक सहायक ग्रंथों का सन्दर्भ इसमें लिया गया है। महिला शिक्षा संदर्भ में यह शोधपत्र उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

**आर्टिकल समीक्षा -**

**"Ancient–Indian Culture and Literature" (Pt. Gang a Ram comme maration volume) Published by – Eastern Book Linkers, 5825, New Chandrawal Road, Jawahar Nagar, Delhi- 11007, Printing Press- Ajmer, Edition: 1980**

इस आर्टिकल में प्राचीन भारतीय शिक्षा, आधुनिक शिक्षा के वैज्ञानिक संदर्भ वात्सायान के कामसूत्र में 64 कलाओं के व्यावसायिक शिक्षा पर प्रभाव का विश्लेषण किया है। व्यक्तित्व विकास, व्यावहारिक ज्ञान, मनोरंजन तथा जीविकोपार्जन में इन कलाओं का विशेष महत्व बताया गया है। आर्टिकल में व्यवहारिक कलाओं का स्त्रियों के लिए विशेष महत्व बताया गया है। मूल ग्रंथों एवं आधुनिक ग्रंथों का संदर्भ भी इसमें दिया गया है।

**"Women education in Ancient India" Research Paper Volume I / Issue : 3/ June 2013/ ISSN 2320-7620 International Multi disciplinary journal of Applied Research, 87**

इस शोध पत्र में वैदिक ज्ञान प्राप्त करने वाली उन महिलाओं का उल्लेख है, जो अपना जीवन ज्ञान प्राप्ति में समर्पित कर देती थी। ये महिलाएँ आश्रम में विद्या ग्रहण करती थी, स्वयं प्रभा अपने पिता मेरूश्रावणी के आश्रम में अध्ययन करती थी। हेमा ने विवाह के पश्चात मेरूश्रावणी के आश्रम में अध्ययन किया। इस शोध पत्र में महिलाओं का आश्रम में ज्ञानार्जन के उल्लेख को संदर्भ साहित्य का उपयोग करके गुणवत्तापूर्ण

बनाया है। महिलाओं के ज्ञान-पिपासु का प्रमाण इस शोध पत्र में दिया गया है। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने छठा संस्करण 1994 में अपनी पुस्तक "प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन" में मनुष्य अपने सामूहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक संस्थानों को विकसित करते हैं उन सबका समावेश किया गया है। प्राचीन भारत में विभिन्न प्राचीन जनपदों, राज्यों और कालों में सामाजिक व आर्थिक जीवन का निरूपण किया गया है। स्त्रियों की स्थिति, उत्तराधिकार आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

**शोध पत्र समीक्षा -**

**"Education of women in Ancient and Medieval India" Kamat Research Data Base, Dharwad, 1980 By Jyotsna Kamat**

इस शोध में वात्स्यायन के अनुसार महिलाओं को चैसठ कलाओं में निपुण होना चाहिए। विभिन्न कलाओं में पुस्तक वाचन, औषधि तैयार करना, कठिन श्लोकों का उच्चारण/ गायन, विभिन्न देशों की भाषा का ज्ञान, विभिन्न धर्मों की जानकारी, शारीरिक सौष्ठव विकास का विज्ञान आदि का ज्ञान महिला को चैसठ कलाओं में से दिया जाता था, जिससे स्वयं एवं भावी पति की कठिनाईयों का निवारण कर सकें। दशकुमार रचित में पठन लेखन में चातुर्यता, खगोल शास्त्री, व्याकरण, तर्क शास्त्र, शिक्षा में सन्निहित था। इस शोध पत्र को शोध विषय के अनुरूप भलीभाँति लिखा गया है। विद्वान इतिहासकारों और मूल ग्रंथों, पत्र पत्रिकाओं का उचित संदर्भ दिया गया है। प्राचीन भारत में महिला शिक्षा के लिए अत्यधिक उपयोगी एवं शोधार्थी का मार्गदर्शन करने वाला शोध पत्र है।

**शोध पत्र समीक्षा -**

**"भारत में महिलाओं की परिवर्तित सामाजिक अवस्थाः एक तुलनात्मक अध्ययन (आदिकाल से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक)" International Journal of Scientific and Innovative Research studies ISSN- 2347-7660. By– डॉ. दीपशिखा पाण्डेय, डॉ. सुशान्त कुमार पाण्डेय**

इस शोध पत्र में प्रागैतिहासिककाल से आधुनिक काल में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक महिलाओं के जीवन स्तर का उल्लेख किया गया है। हड़प्पा काल में मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था, वैदिक काल में स्त्रियों का सम्मानीय शैक्षणिक स्तर, महाकाव्यकाल में धार्मिक

अनुष्ठानों में पत्नी सहधर्मिणी, स्मृति काल में शक्ति स्वरूपा मानने की चेष्टा, मौर्यकाल से गुप्तकाल तक महिलाओं के सामाजिक स्तर में उतार चढ़ाव एवं कुप्रथाओं का समावेश होता रहा, गुप्तोत्तर से पूर्व मध्य काल तक नारी उपभोग की वस्तु समझी जाने लगी, मध्यकाल से स्वतन्त्रता तक पर्दा प्रथा, दास-दासियाँ, बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाएँ इनकी उन्नति में बाधक बनी। स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की विशिष्ट भूमिका रही। शोध पत्र शीर्षक विषय के अनुरूप लिखा गया है, काल क्रमानुसार इसका स्तर तय किया है। संदर्भ ग्रंथ बहुत सटीक एवं प्रमाणिक लिए गये हैं। भारत में महिला स्तर जानने हेतु बहुत उपयोगी शोध पत्र है।

# अध्याय-प्रथम

# प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली का स्वरूप

# प्रथम अध्याय

# प्राचीन भारत में शिक्षा प्रणाली का स्वरूप

## प्रस्तावना -

### प्राकृतिक रूप से शिक्षा -

मानव सभ्यता के अभ्युदय के साथ ही प्राकृतिक रूप से शिक्षा का प्रारम्भ माना जा सकता है, लेकिन शिक्षा का सुव्यवस्थित, सुनियोजित स्वरूप विश्व की कई प्राचीन सभ्यताओं में देखा जाता है। भारतीय जीवन शैली भी संसार की सबसे पुरानी सभ्यता के रूप में जानी जाती है। सभ्यता के विकसित होने के साथ ही शैक्षिक प्रक्रिया का निरन्तर विकास होता चला गया। मनुष्य जब बर्बर एवं जंगली स्वरूप में जी रहा था, तब भी शिक्षा किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान थी लेकिन उस प्राकृतिक शिक्षा का स्वरूप असभ्य, अपरिपक्व और अविकसित था, अतः प्राकृतिक शैक्षिक प्रक्रियाओं को बहुत कम महत्व दिया गया है।

### मान्यतापूर्ण स्वरूप में शिक्षा –

प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा के सुनियोजित, सुव्यवस्थित, ज्ञानात्मक, व्यावहारिक, आत्मिक, बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विकास से परिपूर्ण स्वरूप को ही मान्यता प्रदान की गई है। जीवन के भलीभाँति निर्वाह के लिए शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। समाज का सम्पूर्ण विकास मनुष्य की उत्कर्ष शिक्षा से ही संभव है। मानव जीवन का उच्चतम उद्देश्य अपने जीवन की भौतिक उन्नति, जीवन की उलझनों को हल करना और ज्ञान का प्रकाश फैलाना है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने इस तथ्य को आत्मसात करके प्राचीनकालीन भारत में शिक्षा की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था की। प्राचीन शिक्षा प्रणाली के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप के कारण ही भारत का समस्त प्राचीन तथा विशाल वाड्मय इतना समृद्ध एवं उपयोगी रहा तथा भारतीय मानव सुसंस्कृत बन पाया।

शास्त्रों के अध्ययन एवं विवेक से ही मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है। इसलिए ज्ञानोद्भव का आधार तत्व शास्त्र और विवेक माना गया है।[1] शास्त्रों के भली-भाँति अध्ययन एवं विवेक से मनुष्य का जीवन आलोकित हो उठता है, वह अधिक शक्तिशाली, कर्म और आचरण से परिष्कृत एवं दिव्य हो जाता है। वैदिक युग में ज्ञान से

सम्पन्न मनुष्य ऋषि-ऋण से मुक्त हो जाता था। इस काल में उच्च विचार, ज्ञान की महिमा, त्यागमय जीवन, आध्यात्मिक चिन्तन और भौतिकता से विरक्ति मनुष्य के जीवन के मूल्य थे। ऋग्वेद के गायत्री मंत्र, ज्ञान के उच्चतम आधार थे। मंत्रदृष्टा ऋषियों की ऋचाओं में उच्चतम दार्शनिक चिन्तन दिग्दर्शित होता था।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्वाध्याय और प्रवचन का अनुगमन करने से व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है, फलस्वरूप वह स्वतंत्र हो जाता है। इससे उसे नित्य धन की प्राप्ति होती है, सुखद निद्रा आती है वह अपना चिकित्सक बन जाता है, उसकी इंद्रियाँ संयमित हो जाती है, वह प्रज्ञावान, यशस्वी हो जाता है और संसार के अभ्युदय में लग जाता है और समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को ब्राह्मण ज्ञान के माध्यम से पूर्ण करता है। इस पर समाज उसे आदर प्रदान करता है, दान देता है और उसे सुरक्षा प्रदान करता है। जो लोग अनेक प्रकार की विद्याओं का अध्ययन करते हैं, वे देवताओं को प्रसन्न करते हैं तथा अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं।[2]

**शिक्षा की आवश्यकता -**

शिक्षा प्रकाश का वह स्त्रोत है जो मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाती है। ''ज्ञान'' को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा गया है। उससे मनुष्य सभी तत्वों के अर्थों को देखने में समर्थ हो जाता है। उसके सभी विघ्न दूर हो जाते हैं और तीनों लोकों में उसकी सभी प्रवृत्तियाँ सही दिशा में होती हैं।''[3]

शास्त्रों के अध्ययन से अनेक संशय कट जाते हैं। शास्त्र सभी वस्तुओं का चक्षु है और जीवन के मार्ग को निर्देशित करता है। जिसने शास्त्र का अध्ययन नहीं किया है उसे अंधा ही समझ लेना उचित है।[4]

यह शिक्षा मनुष्य को इस लोक में तो सफल बनाती ही है, मृत्यु के बाद मोक्ष भी प्राप्त कराती है। विद्या वही है, जो मोक्ष प्राप्त करावे।[5]

शिक्षा प्राप्त करके मनुष्य को यथार्थ दृष्टिकोण प्राप्त होता है। उसके बल, बुद्धि, धैर्य, कार्यक्षमता और चिन्तनशक्ति की वृद्धि होती है। शिक्षा से परिष्कृत, विकसित और परिपक्व बुद्धि ही मनुष्य का बल है।[6]

**प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति के उद्देश्य**[7] -

भारतीय ऋषियों ने शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग बताया था। शिक्षा से मनुष्य आत्मनिर्भर बनता है, जिससे सामाजिक और सार्वजनिक नियमों का पालन करता हुआ सम्पूर्ण समाज को समुन्नत और सुखी करता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति में धर्म के सम्पादन और नैतिक मूल्यों को बहुत महत्व दिया गया था।

**चरित्र निर्माण तथा ब्रह्मचर्य का पालन -**

शिक्षा का प्रथम उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का निर्माण करना होता है। यहाँ ''चरित्र'' क्या है? आचरण की प्रक्रिया को ही चरित्र कहते हैं। आचरण से ही संस्कार बनते हैं। संस्कार से ही स्वभाव बनता है। चरित्र किसी व्यक्ति के विश्वास, मूल्य, सोच-विचार और व्यक्तित्व का मेल होता है, इसका पता हमारे कार्य और व्यवहार से चलता है। विद्यार्थी शिक्षा संस्था के नियमों का पालन करता हुआ सन्मार्ग का अनुसरण करता है। प्राचीन मनीषियों का कथन है कि सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान प्राप्त करके भी मनुष्य में यदि सच्चरित्रता और सदाचरण नहीं है, तो वह लोक में आदरणीय नहीं है। इसके विपरीत यदि केवल गायत्री मंत्र का ज्ञाता है और उसके अभिप्राय को समझकर सदाचार रहता है, तो वह आदरणीय और पूजनीय रहता है।[8] सदाचार से रहित चरित्रहीन व्यक्ति निन्दा के योग्य होता है। शिक्षावधि में छात्र के आचरण को प्रोन्नत करने का प्रयास गुरूजन किया करते थे। इससे उसका चरित्र सुदृढ़ एवं पवित्र होता था।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना अनिवार्य था। 'अथर्ववेद' के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला व्यक्ति ही ब्रह्मज्ञान (तेजोमय ब्रह्म) को प्राप्त करने का अधिकारी होता है।[9] उसमें सभी देवताओं का निवास होता है। वेदों में ब्रह्मचर्य की इतनी महिमा कही गई है कि ब्रह्मचर्य की तपस्या से ही राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। आचार्य स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उसी शिष्य की कामना करते थे जो ब्रह्मचारी हो।[10] ब्रह्मचर्य योग के आधारभूत स्तम्भों में से एक है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है सात्विक जीवन बिताना, शुभ विचारों से अपने वीर्य का रक्षण करना, शक्तियों का संग्रह करना, उन्हें बिखरने न देना - उन्हें अपनी उन्नति में लगाना। ब्रह्मचर्य का अर्थ 'सभी इन्द्रियों और विकारों पर सम्पूर्ण अधिकार होना। ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य के माध्यम से इन्द्रियों का निग्रह करना और नियमों का पालन करना ऋषियों ने अनिवार्य कर दिया

था।[11] प्राचीन भारत में शिक्षण-संस्थाओं में चरित्र निर्माण के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य था।

**शिक्षा में आध्यात्मिक भावना -**

प्राचीन शिक्षाविदों ने शिक्षा की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक भावनाओं को निहित किया था। भारत को धर्म प्रधान देश कहा जाता है। प्राचीन काल से वर्तमान तक भी जीवन में धर्म का अत्यधिक महत्व है, लेकिन प्राचीन काल में धर्म का विशेष महत्व रहा था। शिक्षा के माध्यम से बाल्यावस्था में संस्कारों के रूप में ईश्वर और धर्म के प्रति आस्था को सुस्थापित करने का प्रयास ऋषियों ने किया था। गुरूकुलों में छात्रों के लिए नित्य-नियमों में दैनिक संध्या ईश्वरोपासना, यज्ञ आदि का सम्पादन ये सब निश्चित रूप से होते थे। ये सब नियमों का उद्देश्य छात्र के अध्ययनकाल में उसके मन-मस्तिष्क पर आध्यात्मिकता की अमिट छाप स्थापित करना था। छात्र को शिक्षक द्वारा यह बोध कराया जाता था कि लोकमात्र ही परम सत्य नहीं है, परन्तु पारलौकिक जगत का भी अस्तित्व है। हमारा शरीर पंचतत्वों से बना है आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। ये भौतिक शरीर को जीवन और चैतन्य प्रदान करते हैं।

शिक्षा संस्था में रहते हुये छात्र को पुस्तकीय अध्ययन के साथ धार्मिक कर्मकाण्डों का पालन करना अनिवार्य था। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में शय्या त्याग कर शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर पूजापाठ, ईश-प्रार्थना आदि धार्मिक नित्य नियम थे। सत्य बोलना धर्म का प्रमुख अंग माना जाता था।[12]

प्राचीन शिक्षा पद्धति का उद्देश्य छात्र को संसार से विरक्त बनाना नहीं था बल्कि स्नातक होने पर धर्मनिष्ठ गृहस्थ जीवन व्यतीत करे। वह देश, समाज, परिवार के लिए उपयोगी एवं सम्मानीय नागरिक बने।

**शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का निर्माण, विकास और उन्नति -**

शिक्षा किसी छात्र या व्यक्ति के अन्दर आत्मसंयम, आत्मविश्वास, सत्यचिन्तन, आत्मविश्लेषण, विवेक और न्याय की भावनायें जागृत करती है, जो किसी भी मनुष्य का व्यक्तित्व निर्माण करते हैं।

व्यक्तित्व के विकास से विवेक की वृद्धि होती है। वह यह निर्णय करने में समर्थ होता है कि शास्त्रों में कौनसा कथन ग्राह्य है और कौनसा ग्राह्य नहीं है। प्राचीन शास्त्रों में शास्त्रार्थ और वाद-विवाद भरे पड़े हैं। शास्त्रों में विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया जाता है। ग्रंथ लेखक किसी एक पक्ष को सिद्ध करने के लिये तथा अन्य पक्षों (पूर्व पक्षों) का खण्डन करके अपने पक्ष का समर्थन वह युक्तियों द्वारा करता है। इस खण्डन-मण्डन एवं शास्त्रार्थ का अध्ययन करके और समझ कर छात्र में विवेचना शक्ति की ग्राह्यता से विवेक का विकास होता है।

प्राचीन काल में भारत में विशाल वैदिक साहित्य की रचना हुई है एवं अनेक शास्त्रीय ग्रंथ लिखे गये थे। इन शास्त्रों के अध्ययन में केवल कण्ठस्थ करने या रटने का ही प्रावधान नहीं है, अपितु सत्यासत्य का निर्णय करने की सामर्थ्य का विकास भी निहित है। छात्र को इन विषयों को भली-भांति समझ लेना चाहिये, जिनको कि वह रट रहा है। सत्यासत्य की निर्णय शक्ति जागृत होकर उसके व्यक्तित्व में निखार लाती है। व्यक्तित्व का यह विकास छात्र की सर्वांगीण उन्नति का, उसके शरीर-मन-आत्मा को संतुष्ट करने का सबसे प्रमुख साधन है।

**आत्मसंयम का विकास -**

आत्मसंयम का अर्थ है - ''अपने ऊपर नियंत्रण रखना।'' छात्र के लिए आत्मसंयम से अर्थ था कि ''इंद्रियों और मन की उच्छृंखल प्रवृत्तियों को नियंत्रित करके गुरूकुल (शिक्षा-संस्था) और समाज की व्यवस्था को बनाये रखकर अपने कर्तव्य का पालन करना है। आत्म संयम छात्र के जीवन को समुन्नत करता है।

प्राचीनकाल में भारत में विद्यार्थी जीवन में सादगी पर विशेष बल दिया जाता था। आत्मसंयम से तात्पर्य आत्मदमन नहीं बल्कि विलासिता से दूर रहकर नित्य उपयोग की वस्तुओं का प्रयोग होता था।

**आत्मविश्वास का विकास -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में आचार्य के संरक्षण के कारण छात्रों में आत्म विश्वास की भावना का विकास होता था। आचार्यकुल में छात्रों को भोजन, निवास,

अध्ययन निःशुल्क थे। छात्र जीवन के उपनयन संस्कार के समय विद्यार्थी से आचार्य कहते हैं -

''यदि तुम अपने कर्त्तव्य का पालन सम्यक् रूप से करोगे, तो तुम्हारे उद्देश्यों की सिद्धि में देवता सहायक होंगे।'' उस समय अग्नि देवता से प्रार्थना की जाती थी कि वह छात्र की बुद्धि, मेधा और भक्ति की वृद्धि करे।[13]

सूर्य देवता से प्रार्थना की जाती थी कि वह ब्रह्मचारी की सभी आपत्तियों से तथा चोर-रोग-मृत्यु से रक्षा करे।[14]

देवताओं के प्रति इस उद्बोधन से भी छात्र में आत्म विश्वास की भावना जागृत होती थी।

इस आत्मविश्वास से छात्र भविष्य में आने वाली कठिनाईयों में उसकी बुद्धि को स्थिर रखता था, साहस के साथ विपरीत परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने में समर्थ होता था। इसी आत्म विश्वास के कारण सर्वांगीण उन्नति होती थी और उसमें स्वावलम्बन की भावना जागृत होती थी।

**तीन ऋणों से मुक्ति का ज्ञान -**

'शतपथ ब्राह्मण'' का वचन है - बालक जन्म लेते ही तीन ऋणों का ऋणी हो जाता है।[15]

प्राचीन भारतीय शिक्षा - पद्धति में तीन ऋणों के बोध की परंपरा सर्वत्र रही है। ये तीन ऋण हैं -

1. देवऋण 2. पितृऋण 3. ऋषि-ऋण

1. देवऋण - यज्ञों का सम्पादन करके मनुष्य देवताओं के प्रति ऋण (देव ऋण) से मुक्त होता है। यज्ञों से धार्मिक परम्पराओं की रक्षा होती है।
2. पितृऋण - पितृऋण से मुक्ति के लिए मनुष्य को विवाह करके संतान उत्पन्न करता है और उसका पालन-पोषण करके सब प्रकार से योग्य बनाता है। विभिन्न व्यवसायों के प्रशिक्षण द्वारा पारिवारिक विरासत की रक्षा करता है।

3. ऋषि ऋण - इस ऋण की मुक्ति छात्र द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन करके होती है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विविध विद्याओं का अध्ययन करता है।

जायमानो वै ब्राह्मण स्त्रभिऋण वाञ्जायते।

यज्ञेन देवेभ्यो ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः प्रजया पितृभ्यः।।

- शतपथ ब्राह्मण 1.5.5

छात्र जीवन में तीनों ऋणों से मुक्ति की शिक्षा प्राप्त करना भी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की महत्वपूर्ण विशेषता है। उपनयन संस्कार के समय छात्र को तीन धागों वाला यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था, जो इस बात का सूचक था कि इस बालक को तीन ऋण से मुक्त या उर्ऋण होना है।

**समाज के प्रति उत्तरदायित्व -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का एक अन्य उद्देश्य यह भी था कि छात्र शिक्षा प्राप्त करके अपने सामाजिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व का निवाह भलीभाँति करे। परिवार का पालन करना उसका नैतिक कर्त्तव्य है। प्रत्येक व्यक्ति को पुत्र, पति एवं पिता की भूमिका पूर्ण मनोयोग से निभानी चाहिए। पुत्र के रूप में उसका कर्त्तव्य है कि वृद्ध माता-पिता की सेवा करे। पिता के रूप में संतानों का पालन-पोषण करते हुए उनको योग्य बनाना चाहिये कि वे संसार के संघर्षों में सहायक तथा सक्षम हो।

इसी प्रकार समाज के संचालन के लिए चतुर्थ वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र) थी। वर्णाश्रम की परम्परा की रक्षा करना शिक्षित व्यक्ति का सामाजिक उत्तरदायित्व रहा था। छात्र अपनी रूचि के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करके उस वर्ण के योग्य हो जाते थे।

अध्ययन-अध्यापन में रूचि रखने वाले छात्र ब्राह्मण के योग्य शिक्षा प्राप्त करके अध्यापन, स्वाध्याय तथा पूजा पाठ करके समाज की सेवा करते थे। वे ब्राह्मण वर्ण के होते थे। शासन, युद्ध और आयुधों के प्रति रूचि रखने वाले छात्र इन विषयों की शिक्षा प्राप्त करके, क्षत्रिय वर्ण के होकर शासन तथा प्रजा-रक्षा के कार्य को संभालते थे। कृषि, पशुपालन, व्यापार, उद्योग आदि धनोपार्जन के कार्यों के प्रति रूचि रखने वाले छात्र इन

विषयों की शिक्षा प्राप्त करके तथा वैश्य वृत्ति को स्वीकार करके अपने परिवार, समाज और देश को समृद्ध बनाते थे।

इनमें से किसी भी कार्य की योग्यता नहीं रखने वाले विद्यार्थी शूद्र वर्ण के होकर अन्य तीन वर्णों की सेवा करते थे।

समाज के प्रति शिक्षित व्यक्ति के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का निर्देश समावर्तन संस्कार के समय आचार्य के उपदेश में निहित है। आचार्यानुसार, ''सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय, धर्म, ऐश्वर्य प्राप्त करने एवं देव और पितरों के कार्यों से प्रमाद मत करो। माता, पिता, आचार्य एवं अतिथि को देवता मानो। जो हमारे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, उन्हें श्रद्धा, शील स्वभाव, लज्जा करके दान करो।

जो ब्राह्मण उचित व्यवहार वाले हैं उनके जैसा ही व्यवहार तुम करो। यही वेदों का रहस्य और अनुशासन है।[16]

**व्यावसायिक कुशलता -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा केवल साहित्यिक और सैद्धान्तिक ही नहीं थी, अपितु क्रियात्मक भी थी। शिक्षा के उद्देश्य बहुत अधिक व्यापक और गौरवमय थे। विविध विषयों कृषि, पशुपालन, धनुर्विद्या, चिकित्सा तथा अन्य व्यापार उद्योग आदि की व्यवस्था का प्रबंध गुरूकुलों में था।

**प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं की रक्षा -**

प्राचीन भारत में आर्यों ने विशिष्ट धार्मिक संस्कृति का विकास किया था, जो वैदिक साहित्य के रूप में विकसित हुई थी। प्राचीन शिक्षा-पद्धति में वैदिक साहित्य के अध्ययन पर बहुत बल दिया गया है तथा उसकी सुरक्षा की चिन्ता की गई है। वैदिक साहित्य की सुरक्षा के लिये, उसके अध्ययन के विशेष नियम बनाये गये थे। वैदिक मंत्रों का स्वरसहित उच्चारण करने के भी नियम ऋषियों ने प्रतिपादित किये थे। अन्य विषयों के अध्ययन के साथ वेदों को कण्ठस्थ करना और उनको यत्नपूर्वक मस्तिष्क में सुरक्षित रखना तत्कालीन विद्यार्थी का, विशेष रूप से ब्राह्मण विद्यार्थी का परम कर्त्तव्य निर्धारित किया था। प्राचीन आर्यों ने शिक्षा के माध्यम द्वारा अपनी संस्कृति का प्रसार सम्पूर्ण विश्व

में किया। विश्व के आधे से अधिक व्यक्ति भारतीय धर्म, संस्कृति, साहित्य और प्रशासन से किसी न किसी रूप में प्रभावित थे। इस शिक्षा से प्रभावित होकर मनु ने लिखा है -

''इस देश के विद्वानों से पृथ्वी के सभी मनुष्य अपने-अपने चरित्र की शिक्षा लें।''[17]

शिक्षा के माध्यम से मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन का, उसकी परम्पराओं का उत्कर्ष होता है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी संतान को सुशिक्षित करे। भारतीय शिक्षा पद्धति में माता-पिता, गुरूजनों एवं अतिथियों के प्रति निरन्तर आदर का भाव भारतीय संस्कृति की पहचान है।

**शिक्षा का स्वरूप -**

**सैंधव काल में शिक्षा का स्वरूप -**

सैंधव सभ्यता से प्राप्त सामग्री से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सैंधववासी पढ़ना-लिखना जानते थे और उनका एक विकसित पाठ्यक्रम भी था। खुदाई से प्राप्त लकड़ी की इन तख्तियों पर लकड़ी की कलमों से लिखना यह तय करता है कि उन्हें लिखने का ज्ञान था। खुदाई से प्राप्त खिलौनों के आधार पर विद्धानों ने अनुमान लगाया कि प्रत्यक्ष ज्ञान उपलब्ध करवाने में इनका प्रयोग किया जाता होगा। तौल-माप के निश्चित साधनों से बालकों को अंकगणित की शिक्षा दी जाती रही होगी। खुदाई से प्राप्त बाटों की दशमलव इकाईयों से यह सिद्ध होता है कि सैंधववासी दशमलव पद्धति से परिचित थे। भवन और नगर निर्माण योजना से विद्यार्थियों को ज्यामिति के उच्च सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती थी।[18]

सार्वजनिक एवं घरेलू स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति लोगों की रूचि जागरूकता व लोगों की रोगों से बचने के उपाय चिकित्सा ज्ञान की ओर इशारा करते हैं।

इस प्रकार सैंधववासियों के शिक्षा पाठ्यक्रम में अंक गणित, दशमलव पद्धति, ज्यामिति, चिकित्सा के विषय अवश्य रहे होगें। छोटे बालकों के लिए प्रत्यक्ष ज्ञान शिक्षा विधि को अपनाया जाता होगा।[19]

विभिन्न प्रकार के उपकरणों पर प्राप्त लेखन से शिक्षा के अस्तित्व का बोध होता है। लेकिन सिन्धु लिपि के अभी तक नहीं पढ़े जाने के कारण उनका पढ़ना अभी तक

संभव नहीं है, परन्तु निश्चित रूप से शैक्षणिक ज्ञान एवं पाठ्यक्रम विद्यमान रहा होगा। इस सभ्यता से एक मुहर मिली है जिसमें एक योगी ध्यानस्थ मुद्रा में अंकित है। इस योगी के तीन मुख हैं और उसके शीश पर शिरस्त्राण के दोनों ओर सींग है योगी के बायीं ओर एक गैंडा व एक भैंसा और दायीं ओर एक हाथी व एक व्याघ्र तथा योगी के आसन के नीचे एक हिरण अंकित है। इस मुहर के ऊपर छः अक्षर (शब्द) उल्लेखित हैं जो शिक्षा का प्रमाण देते हैं।

**वैदिक काल में शिक्षा स्वरूप -**

**ऋग्वैदिक काल में शिक्षा का स्वरूप -**

ऋग्वैदिक काल में शिक्षा का अत्यधिक महत्व था। प्रत्येक ऋषिकुल एक वैदिक विद्यालय का ही स्वरूप था, जहाँ लड़के-लड़कियाँ समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे, गायत्री मंत्र को महत्वपूर्ण मंत्र उस युग का माना गया है। इस काल की उन्नत भाषा संस्कृत थी जिसका व्याकरण, क्रिया, अलंकार, वचन, विभक्ति, उच्चारण नितान्त परिपूर्ण था। इस काल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बौद्धिक विकास एवं आचरण का विकास करना था। आत्मनिरीक्षण की पद्धति पर विशेष जोर था।

**ऋग्वैदिक काल में शिक्षा पद्धति -**

ऋग्वैदिक काल में शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। ऋग्वैदिक काल में हजारों मंत्रों को कंठस्थ करना एवं सालों तक सुरक्षित रख पाना आश्चर्यजनक है। यह कहना उचित नहीं होगा कि लिखित ज्ञान का अभाव था, क्योंकि बिना लेखन व व्याकरण के कोई भी भाषा नहीं होती। वेद के अनुसार मनुष्य जीवन की सफलता के लिए विद्या अत्यंत आवश्यक है। ऋग्वेद 1.72.3 में कहा गया है कि ‘‘कोई भी मनुष्य बिना पढ़े विद्वान नहीं हो सकता और विद्याओं के बिना निश्चय करके मनुष्य जन्म की सफलता तथा पवित्रता नहीं होती। इसलिए सब मनुष्यों के लिए उचित है कि इस कर्म का सेवन नित्य करें। बिना विद्या पढ़े कोई मनुष्य न तो पदार्थों का उपयोग कर सकता है और न अपने सन्देह का निवारण ही कर सकता है। उस काल में ज्ञान से अभिप्राय वेदों का ज्ञान था, वेदों को ज्ञान का भंडार माना गया। वेदों को ‘वाक्’ या ध्वनि के माध्यम से कंठस्थ

रखा जाता था। विद्वानों की मान्यता है कि कुमारिल भट्ट तक वेदों को लिखित रूप प्रदान नहीं किया गया था। उस समय तक स्वाध्याय द्वारा कंठस्थ करने की परंपरा थी।[20]

**शिक्षा व्यवस्था -**

इस काल में शिक्षा की व्यवस्था प्रायः बौद्धिक एवं नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए की गई थी।

1. शब्द उच्चारण पर बहुत ध्यान दिया जाता था।
2. शिक्षा के माध्यम से आचरण की पवित्रता की महत्ता को बताया।
3. शिक्षा में विचार-विमर्श की व्यवस्था थी।
4. पिता द्वारा भी पुत्रों को शिक्षा इस काल में दी जाती थी।

आचार्य के पढ़ाये हुए शब्दों के शिष्यों द्वारा पुनरावृत्ति करने का उल्लेख है। ऋग्वेद के एक सूक्त से यह स्पष्ट है कि विद्यार्थी पिता या गुरू से मौखिक शिक्षा प्राप्त करते थे और अपने पाठ को बार-बार दोहराकर कंठस्थ करते थे। एक दूसरे सूक्त से ज्ञात होता है कि वाद-विवाद का शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान था। जिससे विद्यार्थियों में भाषण देने की क्षमता का विकास भी होता था। शिक्षा में कंठस्थ करने पर बहुत जोर होता था एवं कंठस्थ सूक्त का अर्थ भी विद्यार्थियों को याद होता था प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा-विज्ञान तथा अध्ययन विषयों के लिए 'विद्या' शब्द का प्रयोग प्रचलित था। वैदिक युग में भी 'शिक्षा' का प्रयोग मंत्रों की पुनारावृत्ति तथा वर्णों एवं स्वरों से सम्बन्धित ध्वनि-विज्ञान के अर्थ में होता था। वैदाङ्ग साहित्य के प्रतिशाख्य (ऐसा ग्रंथ जिसमें वेदों की किसी शाखा के स्तर, पद, संहिता, संयुक्त वर्णों के उच्चारण आदि पर विचार किया जाता है।) ग्रंथों को भी इसी कारण 'शिक्षा' की संज्ञा प्राप्त थी। आधुनिक 'शिक्षा' के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला प्राचीन शब्द 'विद्या' है जिसका प्रयोग न केवल ज्ञानार्जन सम्बन्धी अध्ययन विषयों के लिए अपितु वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक शिक्षा के लिए भी होता था।[22]

**संहिता काल में शिक्षा व्यवस्था -**

इस काल में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था- वर्णों तथा स्वरों के शुद्ध प्रयोग के साथ वैदिक मंत्रों को कंठस्थ कर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाना था।[23]

**ब्राह्मणकाल में शिक्षा व्यवस्था -**

शिक्षा विज्ञान की दृष्टि से ब्राह्मण-युगीन शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी के ज्ञानार्जन सम्बन्धी विभिन्न उपायों का अविष्कार हो चुका था। उदाहरणार्थ 'ब्रह्मोदय' आदि गोष्ठियों में वाद-विवाद की परम्परायें प्रारम्भ हो चुकी थी तथा छात्र 'प्रश्निन' (पूर्व पक्षी) तथा 'अभिप्रश्निन' (उत्तर पक्षी) के रूप में अनेक बौद्धिक समस्याओं पर विचार भी करने लगे थे।[24] शतपथ ब्राह्मण में राज्य स्तर पर इस प्रकार के शास्त्रार्थ होने तथा विजयी पक्ष को पुरस्कार देने के अनेक उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[25]

**उपनिषद्-कालीन शिक्षा व्यवस्था -**

ब्राह्मण कालीन शिक्षा व्यवस्था तथा उपनिषद्-कालीन शिक्षा व्यवस्था में स्वरूप की दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं था किन्तु दोनों शिक्षा व्यवस्थाओं में उद्देश्य की दृष्टि से महान् अन्तर रहा था। जैसा कि विद्धानों की भी मान्यता रही है कि ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा उपनिषद-ग्रंथ क्रमशः ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ग के प्रतिनिधि साहित्य हैं तथा उपनिषद युगीन चेतना ब्राह्मणों के सामाजिक प्रभुत्व को नीचा दिखाने का भी यदाकदा प्रयास करती रही है।[26] ब्राह्मण पुरोहितों तथा क्षत्रिय राजकुमारों के पारस्परिक स्वार्थों के टकराव के कारण वैदिक व्यवस्था में एक ऐसा भी युग आया था जिसमें बौद्धिक चिन्तन तथा जीवन दर्शन की समस्या को लेकर क्षत्रिय वर्ग ने ब्राह्मणों पर विजय पाई।[27] उपनिषद युगीन शिक्षा व्यवस्था भी ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के इसी आन्तरिक संघर्ष से पर्याप्त प्रभावित हुई है।[28] शतपथ ब्राह्मण के उल्लेखानुसार याज्ञवल्क्य जो कि ब्राह्मण परिवार का विद्यार्थी था, क्षत्रिय जनक से शास्त्रार्थ में हार जाता है तथा अन्त में जनक को ही अपना गुरू भी स्वीकार कर लेता है।[29] छान्दोग्योपनिषद् में भी क्षत्रिय राजा प्रवाहण तथा जाबाली ने शिलक, दातम्य, श्वेतकेतु तथा उद्दालक आदि ब्राह्मणों को ब्रह्मज्ञान उपदेश से शिक्षित किया था।[30] कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार भी ब्राह्मण विद्धानों में श्रेणु नारद अनेक विद्याओं में निपुण होने पर भी सनत्कुमार नामक क्षत्रिय से ब्रह्मज्ञान की शिक्षा लेकर ही अपने ज्ञान को सार्थक मानता है।[31] संक्षेप में वैदिक कालीन शिक्षा की ही यह उपलब्धि थी कि इसने विश्व में सर्वप्रथम जीवन के दो मूल्यों का अविष्कार किया है। यज्ञानुष्ठान द्वारा 'स्वर्ग' एवं ब्रह्मविद्या द्वारा मोक्ष प्राप्ति जीवन के मूल्य थे। इन दोनों मूल्यों पर ही समग्र दार्शनिक तंत्र अवलम्बित है।

**रामायण काल में शिक्षा -**

**सत्संग -**

**सत्संग - सत्, = सत्य, संग = संगति**

सत्संग का भारतीय दर्शन में अर्थ है "परम् सत्य" की संगति, गुरू की संगति, व्यक्तियों की ऐसी सभा की संगति जो सत्य सुनती है, सत्य की बात करती है और सत्य को आत्मसात करती है। इसमें विशिष्ट बात यह है कि इसमें प्राचीन ग्रंथों को सुना या पढ़ा जाता है, उस पर बात की जाती है, उसके अर्थ पर चर्चा की जाती है, उन शब्दों के स्रोत को आत्मसात किया जाता है। (ध्यान किया जाता है) और उनके अर्थ को दैनिक जीवन में उतारा जाता है।

सत्संगति की महिमा गुप्त नहीं है अपितु प्रसिद्ध है। ऋषि वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य मुनि ने अपने सत्संग प्रभाव की महिमा स्वयं ने कही है।

इस संसार में जड़, चेतन वस्तुओं एवं प्राणियों में से जिसने भी बुद्धि, यश, सद्गति, ऐश्वर्य और बड़प्पन प्राप्त किया है वह सब उसे सत्संग से ही प्राप्त हुआ है। वेदशास्त्रों में भी बिना सत्संग के ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। अतः रामायण काल में ज्ञान प्राप्ति के लिए एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें प्रबुद्धजन अपने ज्ञान स्त्रोतों के द्वारा शिष्यों को ज्ञान प्रदान करते थे।[32]

**ज्ञानार्जन में जिज्ञासा एवं शंका -**

भारतीय ज्ञान-विज्ञान के प्राचीन इतिहास में भारद्वाज ऋषि का नाम अपना वैशिष्ट्य रखता है। प्रयाग में त्रिवेणी संगम के निकट अपने आश्रम में निवास करते थे। माघ स्नान के समय गोष्ठियाँ, शास्त्र चर्चायें, कथा-वार्तायें चलती थी। एक समय माघ स्नान में महर्षि याज्ञवल्क्य प्रयाग पधारे। भारद्वाज ऋषि ने विनय पूर्वक याज्ञवल्क्य जी को रोक लिया एवं रामायण पर अपनी जिज्ञासा प्रगट की। वैदिक काल से ही ज्ञानोपदेश प्राप्त करने की एक विशिष्ट आचार परम्परा भारत में प्रवर्तित रही है। किसी बात को उसके महत्व के अनुरूप ही कहने-सुनने की भी परम्परा रही है। दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, भक्ति आदि विषयों पर राह चलते कहना-पूछना अशिष्ट व्यवहार माना गया है। जिज्ञासा में कभी शंका के भी दर्शन होते हैं और शंका, ज्ञान और भक्ति मार्ग में बाधा है। शंका युक्त जिज्ञासा

करते समय बड़ी सावधानी और विनयशीलता की आवश्यकता होती है। शास्त्रों के अनुसार निर्मल ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरूजनों से मन की कोई बात नहीं छिपाना चाहिए।[33]

**महाभारतकालीन शिक्षा व्यवस्था [34] -**

**वेदाभ्यास -**

प्रतिदिन वेदपाठ करना द्विजाति के नित्य कर्मों के अन्तर्गत था। नित्यकर्मों का अनुष्ठान न करना पाप समझा जाता था। अधीत विषय (पढ़ा हुआ) को बार-बार पढ़ने अथवा नित्य अभ्यास करने से संस्कार दृढ़ होते हैं। वेदाभ्यास प्रत्येक अवस्था में अपरित्याज्य था। राजा दुष्यन्त ने कण्वमुनि के आश्रम में प्रवेश करते ही वेदध्वनि सुनी थी। विपत्ति के दिनों में भी गृहहीन पांडवों ने वेदाभ्यास नहीं छोड़ा। बक-राक्षस निधन के बाद जब उन्होंने ब्राह्मण के घर आश्रय लिया था तब भी रीति अनुसार दैनिक स्वाध्याय चलता था। कर्ण स्वयं को क्षत्रिय ही मानते थे। कर्णकुंती संवाद में देखा जाता है कि कुन्ती भागीरथी की ओर जा रही थी, पुत्र से साक्षात होने से पहले ही उन्होंने वेदाध्ययन की ध्वनि सुनी थी। स्वाध्याय का नित्यत्वविधान शास्त्रों की रक्षा का श्रेष्ठ उपाय है। नित्यप्रति वेदपाठ न करने से पाप होगा यह सोचकर हर ब्राह्मण थोड़ा-बहुत अध्ययन अवश्य करता था।

**अध्यापना एवं भम्रण, कहानी द्वारा शिक्षा -**

विद्यार्थी से अर्थ लेकर पढ़ाना अत्यन्त घृणित समझा जाता था। निःस्वार्थ अध्यापना का आदर्श उस काल के अध्यापक समाज में विशेष रूप से आवृत माना जाता था। इस कारण दरिद्र के लिए भी उच्च शिक्षा दुष्प्राप्य नहीं थी।

पर्यटक अध्यापक भम्रण के दौरान उपदेश दिया करते थे। उनके द्वारा वर्णित उपाख्यान इस काल की लोकशिक्षा के प्रधान सहायक थे। ये पर्यटन के दौरान वेद-वेदान्तों के गूढ़ रहस्य का अत्यन्त सरल भाषा में प्रचार करते थे। उनकी आवश्यकताएँ भी अधिक नहीं थी। जंगल के फल-मूल द्वारा ही उनका निर्वाह होता था। मौखिक रूप से कहानी द्वारा शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता उन्होंने अच्छी तरह समझी थी, जन शिक्षा के लिए कहानी के माध्यम से उपाख्यानादि सुनाना कितना उत्कृष्ट था यह आज विद्यालयों

में नहीं के लगभग है। पुराण पाठ एवं सुकंठ वाले कथक की कथाओं द्वारा समाज के हर श्रेणी के स्त्री-पुरूषों तक कितनी अच्छी बातें पहुँचती थी।

**शिक्षा की व्यापकता -**

जन साधारण में मौखिक रूप से ही शिक्षा का विस्तार होता था। पुराण पाठक, कथक व अन्यान्य उपांगों के उपदेष्टा पंडित राजसभा में विशेष रूप से सम्मानित किये जाते थे। शिक्षा प्रतिष्ठानों की संख्या का कोई उल्लेख न होते हुए भी साधारण लोगों में शिक्षा का जो प्रसार देखने में आता है उससे विद्या या पांडित्य की विस्तृति के विषय में कोई सन्देह नहीं रह सकता। बाजार-हाट में, कसाईखाने में, बनिये की दुकान पर उपनिषद व धर्मशास्त्रों की आलोचना में सलंग्न, स्वकर्म निरत महापंडितों के साथ महाभारत के पाठक का साक्षात् होता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस युग में विद्या-चर्चा का प्रभाव कितना अधिक था। विशेषतः शिक्षा ग्रहण आडम्बरहित थी, अतः किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई का सवाल ही नहीं उठता था। विद्यार्थी से किसी भी प्रकार का पारिश्रमिक तो लेते नहीं थे, उस पर विद्यार्थी के अस्त्र-वस्त्र की व्यवस्था भी उन्हीं को करनी पड़ती थी।

**बौद्धकाल में शिक्षा स्वरूप - (500 वर्ष ई. पूर्व)**[35]

वैदिक युग में धार्मिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक जीवन ने अपने युग की शिक्षा-पद्धति को बहुत प्रभावित किया। अतः बौद्ध धर्म ने भी तत्कालीन प्रचलित शिक्षा प्रणाली से पृथक एक नवीन शिक्षा पद्धति का प्रतिपादन किया था। यह शिक्षा पद्धति बौद्ध धर्म से प्रभावित थी। वैदिक धर्म से अनुप्रेरित बौद्ध शिक्षा प्रणाली का अपना स्वरूप, प्रकृति थी। विद्या संस्कार के रूप में उपनयन संस्कार के स्थान पर 'पब्बजा' या प्रव्रज्या संस्कार को किया जाने लगा। उपनयन की भाँति छात्र को शिक्षा में प्रवेश के समय 'पब्बजा' संस्कार से गुजरना पड़ता था, किन्तु इस संस्कार में कर्मकाण्ड नहीं होते थे।[36]

वैदिक काल में शिक्षा अर्जित करने के लिए गुरूकुलों में विद्यार्थी जाते थे जबकि बौद्ध युगीन शिक्षा-प्रणाली में गुरूकुलों का स्थान संघों ने ले लिया था।

**पब्बजा संस्कार** -

इस शिक्षा संस्कार के दौरान शिक्षक शिष्य से निम्न तीन वचन को जोर से उच्चारित करवाता था -

1. बुद्धं शरणम् गच्छामि
2. धम्मं शरणम् गच्छामि
3. संघं शरणं गच्छामि

उक्त तीन शपथ लेने के बाद गुरू अपने शिष्य को शिक्षा के निम्नलिखित दस नियमों से अवगत कराता था -

1. कभी झूठ मत बोलना।
2. किसी प्राणी या जीव की हत्या न करना।
3. अपने चरित्र और आचरण को अशुद्ध न करना।
4. मादक या नशीली वस्तुओं का सेवन न करना।
5. अनुचित समय पर भोजन न करना।
6. किसी के साथ अभद्र भाषा का प्रयोग न करना।
7. सोने, चाँदी आदि कीमती वस्तुओं से बने उपहार न लेना।
8. संगीत, नृत्य व नाटक आदि में रूचि न लेना।
9. श्रृंगार-प्रसाधनों का प्रयोग न करना।
10. किसी के द्वारा दी गई वस्तु (पराई वस्तु) को स्वीकार न करना।

उक्त नियमों का प्रण लेने के पश्चात् छात्र, 'छात्र-भिक्षु' के रूप में स्वीकार किया जाता था।

**बौद्धयुगीन शिक्षा व्यवस्था** –

बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बौद्धमठ या विहार होते थे। इसके संघ, पब्बजा, सरणत्रय, उपसम्पदा, भिक्षु-भिक्षुषी तथा शैक्षिक नियम आदि अंगों के कारण बौद्ध शिक्षा-पद्धति संचालित की जाती थी।[37]

**1. मठ या विहार -**

बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र मठ या विहार होते थे। जिस प्रकार वैदिक शिक्षा के लिए गुरूकुल हुआ करते थे, उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा में मठ या विहार शिक्षा के केन्द्र होते थे। शिक्षा के लिए अलग से कोई विद्यालय आदि नहीं होते थे। इन मठों में केवल बौद्ध भिक्षु को ही शिक्षा प्रदान करने का अधिकार प्राप्त था। इन मठों में बौद्ध भिक्षु, भिक्षुणी तथा इस धर्म में आस्था रखने वाले लोग प्रवेश लेते थे और अपनी धार्मिक एवं शैक्षिक गतिविधियों का संचालन करते थे।

भिक्षुओं को मठों और विहारों में अत्यन्त कठोर एवं नियमित दिनचर्या का पालन करना होता था। प्रातः शीघ्र उठना, नित्यकर्म, ध्यान, साधना, अध्ययन, तथा अन्य धार्मिक कार्यो का आयोजन करना, रात्रि शयन करना इनमें रहने वालों की दिनचर्या होती थी। मठों का निर्माण यातायात की दृष्टि से उपयुक्त और नगरों में नजदीक वाले स्थानों पर किया जाता था।[38]

मठों का आकार एवं क्षेत्रफल पर्याप्त बड़ा होता था, इनमें सुंदर विशालकाय कक्ष होते थे। जिनमें गुरू, छात्र-छात्राओं के लिए पृथक आवास, शिक्षण कक्ष, पुस्तकालय एवं सभागृहों की पर्याप्त व्यवस्था होती थी। अनेक मठ, वर्तमान विश्वविद्यालयों की भाँति उच्च शिक्षा के केन्द्र माने जाते थे।

**2. संघ -**

बौद्धयुगीन शिक्षा में संघ को विशेष महत्व दिया गया है। संघ विशेषतः बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार करते थे, लेकिन धर्म के साथ शिक्षा में भी संघ को विशेष महत्व प्रदान किया है। इसलिए पब्बजा संस्कार के दौरान शिष्यों से 'संघं शरणं गच्छामि' के रूप में एक वचन संघ के लिए भी लेने की बाध्यता अपनाई गई है। शिक्षा आरम्भ के समय विद्यार्थी को सर्वप्रथम इन संघिओं में ही प्रवेश लेना पड़ता था, किन्तु शिष्यों का उत्तरदायित्व संघ पर न होकर शिष्यों पर होता था।

**3. पब्बजा अथवा छात्र का संघ में प्रवेश -**

पब्बजा का शुद्ध रूप प्रव्रज्या है, जिसका अर्थ है, शिष्य का शिक्षक के पास बाहर जाना। इस संस्कार के द्वारा छात्र को संघ में प्रवेश दिया जाता था। जन्मगत जाति के

अस्तित्व से दूर कोई व्यक्ति अपने बालक को पब्बजा के लिए गुरू के पास ले जा सकता था। पब्बजा के लिए प्रायः 6 से 8 वर्ष तक के बालकों को लाया जा सकता था।[39]

**मौर्य काल में विद्या विषयक विचार एवं महत्व**

**आचार्य कौटिल्य के अनुसार विद्या -**

कौटिल्य के अनुसार आन्वीक्षकी अर्थात आत्मविद्या, तीनों वेद (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद) वार्ता (कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धी ज्ञान) तथा दण्डनीति को ही विद्या कहा जाता है।

**महर्षि मनु के अनुसार विद्या -**

केवल वेद, वार्ता तथा दण्डनीति को विद्या बताया गया है।

**आचार्य बृहस्पति के अनुसार** -

विद्या वार्ता और दण्डनीति को मान्यता प्रदान करते है। इनके अनुसार ब्रह्मविद्या केवल चतुर व्यक्तियों की आजीविका का साधन है, इसकी लौकिक उपयोगिता नहीं है।

आचार्य शुक्र के अनुसार केवल दण्डनीति को ही विद्या मानते है। उनका मानना है कि दण्ड ही सब विद्याओं का मूल स्रोत एवं आरम्भ करने का कारण है।

आचार्य चाणक्य ने आन्वीक्षिकी (आत्म विद्या, तर्क विद्या, अध्यात्मशास्त्र) को सर्वोत्कृष्ट बताते हुए त्रयी में धर्म और अधर्म का वार्ता में अर्थ और अनर्थ तथा दण्डनीति में प्रशासन का सुशासन और दुःशासन का प्रतिपादन हुआ है।

**आन्वीक्षिकी के महत्व का प्रतिपादन -**

आन्वीक्षिकी ही वेदों, वार्ता और दण्डनीति को निर्धारित करती है।

आन्वीक्षिकी - छः दर्शनों में से एक दर्शन या शास्त्र, जिसमें किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान के लिए मतों या विचारों का उचित विवेचन होता है। चाणक्य ने सर्वाधिक महत्व आन्वीक्षिकी विद्या को दिया। व्यक्ति जैसा आचरण करता है, उसका वैसा स्वभाव बनने लगता है।

आचार्य चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य को चक्रवर्ती सम्राट बनाना चाहते थे इसलिए बचपन से ही उन्होंने उसके विचारों में सम्राट के दर्शन करवाये।

आन्वीक्षिकी के तीन रूप बताए गये है -

**1. सांख्य 2. योग 3. नास्तिक दर्शन**

सांख्य का ज्ञान होने से चीजें सरल होने लगती है, सांख्य का ज्ञान सर्वप्रथम कपिल मुनि द्वारा दिया गया था।

योग करने से मस्तिष्क शांति प्राप्त करता है और हमारी सोचने की शक्ति को बल प्रदान करता है।

**नास्तिक दर्शन/लोकायत/ चार्वाक दर्शन -**

जिसका अर्थ होता है, जो प्रत्यक्ष है, उसे मानना, ये भौतिकवादी नास्तिक दर्शन को बतलाता है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखते, स्वयं के बल पर कार्य करने की क्षमता को बल देते हैं।

**वेद विद्या का महत्व -**

त्रयी का अर्थ (साम, ऋक, यजु) इन तीनों का समन्वित रूप ही त्रयी कहलाता है। अर्थवेद और इतिहास वेद भी वेद कहे जाते है।

त्रयी जिन्हें जान लेने से और उसका पालन करने से व्यक्ति उचित मार्ग पर चलकर अभ्युदय और निःश्रेयस को निश्चित कर सकता है।

त्रयी के अनुसार ब्राह्मण का धर्म वेदशास्त्रों का स्वयं अध्ययन करना तथा जिज्ञासु शिष्यों व यजमानों को उनका अध्ययन कराना है।

क्षत्रिय का धर्म वेदशास्त्रादि ग्रन्थों का अध्ययन करना है एवं वैश्य का धर्म शास्त्रों का अध्ययन करना है। शुद्र के लिए शास्त्र या ग्रंथों के अध्ययन से सम्बन्धित तथ्य चाणक्य अर्थशास्त्र में नहीं है। कौटिल्य ने शिक्षा ग्रहण करने के लिए ब्रह्मचर्य के पालन में नित्य स्वाध्याय, यज्ञ व स्नान करे, भिक्षा मांगकर अपनी भूख का निवारण करे और गुरू के आश्रम में ही अपना पूरा समय अर्थात ब्रह्मचर्य की अवधि गुरू के अथवा उनकी

अनुपस्थिति में गुरूपुत्र के या किसी समान मान्यता वाले अपने से वरिष्ठ किसी सहपाठी के समीप उसके अनुशासन में ही रहे।[40]

**अभ्युदय - उत्तरोत्तर वृद्धि**

**निःश्रेयस - कष्टों का अभाव**

**विद्या के अन्तर्गत वार्ता एवं दण्डनीति -**

वार्ता विद्या के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन एवं व्यापार आते हैं। यह विद्या धन, पशु, स्वर्ण-ताम्र आदि द्वारा सम्पन्नता बढ़ाती है। अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार प्रजा, राजा के राजकोष में सहयोग प्रदान करती है। जिससे पालित सेना शक्ति से राजा अपने पक्ष को अनुकूल तथा शत्रु पक्ष वालों को अपने वश में रखने में सफल हो पाता है।

आन्वीक्षिकी त्रयी और वार्ता विद्याओं की सफलता दण्ड पर ही निर्भर होती है। दण्डनीति द्वारा प्रशासन को सुचारू रूप से चलाना प्रजाजनों को सन्मार्ग पर ले जाना, अपराधियों को उचित एवं अविलम्ब दण्ड देना एवं राजा अज्ञानवश अथवा काम, क्रोध में दण्ड नहीं दे आदि समावेशित है।[41]

आचार्य कौटिल्य का मत हैं कि शिक्षा केवल सत्पात्र को ही योग्य बना सकती है।

शिक्षा प्राप्त करने के योग्य अधिकारी को ही सत्पात्र कहा गया है।

**सत्पात्र के लक्षण -**

1. जिन व्यक्तियों में सत्य एवं हितकर बात सुनने की इच्छा हो।
2. सुने हुए को ग्रहण करने की इच्छा
3. ग्रहण किये हुए सत्य को अपनाने की इच्छा
4. अपनी धारणा के गुण-दोषों पर विचार एवं तर्क-वितर्क करने की इच्छा
5. अपनाये गये सत्य को अपने ज्ञान रूप में परिणत करने की इच्छा
6. तर्क-वितर्क के द्वारा सिद्ध हुए निष्कर्ष को अर्थात विवेक सम्मत तथ्य को अपनाने की इच्छा।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार चारों विद्याओं में से किस व्यक्ति को कौनसी विद्या ग्रहण करनी चाहिए इसका निर्धारण चारों विद्याओं के विशेषज्ञ विद्वान् दीक्षित शिष्य का परीक्षण करने के पश्चात् ही उसे जिस विद्या के ग्रहण करने का अधिकारी घोषित करें, शिष्य को वही शिक्षा ग्रहण करना चाहिए।

मुण्डन के उपरान्त जातक को लिपि, वर्णमाला तथा अंकमाला (भाषा और गणित) का अभ्यास कराना चाहिए। उपनयन संस्कार के उपरान्त शिष्य को चरित्र एवं ज्ञान के धनी आचार्यों से आन्वीषिकी की और त्रयी विद्याओं का, व्यापार सम्बन्धी निगमों के अध्यक्षों से बातचीत करने का तथा वक्ता एवं प्रयोक्ता आचार्यों से राजनीतिक सिद्धान्तों - संधि एवं विग्रह आदि का तथा प्रतिदिन अपने जीवन में व्यावहारिक राजनीति का प्रयोग करने वाले, अर्थात कूटनीतिज्ञ व्यक्तियों से दण्डनीति का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए।

यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् व्यक्ति को चौबीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए व्यक्ति को विनय सम्बन्धी प्रशिक्षण को जीवन में अपनाने और उसके समुचित विकास के लिए आयु, विद्या ज्ञान तथा अनुभव में अपने से बड़ों की नित्य संगति करना चाहिए।

कौटिल्य ने राजा के लिए मध्याह्न पूर्व प्रातः आठ बजे तक प्रातराश (नाश्ता) करने के उपरान्त व भोजन से पूर्व हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्र आदि विद्याओं की शिक्षा व अभ्यास में व्यतीत करें। मध्याह्न पश्चात् विश्राम के उपरान्त का समय इतिहास का श्रवण करना चाहिए।

आर्चाय कौटिल्य के अनुसार पुराण, जीवनी, आत्मकथाएँ, सत्यकथाएं, ऐतिहासिक कहानियाँ, मीमांसा, ग्रन्थ तथा अर्थशास्त्र आदि को इतिहास ही कहा जाता है।

राजा को राजकार्य निबटाने के पश्चात् शेष समय में नये-नये विषयों का ज्ञान प्राप्त करना एवं चिन्तन मनन करना चाहिए, क्योंकि राजा को किसी भी सम्बद्ध विषय की पूर्ण एवं स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। इतिहास को सुनने से व्यक्ति की बुद्धि विकसित होती है

एवं आत्मबल और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि से चरित्रवान व दुर्गुणों से मुक्त होता है।[42]

**मौर्यकालीन भारत में शिक्षा विकास -**

मौर्यकाल में शिक्षा के विकास की ओर शासकों का विशेष झुकाव था, जिससे शिक्षा का स्तर ऊँचा था। इस काल में तक्षशिला शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। चंद्रगुप्त मौर्य भी संभ्वतः तक्षशिला का ही छात्र था। शिक्षण संस्थान में दो प्रकार के विद्यार्थी पढ़ते थे। पहले वर्ग के छात्र आचारिया भागदायक कहलाते थे जो धनी वर्ग से सम्बन्धित होते थे, साथ ही आचार्य को फीस देकर पढ़ते थे। दूसरे वर्ग के छात्र धम्मंतेवासिक कहलाते थे, जो निर्धन वर्ग से थे, छात्र आचार्य की सेवा कर पढ़ते थे। शूद्रों का प्रवेश शिक्षालयों में निषिद्ध था। ब्राह्मण आचार्यों को राज्य की ओर से भूमि (ब्रह्मदेय) मिलती थी, जिससे निश्चिंत होकर सदैव अध्ययन-अध्यापन कार्य में लगे रहते थे। इसी काल में पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति हुई और उसमें त्रिपिटकों का संगठन हुआ। तिस्स ने अभिधम्मपिटक की कथावस्तु की रचना की। इसी समय जैन धर्म का प्रसिद्ध आचार्य भद्रबाहु भी हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य और संप्रति जैन धर्म के संरक्षक थे। जंबुरनामी प्रभव और स्वयंभव नामक जैन विद्वान भी इसी युग में हुए एवं जैनसूत्रों की रचना की गई।[43]

**गुप्तयुगीन समाज में भाषा और शिक्षा -**

गुप्तकाल में संस्कृत व प्राकृत भाषाओं का प्रचलन था। संस्कृत इस युग की प्रमुख भाषा थी। इस युग के साहित्य, अभिलेखों एवं लोक प्रचलित मुद्राओं पर संस्कृत का प्रयोग मिलता है। आम जन प्राकृत का भी प्रयोग करते थे। गुप्त युगीन समाज में शिक्षा का प्रचलन काफी हो गया था। प्रसिद्ध आचार्यों द्वारा गुरूकुलों में व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दी जाती थी।

शिक्षा के अन्य प्रमुख केन्द्र अग्रहार ग्राम थे। गुप्त नृपतियों ने अनेक अग्रहार ग्राम विद्वान, ब्राह्मणों व आचार्यों को दान में दिए थे, जहाँ शिक्षा की समुचित व्यवस्था होती थी। एक प्रकार से ये शिक्षाग्राम थे। इस काल में शिक्षा केन्द्र तक्षशिला के अलावा अनेकों शिक्षा केन्द्र बनते जा रहे थे, यथा - पाटलिपुत्र, मथुरा, उज्जैनी, अयोध्या, वाराणसी, वत्सगुलम, नासिक और वल्लभी आदि। विहारों में भी शिक्षा दी जाने लगी

थी। पूर्वी भारत में नालन्दा और दक्षिण भारत में कांची भी शिक्षा के केन्द्र बनते जा रहे थे। शिक्षा देने का ढंग वाचना (पढ़ना), पृच्छना (पूछना), अनुप्रेक्षा (मनन), आम्नाय (कंठाग्र), व्याख्यान, वार्तालाप व वाद-विवाद था। फाहियान लिखता है कि शिष्यों को गुरू के शब्द सुनने, समझने और सोचने पड़ते थे। वेद, वेदांग, पुराण, मीमांसा, स्मृति महाकाव्य, तर्क, दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि शिक्षा के विषय थे। तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा शिल्पियों के गृह पर ही दी जाती थी। इस शिक्षा का प्रचलन परम्परागत व्यावसायिक वर्गों में अधिक था। सामान्यतया क्षत्रियों तथा वैश्यों की अपेक्षा ब्राह्मणों में शिक्षा का प्रचार अधिक था। विद्वान ब्राह्मण भट्ट कहलाते थे। स्त्री शिक्षा का भी प्रचलन था।

**शिल्प शास्त्र एवं गणित-विज्ञान की शिक्षा का विकास -**

हुएनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में पंच विधाओं के साथ शिल्प शास्त्रों की भी शिक्षा दी जाती थी। मानसार जैसे शिल्पग्रन्थ की रचना इसी युग में हुई थी। आचार्य के अनुसार इस ग्रंथ की रचना मानसार राजा ने की थी। शिल्प की तकनीकी शिक्षा शिल्पकार लोग देते थे।

**गणित एवं ज्योतिष विज्ञान -**

इस युग में गणित के शून्य सिद्धान्त का जन्म और दशमलव प्रणाली का विकास हुआ था। इस युग के प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्यभट्ट ने अपने ग्रंथ 'आर्यभट्टीयम[44]' में अंक गणित, बीजगणित, भूमिति के सूत्र व सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा दशमलव-पद्धति का वर्णन किया है। ज्योतिष विज्ञान में 'वैशिष्ट सिद्धान्त', 'पोलिस सिद्धान्त' तथा 'रोमक सिद्धान्त' की रचना इसी युग में हुई। आर्यभट्ट ने ज्योतिष के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया। सर्वप्रथम आर्यभट्ट ने ही गणित तथा नक्षत्र-विद्या में सम्बन्ध बतलाया। उसने पृथ्वी के गोलाकार होने तथा उसको अपने कक्ष के चारों ओर घूमने पर प्रकाश डाला। अपने 'आर्य सिद्धान्त' नामक ग्रंथ में ग्रहण के कारणों का विवेचन करते हुए उसने बताया कि चन्द्रमा तथा पृथ्वी की छाया का प्रतिफल है। इस युग के अन्य ज्योतिषियों में वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, निःशक, पांडुरंग स्वामी और लाटदेव उल्लेखनीय थे। पोलिस और रोमक सिद्धान्तों की विशद व्याख्या लाटदेव ने की है। वराहमिहिर के विभिन्न ग्रंथों में 'वृहतसंहिता' उल्लेखनीय है, जिसमें ज्योतिष, भौतिक, भूगोल, नक्षत्र

विद्या, वनस्पति-विज्ञान, प्राणी विज्ञान और प्राकृतिक इतिहास आदि विविध विषयों का वर्णन किया है। ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म सिद्धान्त की रचना कर यह निरूपित किया कि ''प्रकृति के नियम के अनुसार ही समस्त वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं, क्योंकि पृथ्वी का स्वभाव सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करना व रखना है।''[45]

**भौतिक व रसायन विज्ञान -**

इस युग में रसायन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान नागार्जुन थे। इन्होंने प्रमाणित किया था कि विभिन्न खनिज पदार्थों के रासायनिक प्रयोगों से रोगों का निवारण संभव है। धातुओं को रासायनिक क्रियाओं द्वारा पिघलाने और ढालने की कला से लोग अवगत थे। सुल्तानगंज से प्राप्त धातु की ढली बुद्ध प्रतिमा और मेहरौली का ढला लौह-स्तम्भ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इसी युग में भौतिक विज्ञान की वैशेषिक शाखा ने अणु सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

**शल्य एवं चिकित्सा-विज्ञान -**

पूर्व चिकित्सा-पद्धति काष्ठ-औषधियों पर आधारित थी। नागार्जुन ने 'रस चिकित्सा' एवं खनिज धातुओं की भस्म से चिकित्सा-विज्ञान में क्रान्ति सी कर दी। 'पारद' का आविष्कार उसी ने किया था। इसी काल में वाग्भट्ट ने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अष्टांग हृदय' की रचना की थी। धन्वन्तरी इस युग का प्रकाण्ड चिकित्सक था। पशुचिकित्सक पालकाप्य ने 'हस्त्यायुर्वेद' ग्रंथ को लिखा। शल्य चिकित्सा में नश्तर, चीर-फाड़, घाव स्वच्छ करना, दवा लगाने की भी शिक्षा दी जाती थी।[46]

**हर्ष का विद्यानुराग (590-647 ई.) -**

हर्ष का विद्या के प्रति अनन्य प्रेम था। सम्राट हर्ष एक विजेता ही नहीं, विद्यानुरागी, कवि, नाटककार, ज्ञान का संरक्षक व विद्वानों का आश्रयदाता भी था। हर्ष के प्रियदर्शिका, रत्नावली, नागानन्द, चैतन्य संस्कृत स्त्रोत, सुप्रभा स्त्रोत जैसे ग्रंथ उल्लेखनीय है। हर्ष को व्याकरण-ग्रंथ का रचयिता भी माना जाता है। पद्य-संग्रहों में हर्ष की पद्य रचनाएँ भी मिलती है। बाँसखेड़ा अभिलेख पर प्राप्त उसके हस्ताक्षर की अनुकृति से उसकी सुलिपि का पता लगता है। हर्ष के उपर्युक्त नाटकों की प्रस्तावना में ''श्री हर्षो निपुण कविः'' हर्ष को निपुण कवि कहा गया है। बाण ने अनेक स्थलों पर हर्ष की प्रज्ञा

और कवित्व की प्रशंसा की है। चीनी यात्री इत्सिंग (671-95) ने लिखा है कि शीलादित्य हर्ष ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की कथा को लेकर एक काव्य की रचना की थी, जिसे मंच पर अभिनीत भी किया गया था। विद्यानुरागी हर्ष ने विद्या व विद्वानों को पर्याप्त प्रश्रय दिया था। फाहियान का कथन है कि हर्ष अपनी राजकीय भूमि की आय का चौथा भाग विद्या व विद्वानों के लिए व्यय करता था। हर्ष के विद्यानुराग से शिक्षा की भी अपार उन्नति हुई थी। फाहियान का कथन है कि ''चूँकि विद्या और प्रतिभा का राजा बहुत आदर करता था, जनसाधारण में भी विद्वानों का बहुत मान और आदर था, अधिकारी सभी पण्डितों का ख्याल रखते थे। इसलिए लोगों में विद्यार्जन करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ी हुई थी। फलतः शास्त्र और विज्ञान के जिज्ञासु व्यक्ति थकान और श्रम की चिन्ता न कर विद्या की खोज में प्रवृत्त हो सैंकड़ों मीलों की यात्रा करके शिक्षा-केन्द्रों में पहुँचा करते थे।

**हर्ष की मूल हस्ताक्षर अनुलिपि - बांसखेड़ा अभिलेख -**

महाराजा हर्षवर्धन (606-647 ई.) का एक ताम्रदान पट्ट-लेख इस स्थान से प्राप्त हुआ था, इसका समय 628-629 ई. है, इसमें महाराजाधिराज हर्ष की वंशावली दी हुई है। बांसखेड़ा-अभिलेख की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें स्वयं हर्ष के हस्ताक्षर हैं। यह हस्ताक्षर संभवतः मूल हस्ताक्षर की अनुलिपि है, जिसे ताम्र पट्ट पर उतार लिया गया है। अभिलेख के अंत में यह हस्तलेख सुंदर अक्षरों में इस प्रकार है - 'स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्री हर्षस्य' यह अभिलेख वर्धमान कोटि' नामक स्थान से प्रचलित किया गया था।[47]

**शिक्षा का सुव्यवस्थित प्रारम्भ**

भारत में शिक्षा का उपनयन संस्कार से प्रारम्भ करके एक क्रमबद्ध सुस्थिर तथा धार्मिक स्वरूप प्रदान कर दिया गया। द्विजजाति के लिए यह परमावश्यक संस्कार था। द्विजजाति का कोई भी व्यक्ति उपनयन संस्कार से रहित होने पर जाति से बाहर कर दिया जाता था।[48] यह संस्कार 8 से 12 वर्ष की आयु में किया जाता था।

शिक्षा प्राप्ति के लिए बालक को गुरू के समीप ले जाने के कारण ही इसका नाम उपनयन संस्कार पड़ा। आरम्भिक काल में उपनयन अपेक्षाकृत बहुत सरल था।[49] भावी

विद्यार्थी समिधा काष्ठ को हाथ में लिए हुए गुरू के पास आता था और उनसे शिक्षा ग्रहण करने की अपनी इच्छा प्रकट करके उनके साथ ही रहने की प्रार्थना करता था। किन्तु उपनयन का यह प्रारम्भिक सरल रूप शीघ्र ही जटिल बन गया। सूत्रों एवं स्मृतियों में इस संस्कार का रूप विस्तृत एवं जटिल कर दिया और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण के लिए अनिवार्य भी। सभी प्रमुख सूत्रों तथा स्मृतियों के अनुशीलन से शिक्षा की योग्यता के प्रथम संस्कार का स्वरूप कुछ इस प्रकार का था।[50]

स्नान करके पवित्र बालक को कौपीन पहना कर तीन डोरियों से बनी मेखला बाँध दी जाती थी। ये तीन वेदों की प्रतीक है। शरीर के ऊपरी भाग को मृगछाला या उत्तरीय से ढक दिया जाता था। परवर्ती युग में यही उत्तरीय या मृगछाल ही सूक्ष्म होते-होते यज्ञोपवीत बन गई। यज्ञवेदी के समीप ले जाकर प्रतिभा, शक्ति और बुद्धि के लिए सर्वप्रथम अग्निदेव का आह्वान किया जाता था और तत्पश्चात् अन्य देवों का। फिर बालक एक शिला पर खड़ा होता था, यह विद्यार्जन के दृढ़ संकल्प का सूचक था, तत्पश्चात् बालक को गुरू के समीप ले जाया जाता था उसके उपरांत गुरू शिष्य को स्वीकार करता था। गुरू अपने शिष्य को सर्वप्रथम सूर्य-वन्दना के गायत्री मंत्र से परिचित कराता था। फिर हाथ में दण्ड (भ्रमण एवं यात्रा का प्रतीक) लेकर बालक का ब्रह्मचर्य जीवन प्रारम्भ होता था।

**शिक्षा काल, अवधि एवं अवकाश -**

प्राचीन समय में शिक्षण सत्र श्रावण से पौष या माघ में समाप्त हो जाता था। इस प्रकार अगस्त से फरवरी तक यह छः मास का ही होता था। शिक्षण सत्र के प्रारम्भ में उपाकर्म समारोह किया जाता था।

देवों के आह्वान पूर्वक अग्नि में आहूति दी जाती थी और उनसे आशीर्वाद मांगा जाता था। इसी दिन यज्ञोपवीत भी परिवर्तित किया जाता था। शिक्षा सत्र की समाप्ति पर उत्सर्जन समारोह होता था और विद्यार्थी अपने-अपने घरों को चले जाते थे। किन्तु बाद में पाठ्य विषयों की वृद्धि के साथ ही शिक्षण सत्र का समय बढ़ता गया और इस प्रकार पूरे समय ही छात्र गुरूकुल में रहने लगा। वर्षभर में कुछ अनध्याय दिवस भी होते थे, जिसका अर्थ वेद का अध्ययन नहीं करना होता था।[51] वेदांग, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, निरूक्त तथा अन्य शास्त्रों के अध्ययन के लिए कोई अनध्याय नहीं था।

सामान्यतः दर्श, पौर्णमास, अष्टमी, तीव्र वृष्टि, अत्यधिक शीत, विशिष्ट अतिथि आगमन, माता-पिता-गुरू अथवा निकट सम्बन्धी की मृत्यु अध्ययनकर्ता अथवा अध्ययन स्थान की अपवित्रता आदि के कारण अनध्याय रखा जाता था।

उपनिषदों के कुछ अंशों से ज्ञात होता है कि विद्यार्थी जीवन की अवधि सामान्य रूप से बारह वर्ष थी।[52] किन्तु यह अवधि अधिक भी हो सकती थी। शिक्षा प्राप्ति की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार होता था।[53] शिष्य अपनी कृतज्ञता के प्रतीक रूप में गुरूदक्षिणा देता था। समावर्तन के उपरान्त छात्र विद्वत्मण्डली में उपस्थित होकर उनके प्रश्नों के उत्तर देता था और स्नान किया हुआ वह शिक्षा सम्पन्न व्यक्ति स्नातक कहलाता था। प्राचीन काल में समाज में स्नातक को बहुत सम्मान का पात्र माना गया। स्नातक के सम्मानीय पद से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में शिक्षा का कितना महत्व था।[54]

**अवकाश -** प्राचीन शिक्षा पद्धति में वे अवकाश के दिन भी सुनिश्चित किये गये थे, जब अध्ययन-अध्यापन वर्जित रहता था। इन अवकाश को पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है -

**प्राकृतिक विपदाओं में अवकाश -** प्राकृतिक कारणों से अध्ययन में बाधा उपस्थित होने पर अवकाश घोषित हो सकता था।

**नियमित अवकाश -** शिक्षा-शास्त्रियों ने प्राचीन समय में नियमित रूप से होने वाले अवकाशों के दिन भी निर्धारित किये थे। प्रतिपदा, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी तथा धार्मिक पर्वों जैसे वसंतोत्सव, इंद्रोत्सव (आषाढ़ मास में) उपाकर्म, उत्सर्जन पर अवकाश रहता था।

**राजनीतिक तथा अन्य विशेष घटनायें -** युद्ध, डाकुओं का ग्राम पर आक्रमण, राजा का दुर्घटना ग्रस्त होना, राजा का स्वर्गवास, राजपरिवार में स्वर्गवास ग्राम में आग लगना आदि विशेष घटनाओं पर अवकाश घोषित हो सकते थे। याज्ञवल्क्य ने बत्तीस अवकाशों की सूची दी है।[55]

**अशुभसूचक शब्द और अशुभसूचक समय -** दुखी व्यक्तियों का प्रलाप, कुत्तों का भौंकना, गधों का रैंकना, ऊँटों का बिलबिलाना, उल्लू का चीखना, तीरों की सनसनाहटें

जो घटनायें अनहोनी का संकेत दे, ऐसे समय पर वेदों का अध्ययन न करें। इसके सेवन से देवता कुपित होते हैं।[56]

**शिष्ट अवकाश -** विशिष्ट जनों के आगमन पर शिक्षा संस्था में अवकाश कर दिया जाता था।

**शिक्षा संबंधी संस्कार -**

शिक्षा प्राप्त करना मनुष्य के जीवन में अति महत्वपूर्ण है। यह सामान्यतः ब्रह्मचर्य आश्रम में निहित है। इस अवधि में शिक्षा से संबंधित कुछ विशिष्ट संस्कारों का आयोजन किया था।

**संस्कार पद का अर्थ** - शिक्षा संबंधी संस्कारों को समझने से पूर्व हम यहाँ संस्कार क्या होता है इसका अर्थ समझेंगे।

- 'संस्कार' वह है, जिसके द्वारा मनुष्य किसी योग्य हो जाता है।[57]
- संस्कारों द्वारा गुणों का आधान किया जाता है और दोषों को दूर किया जाता है।[58]
- योग्यता को धारण करने वाली क्रियायें संस्कार कहलाती हैं।[59]

**संस्कारों का उल्लेख -** वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों और आख्यकों में संस्कारों का विशेष उल्लेख नहीं है। संस्कारों का प्रथम वैज्ञानिक विवेचन उपनिषदों में हुआ है। निबंधकारों ने धर्मशास्त्रों की व्याख्या के रूप में जो ग्रंथ लिखे, उनमें विविध संस्कारों के प्रक्रिया सहित वर्णन किये हैं। लक्ष्मीधर भट्ट का 'कृत्यकल्पतरू' मित्रमिश्रकृत 'वीरमित्रोदय' देवनभट्ट द्वारा लिखित 'स्मृतिचंद्रिका'। इनमें संस्कारों की विशद् व्याख्या है। प्रो. कमलेश शर्मा ने प्राचीन भारत में सामज एवं राज्य (पृ.69-80) में संस्कारों का विस्तृत वर्णन किया है और उनका महत्व बताया है।

**संस्कारों का प्रयोजन -** संस्कारों का आरंभ माता के गर्भ में शिशु के आने के साथ हो जाता है। गर्भाधान के समय और गर्भ की अवधि में माता-पिता की प्रवृत्ति, स्वास्थ्य, मानसिक भावना और आहार-विहार का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। संस्कारों के अवसरों पर इष्टमित्रों और परिवारजनों को आमंत्रित किया जाता है। वे सभी उस बालक

के प्रति शुभ-कामनायें प्रकट करते हैं और आशीर्वाद देते हैं। मनु का कथन है कि संस्कारों द्वारा ही मनुष्य द्विज कहलाने का अधिकारी होता है। जन्म से तो वह शूद्र है।[60]

स्त्रियों और शूद्रों को संस्कारों का अधिकार - प्राचीन भारतीय साहित्य जैसे सूत्र ग्रंथों, स्मृतियों और निबंधकारों के ग्रंथों से ज्ञात होता है कि संस्कार ब्राह्मण-क्षत्रि-वैश्य वर्णों के पुरूष वर्ग के लिए सीमित थे। शुद्रों के लिये संस्कारों की आवश्यकता ही नहीं समझी गई अथवा उनके लिए मंत्रों से रहित अनुष्ठानों की व्यवस्था की गई।[61] स्त्रियों के लिए विवाह करके पति की सेवा में ही संस्कारों की सम्पन्नता समझ ली गई।[62] यदि इनके संस्कार करने ही हैं तो मंत्रों के उच्चारण के बिना ही होने चाहिये।[63]

**विद्याध्ययन के संस्कार -**

प्राचीन भारतीय साहित्य में हिंदू परम्परा के रूप में सोलह संस्कार प्रचलित रहे हैं। उनमें से विद्याध्ययन के तीन संस्कार है -

1. उपनयन 2. वेदारंभ 3. समावर्तन

बालक की शिक्षा उपनयन संस्कार से प्रारंभ होती है परन्तु उपनयन से पूर्व बालक की शिक्षा संबंधी स्थिति क्या थी, इसका उल्लेख भी प्राचीन साहित्य में किया गया है। उपनयन से पूर्व जन्म से पाँच वर्ष तक की आयु में बालक को स्वेच्छानुसार आचरण करने की स्वतंत्रता थी। वह इच्छानुसार व्यवहार कर सकता है, बोल सकता है और खा सकता है। उसको मूत्रत्याग और शौच का भी कोई बंधन नहीं है। परंतु वह वेदमंत्रों का उच्चारण नहीं कर सकता।[64] उपनयन से पूर्व बालक माता-पिता, विशेष रूप से माता के समीप रहता है। इस समय माता ही प्रथम शिक्षक होती है। मनु के अनुसार, 'दस उपाध्यायों के समान एक आचार्य का गौरव है, सौ आचार्यों के समान पिता का गौरव है और माता का गौरव हजार पिताओं से भी अधिक है।[65] प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार माता द्वारा बालक को शिक्षा देने के अनेक उदाहरण प्राचीन ग्रंथों में हैं। माता को प्रथम शिक्षिका माना गया है।

(I) हिरण्यकश्यप की पत्नी कयाधु गर्भवती होने पर नारदमुनि के आश्रम में रही। इस समय नारद उसको अध्याम तथा विष्णु-भक्ति का उपदेश देते रहे। इस कारण कयाधु के पुत्र प्रह्लाद विष्णु के महान् भक्त हुये।

(II) माता के मुख से ''रामायण'' और ''महाभारत'' की कथाओं को सुनकर बालक नरेन्द्र के मन में उदात्त उत्कृष्ट भावनायें जन्म लेती रहीं। वे परमहंस रामकृष्ण के शिष्य बने और विवेकानन्द के रूप में विश्व को उन्होंने उपदेश दिया।

(III) मुनीश्वर कर्दम के उपदेश से देवहूति ने ब्रह्मचर्य का पालन करके कपिलमुनि को जन्म दिया।[66]

**उपनयन संस्कार -**

उपनयन संस्कार, शिक्षा प्रारम्भ का वास्तविक संस्कार है। विद्याध्ययन के योग्य आयु का होने पर अभिभावकों द्वारा बालक को गुरू के समीप लाया जाता है। उपनयन संस्कार करके गुरू उस बालक को अपने शिक्षण संस्थान में प्रविष्ट कर लेता है।

**उपनयन पद का अर्थ -**

उपनयन = समीप ले आना का अर्थ

प्राचीन शिक्षा काल में शिक्षा का प्रारंभ वेदाध्ययन से होता था। अतः वेदाध्ययन के लिए बालक गुरू के समीप लाना अनिवार्य था। इस विधि को उपनयन कहा गया था। ''मानव धर्मसूत्र'' और काठक संहिता में उपनयन संस्कार के लिए उपनय पद का प्रयोग हुआ है। अतः उपानय, उपनय, उपनयन, मौंजीबंधन, वटूकरण और व्रतबंध पद समानार्थक हैं।

**उपनयन संस्कार की आयु -**

मनु का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैष्य बालकों का उपनयन उचित आयु में किया जाना अनिवार्य है। निश्चित आयु के व्यतीत हो जाने तक जिन बालकों का उपनयन संस्कार नहीं होता, वे जाति से बहिष्कृत किये जाते हैं। इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा कितनी महत्वपूर्ण थी। ''आश्वलायन गृह्यसूत्र'' के अनुसार उपनयन संस्कार की आयु ब्राह्मण के लिए आठ वर्ष, क्षत्रिय के लिये ग्यारह वर्ष और वैश्य के लिये बारह वर्ष कही गई है। परंतु यह क्रमशः सौलह, बाईस और चौबीस वर्ष तक बनी रहती है।[67] मनु ने भी गर्भाधान काल को ही आयु की गणना का आधार बनाया है।[68]

**कन्याओं का उपनयन संस्कार[69] -**

प्राचीन काल में कन्याओं का उपनयन होता था या नहीं, यह तथ्य भी संदेहास्पद है। वैदिक युग में जबकि स्त्रियाँ वेद-मंत्रों की द्रष्टा एवं ब्रह्मविद्या की ज्ञाता होती थी, तो निश्चित रूप से उनका उपनयन संस्कार होता होगा। 'अथर्ववेद में कन्याओं के ब्रह्मचर्य पालन करने और ब्रह्मचर्य द्वारा पति को प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है।[70] बालिकाओं की शिक्षा का भार गुरू पत्नियों व अन्य विदूषी नारियों पर था। ऋग्वेद के 1.71.3 में कहा गया है कि कन्या विवाह से पूर्व ब्रह्मचर्यपूर्वक पूर्ण विद्वान् पढ़ाने वाली स्त्रियों को प्राप्त होकर पूर्ण विद्या व शिक्षा का ग्रहण तथा विवाह करके प्रजा सुख का संपादन करें। प्राचीन काल की अनेक विदुषी महिलाओं का विवरण प्राप्त होता है। 'स्मृति चंद्रिका' के अनुसार कन्याओं का उपनयन संस्कार विवाह संस्कार के समय किया जाना चाहिये।

**शूद्रों को उपनयन संस्कार का अधिकार -**

तीनों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही उपनयन संस्कार का अधिकार दिया गया था, शूद्र को नहीं। परंतु कुछ अवस्थाओं में शूद्रों के लिए भी उपनयन संस्कार की अनुमति दी गई। 'बोधायन गृह्यसूत्र' में शूद्र रथकार को, जो कि वैश्य पिता और शूद्रा माता की संतान है[71] , उपनयन संस्कार का अधिकार दिया गया था।[72] सत्यकाम जाबालि की कथा इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। जबाला शूद्रा के पुत्र के सत्य आचरण से प्रसन्न होकर आचार्य ने उसका नाम सत्यकाम रखा और उपनयन संस्कार किया। वह अपनी माता के नाम से जाबालि गौत्र से प्रसिद्ध हुआ।

**उपनयन की प्रक्रिया[73] -**

अभिभावक बालक को आचार्य की सेवा में उपस्थित करते थे। आचार्य द्वारा बालक को शिष्य के रूप में स्वीकारना, उपनयन संस्कार के रूप में होता था। उपनयन संस्कार के लिए निम्न प्रक्रियायें की जाती थी।

1. **वस्त्र** - विभिन्न प्रकार की विद्याओं को प्राप्त करने के इच्छुक छात्रों के भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करने के निर्देश प्राचीन साहित्य में है। ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने के इच्छुक छात्र मृगचर्म तथा सैनिक शिक्षा के इच्छुक छात्र को कपास

का बना वस्त्र और दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक छात्र को दोनों प्रकार के वस्त्र धारण करने का निर्देश है। अथवा वह केवल अजिन (मृगचर्म) धारण करे।[74] सामान्यतः ब्रह्मचारी दो वस्त्र पहनते थे - उत्तरवस्त्र और अधोवस्त्र। बृहस्पति, यम और शंख स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मचारी को एणमृग, क्षत्रि ब्रह्मचारी को रूरू मृग के चर्म का और वैश्य वर्ण के ब्रह्मचारी को अवि (भेड़) के चर्म का उत्तर वस्त्र उपयोग में लाना चाहिये।

मनु के अनुसार ब्राह्मण छात्र काले मृग के चर्म के उत्तर वस्त्र को प्रयोग में लावे। आपस्तंब ने ब्राह्मण छात्र के लिए एण या कृष्ण मृग के चर्म का उत्तरीय प्रयोग करने को कहा है।[75]

अधोवस्त्र को वासस् भी कहा गया था। इस वस्त्र को सन्, अलसी के तंतु, दर्भ, ऊन या कपास का बनाया जाता था।[76] मनु के अनुसार ब्राह्मण छात्र को सन के, क्षत्रिय छात्र को क्षौम के और वैश्य वर्ण के छात्र को भेड़ की ऊन के या कपास के अधोवस्त्र का उपयोग करना चाहिये। ये वस्त्र रंगे भी जाते थे। विभिन्न वर्णों के लिये भिन्न रंगों का प्रयोग होता था। वसिष्ठ ने लिखा था कि ब्राह्मण छात्र के लिए श्वेत रंग का, क्षत्रिय छात्र के लिये मंजिका के लाल रंग वस्त्र का और वैश्य छात्र के लिये हल्दी से रंगे वस्त्र का प्रयोग होना चाहिये।[77]

2. **दंड -** उपनयन में शिष्य को वस्त्र धारण करवाकर, आचार्य उसको दंड धारण कराता है। दंड को छात्र के मस्तक या नासिका तक ऊँचा होना चाहिये।[78] ''गौतम धर्मसूत्र'' के अनुसार ब्राह्मण छात्र के लिये पलाश या बिल्व के दण्ड का तथा अन्य वर्णों के छात्रों के लिये अश्वत्थ या पीलु काष्ठ के दंड का उपयोग होना चाहिये। ये दंड ऊपर के सिरे पर मुड़े हुये तथा छाल से मुक्त होने चाहिये।

3. **मेखला -** उपनयन के अवसर पर शिष्य को मेखला भी पहनाई जाती थी। सामान्यतः मेखला मूंज की बनी होती थी। परंतु विभिन्न वर्णों के छात्रों के लिए भिन्न-भिन्न पदार्थों की बनी मेखलाओं का भी विधान किया गया था। वसिष्ठ के अनुसार ब्राह्मण बालक के लिये मूंज की मेखला, क्षत्रिय बालक के लिये मूर्वा की मेखला को और वैश्य बालक के लिए सन की मेखला को धारण किया जाना

चाहिये।[79] बोधायन धर्मसूत्र में सभी वर्णों के लिए मूंज की मेखला को बांधने की अनुमति दी गई है।[80]

4. **मुंडन -** उपनयन संस्कार के समय सिर को मुंडवाया जा सकता था, जटायें रखी जा सकती थी। अश्वा शिखा रखी जा सकती थी।[81]

5. **शिष्य का गर्भत्व -** वस्त्र, दंड और मेखला धारण करा कर आचार्य शिष्य को अपने समक्ष बिठा कर अग्निहोत्र करते हुये उस ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में धारण करता है।[82] उस समय आचार्य शिष्य के लिये यथोचित उपदेश देते हैं। यह प्रक्रिया पूर्ण होने पर आचार्य, ब्रह्मचारी को शिष्य के रूप में अंगीकार करके कहते हैं ''तुम्हारे तथा मेरे मध्य प्रेम, विश्वास और सद्भाव सदा बना रहे।''[83]

6. **मंत्रोच्चरण -** प्राचीन ग्रंथों में सामान्यतः सभी वर्णों के लिये एक ही गायत्री मंत्र के पाठ का विधान है। परन्तु उत्तरवर्ती ग्रंथों में विभिन्न वर्णों के छात्रों के लिये भिन्न-भिन्न मंत्रों के पाठ का उपदेश किया गया है। ब्राह्मण वर्ण के छात्र के लिये तो उपर्युक्त मंत्र गायत्री के रूप में विहित है ही, परन्तु क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के छात्रों के लिये भिन्न-भिन्न मंत्र कहे गये हैं।[84]

7. **अश्मारोहण -** अश्मारोहण का उपनयन में बहुत महत्व है। ब्रह्मचारी को एक विशेष पाषाण-शिला पर खड़ा कर आचार्य उपदेश देते हैं।[85] इस प्रक्रिया का उद्देश्य है कि ब्रह्मचारी अध्ययन और व्रतपालन में पाषाण-शिला के समान अटल ओर स्थिर रहे। इससे बालक पाषाण के समान अभेद्य हो जाता है।[86]

8. **यज्ञोपवीत -** उपनयन के समय शिष्य के बायें कंधे के ऊपर कंठ के पास से, सिर के दाहिने हाथ की बगल में से निकाल कर आचार्य उसको यज्ञोपवीत पहनाते हैं और मंत्रोच्चरण करते हैं। उपनयन संस्कार में यज्ञोपवीत का बहुत महत्व है। इसे ब्रह्मसूत्र भी कहा गया है। इसमें तीन धागे होते हैं। ये मनुष्य के तीन ऋण - देवऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण। तीनों धागों के अन्य अर्थ भी हैं। तीन धागे सत्व, रजस और तमस् के भी परिचायक है। इन तीनों धागों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन देवताओं के निवास की भी कल्पना की गई है।

9. **भिक्षाचर्या -** यज्ञोपवीत के पश्चात् ब्रह्मचारी विधिवत् आचार्य का शिष्य हो जाता है। अब आचार्य उसको भिक्षा मांगने का उपदेश देता है। उसको सब वर्णों से भिक्षा की याचना करनी चाहिये। मनु के अनुसार ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम अपनी माता तथा बहन और मौसी से भिक्षा मांगनी चाहिये। जिससे की उसका अपमान न हो।[87] उत्तरवर्ती समय में शिक्षण संस्थाओं की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो जाने से यह प्रक्रिया परंपरा का निर्वाह मात्र था।

10. **प्रतिज्ञा -** उपनयन संस्कार की अंतिम प्रक्रिया प्रतिज्ञा थी। दोनों एक-दूसरे प्रतिज्ञा कराते थे एवं मंत्रोच्चारण से देवताओं का आशीर्वाद संयुक्त रूप से प्राप्त करते थे। इस प्रकार उपनयन संस्कार के अनंतर ब्रह्मचारी, आचार्य के कुल का सदस्य हो जाता है।

11. **वेदारंभ संस्कार -** बालक का उपनयन संस्कार होने पर वह आचार्यकुल अथवा गुरूकुल में निवास करने लग जाता था। निवास करने के साथ ही उसकी वास्तविक शिक्षा प्रारंभ करने के अवसर पर वेदारंभ संस्कार संपन्न किया जाता था। छात्र की शिक्षा क्योंकि वेद-मंत्रों के अध्ययन से प्रारंभ होती थी, अतः इसका वेदारंभ कहा गया। यह संस्कार प्रक्रिया निम्न प्रकार थी -

(I) **श्रावणी उपाकर्म -** श्रावण मास की पूर्णिमा से शिक्षा का प्रारंभ होता था। अतः वेदारंभ संस्कार को श्रावणी उपाकर्म भी कहा गया।[88] श्रावणी का तात्पर्य है वार्षिक अध्ययन के सत्र का प्रारंभ। इस दिन नव प्रविष्ट ब्रह्मचारियों का वेदारंभ संस्कार सम्पन्न किया जाता था। पुराने छात्रों को भी आचार्य विशेष उपदेश देते थे। इस उपलक्ष्य में ब्रह्मचारियों को विशेष भोजन के लिये आचार्य आमंत्रित करते थे।

(II) **आचार्य द्वारा आदेश और अनुदेश -** वेदारंभ संस्कार में उपवीत ब्रह्मचारी आचार्य के समक्ष बैठ जाते हैं। ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना, उपासना और हवन के अनंतर आचार्य ब्रह्मचारी को उपदेश देते हैं। आचार्य से ब्रह्मचारी प्रार्थना करते हैं। आचार्य, गायत्री मंत्र का उपदेश ब्रह्मचारियों को देते हैं। आचार्य एक-एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करा कर गायत्री मंत्र का स्मरण कराते हैं। ब्रह्मचारी को बारह वर्षों तक वेदों का अध्ययन पूरा होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करना

चाहिये। अधर्म आचरण, क्रोध, मिथ्या भाषण को छोड़ देना चाहिये। अत्यधिक स्नान, अतिभोजन, अतिनिद्रा, अतिजागरण, परनिंदा, लोभ, मोह, भय और शोक को त्याग दो। रात्रि के अंतिम प्रहर में निद्रा को त्याग कर आवश्यक कर्म दंतधावन, स्नान संध्योपासना, ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना, उपासना और योगाभ्यास का नित्य आचरण करे। भूमि पर शयन, नृत्य, गीत, वाद्य, गंध और अंजन का सेवन नहीं करे। शरीर में वीर्य का संरक्षण करे। नित्य नियम से उचित आहार-विहार करते हुये विद्या को ग्रहण करने का प्रयास करते रहो।

**12. समावर्तन संस्कार -** विद्याध्ययन के तीन संस्कारों में से अन्तिम संस्कार है समावर्तन संस्कार। वर्तमान में इसे दीक्षांत संस्कार कहा जाता है। समावर्तन संस्कार के अनंतर ब्रह्मचारी को स्नातक कहा जाता था। आचार्य शिष्य को घर जाने की अनुमति देते थे। समावर्तन पद का अर्थ है - ''वापिस लौटना''। उपनयन संस्कार से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए चारों वेदों और अन्य विद्याओं का अध्ययन करके गुरूकुल से वापिस आना।

अनेक शास्त्रकारों जैसे गौतम, याज्ञवल्क्य, आश्वलायन एवं मनु ने समावर्तन को 'स्नान' संस्कार कहा है। मनु ने स्नान और समावर्तन दोनों पदों का प्रयोग किया है।[89] शास्त्रकारों के अनुसार स्नातक के भी तीन प्रकार थे -

1. विद्यास्नातक 2. व्रतस्नातक 3. विद्याव्रत स्नातक[90]

1. **विद्यास्नातक** - जिसने विद्याध्ययन तो किया है, परंतु व्रतों का पालन नहीं किया, वह विद्यास्नातक है।
2. **व्रतस्नातक** - जिसने विद्याध्ययन न करके व्रतों का पालन किया हो, वह व्रतस्नातक है।
3. **विद्याव्रतस्नातक** - जिसने विद्याध्ययन भी किया हो और व्रतों का पालन भी किया हो, वह विद्याव्रतस्नातक है।[91]

'स्नातक' से अभिप्राय जिसने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये विद्यारूपी जल में स्नान कर लिया है। मनु के अनुसार 'स्नातक को केश-नख, दाढ़ी-मूँछ कटवाने चाहिये,

दमनशील एवं पवित्र आचरण, स्वाध्यायशील, उत्तम वस्त्र धारण करने वाला होना चाहिये।[92]

स्नातक को सूर्य से भी अधिक तेजस्वी एवं दीप्तिमान माना गया है। अतः सूर्य को अपमान से बचाने के लिये समावर्तन संस्कार वाले दिन स्नातक को प्रातःकाल से ही एक कमरे में बंद कर देते थे।[93]

**शिक्षा प्रारम्भ करने के लिए विद्यार्थी की आयु व शिक्षावधि -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में औपचारिक शिक्षा उपनयन संस्कार के साथ शुरू होकर समावर्तन संस्कार के साथ पूरी होती है। वैसे तो अनौपचारिक रूप से मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु होने तक विद्या प्राप्त करता रहता है।

(1) **शिक्षा प्रारंभ करने की आयु** - बालक का उपनयन संस्कार करके बालक को आचार्यकुल में प्रविष्ट कर आचार्य उसको शिक्षा देना प्रारंभ करते थे।

मनु ने ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य बालकों के उपनयन संस्कार की आयु दो प्रकार से कही है -

(I) ब्राह्मण बालक के लिये उपनयन संस्कार की आयु आठ वर्ष, क्षत्रिय बालक के लिये ग्यारह वर्ष और वैश्य बालक के लिये 12 वर्ष है।[94] भवभूति ने वर्णन किया है कि वाल्मीकि ने लव-कुश का उपनयन संस्कार उनकी ग्यारह वर्ष की आयु में किया था।[95]

(II) मनु ने यह भी लिखा है कि यद्यपि ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य के लिए उपनयन संस्कार की आयु सामान्यतः 11-12 वर्ष है तथापि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के इच्छुक ब्राह्मण बालक का पाँच वर्ष की आयु में, शौर्य को प्राप्त करने की इच्छा करने वाले क्षत्रिय बालक का छः वर्ष की आयु में और धन को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले वैश्य बालक का आठ वर्ष की आयु में उपनयन किया जाना चाहिये।[96]

**(2) अध्ययन की अवधि** - अनेक धर्मशास्त्रों में अध्ययन की अवधि का निर्देश किया गया है।

सामान्यतः उपनिषदों से विदित होता है कि ब्रह्मचर्य (अध्ययन) की यह अवधि बारह वर्ष की थी।[97] श्वेतकेतु आरूणेय ने पिता के आदेश से बारह वर्षों तक वेदों का अध्ययन किया और चौबीस वर्ष की आयु होने पर यह अध्ययन पूरा हुआ।[98] अनेक शास्त्रकारों ने वेदों के अध्ययन का समय 48 वर्ष निर्धारित किया है, जो कि प्रत्येक वेद के लिए बारह वर्ष है। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण'[99] , 'गोपथ ब्राह्मण'[100] और 'पारस्कर गृह्यसूत्र'[101] में वेदाध्ययन की अवधि 48 वर्ष कही गई है। महर्षि दयानन्द ने 'सुश्रुत संहिता' के संदर्भ में ब्रह्मचर्य की आयु 24-30-36-40-44-48 वर्ष कही है।[102]

**शिष्य की योग्यता -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के लिए छात्र-छात्राओं की योग्यता पर विशेष ध्यान दिया गया था। विद्यालयों में योग्य छात्र ही प्रवेश पा सकते थे।

**योग्य एवं अयोग्य छात्र का चुनाव/चयन -**

सामान्यतः शिक्षक को अधिकार था कि वह नव-प्रविष्ट छात्रों की योग्यता का निरीक्षण करे। निरीक्षण का समय छः महीने से एक वर्ष तक था। निरीक्षण के पश्चात् ही अध्यापन प्रारंभ होता था। अष्टांग हृदय ने शिक्षा के अध्ययन के लिए छः महीनों की परिवीक्षा का समय रखा था।[103] रहस्यमय विद्याओं के अध्यापन के लिए अधिक लम्बी अवधि तक परीक्षा का समय रखा जा सकता था। शास्त्रकारों का कथन है कि अयोग्य शिष्य को कभी भी विद्या नहीं देनी चाहिये। चाहे विद्या के साथ मर भी जावे, परंतु अयोग्य ऊसर शिष्य को कभी भी शिक्षा न दे।[104] यदि छात्र में अध्ययन करने की योग्यता और उत्साह नहीं है, तो ऐसे शिष्य पर समय व्यय करना व्यर्थ है।

मनु ने अयोग्य छात्र को विद्यादान करने का स्पष्ट निषेध किया है। ब्रह्मवादी अध्यापक को चाहिये कि वह चाहे मर जावे, परन्तु आपातकाल में भी अपात्र को विद्या न दे।

''जिसके अंदर स्वयं का बल नहीं है, सहायक उसकी क्या सहायता करेगा?[105] मलयपर्वत पर विद्यमान बांस भी बांस ही रहता है, चंदन नहीं हो जाता। जिसके अंदर स्वयं अपनी बुद्धि नहीं है, शास्त्रों की उक्तियों से भी वह क्या कर लेगा? आंखों से रहित

व्यक्ति के लिए दर्पण का क्या प्रयोजन है?[106] शिक्षकों के विविध बुद्धि के शिष्य होते थे - कुछ बुद्धिमान् और कुछ कम बुद्धि वाले। परन्तु शिक्षक सभी को समान रूप से विद्या पढ़ाता है। तथापि इन शिष्यों के ज्ञान में महान् अंतर होता है।[107] अतः गुरू को चाहिये कि शिष्य की योग्यता का निरीक्षण करके ही उसको विद्या का उपदेश दे।

**प्रवेश परीक्षा -**

प्राचीन समय में, कोई परीक्षा प्रणाली, उपाधि, प्रमाण पत्र नहीं होते थे। विभिन्न गुरूकुलों में विभिन्न तरीकों से प्रवेशार्थी की कठोर परीक्षा लेते ही थे। चरित्रहीन छात्रों का प्रवेश तो सर्वथा वर्जित था।[108] कम बुद्धि वाले छात्रों को यदि प्रवेश मिल भी जाता था किन्तु प्रगति नहीं होने पर उस छात्र को विद्यालय से निकाला भी जा सकता था।

तक्षशिला, नालन्दा विश्वविद्यालयों में प्रवेश के समय छात्रों से प्रश्न पूछते थे। संभवतः प्रवेशार्थियों में से 2-3 को ही प्रवेश मिल पाता था।

**अनुशासन एवं दंड -**

'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' के अनुसार आचार्य को चाहिये कि शिष्य के प्रति स्नेह का व्यवहार करे। किन्तु स्नेहमय व्यवहार का यह अर्थ नहीं है कि शिष्य उद्दंड हो जावे। आचार्य, शिष्य को सुधारने के लिए कठोर दण्ड दे सकता है।

मनु के अनुसार, ''आचार्य को शिष्य के प्रति कोमल और मधुर व्यवहार करना चाहिये।[109]

प्राचीन साहित्य में गुरू द्वारा शिष्य को अनुशासन में रखने के लिए विस्तृत निर्देश है। शास्त्रकारों का कथन है कि अधिक लाड़-प्यार करने से बालक बिगड़ जाते हैं अतः उनको कठोर अनुशासन में रखना चाहिये एवं गलत आचरण करने पर दण्डित भी करना चाहिये। लाड़ करने से छात्र में अवगुण बढ़ते हैं तथा दंड का भय उनमें गुणों का आधान करता है, क्योंकि इससे वे गलत मार्ग पर जाने से डरते हैं।[110]

शारीरिक दंड के संबंध में शास्त्रकारों का कथन है कि शिष्य के प्रति शारीरिक प्रताड़ना अंतिम उपाय के रूप में होना चाहिये। गुरू को चाहिये कि वह पहले शिष्य को समझावे, भय दिखावे, भोजन बंद कर दे, ठंडे जल में गोते लगवाने या अपने सामने ही संस्था से निष्कासित कर दे, यदि ताड़ना करनी है तो सावधानी से करे। गंभीर अपराध

करने पर शिष्य के पृष्ठ भाग पर प्रहार करे। सिर या कोमल अंगों पर कभी भी प्रहार नहीं करना चाहिये।[111]

महाभाष्यकार शुद्ध स्वरों के उच्चारण पर विशेष बल देते थे। उनके अनुसार यदि स्वर का अशुद्ध उच्चारण करता है, तो उसको चपत मारकर सावधान करना चाहिये।

**पाठ्य विषय एवं अध्ययन प्रक्रिया -**

प्राचीन समय से ही शिक्षा के विभिन्न विषयों का क्षेत्र बहुत विशाल रहा है। वेदाध्ययन करना तो शिक्षा का प्रथम क्षेत्र था ही। वेदाध्ययन का अर्थ था - मंत्रों तथा विशिष्ट शाखा या शाखाओं के ब्राह्मण भाग का अध्ययन। किन्तु शीघ्र ही नवीन विद्याओं और विषयों के विकास के साथ-साथ पढ़ाए जाने योग्य विषयों का क्षेत्र भी बढ़ता गया, और समय की गति के अनुसार पाठ्यविषयों में परिवर्तन भी होता गया। वैदिक युग में ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई, यज्ञीय कर्मकाण्ड जटिल हुआ और तदनुकूल ही ब्राह्मण ग्रंथ भी पाठ्यक्रम में जुड़ गए।[112]

उपनिषद काल में पाठ्य विषयों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। छान्दोग्य उपनिषद के एक प्रसंग में पाठ्य विषयों की विस्तृत सूची मिलती है। सनत्कुमार से नारद कहते हैं कि ''मैंने चारों वेद, पाँचवें वेद के रूप में इतिहास पुराण, व्याकरण, पित्र्य (श्राद्ध पर प्रबन्ध), राशि (अंकगणित), देव (भूकम्प वायुकोष आदि लक्षण विद्या), एकायन (राजनीति), देवविद्या (निरूक्त), ब्रह्मविद्या (छन्द एवं ध्वनि विद्या), भूत विद्या, क्षत्रविद्या (धनुर्वेद), नक्षत्र विद्या, सर्पविद्या, देवजन विद्या (नृत्य, गीत) सीख ली थी।[113] गौतम एवं आपस्तम्ब वेदांगों, धर्मशास्त्रों, उपवेदों तथा पुराणों को राजा के लिए पठनीय बताते हैं।[114] याज्ञवलक्य के युग तक आते-आते चौदह विद्याएँ प्रसिद्ध हो चुकी थी, जो इस प्रकार थी - चार वेद, छः वेदांग, पुराण, न्याय, मिमांसा तथा धर्मशास्त्र।[115] कतिपय पुराणों ने इन्हीं चौदह विद्याओं में चार विद्याएँ और जोड़कर अठारह विद्याओं की चर्चा की है; ये चार और विद्याएँ हैं - आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद तथा अर्थशास्त्र नामक चार उपवेद।[116]

पाठ्य विषयों में उस समय शिक्षा में परा, अपरा सभी विद्याओं से सम्बद्ध विषय पढ़ाए एवं पढ़े जाते थे। व्यक्ति की शिक्षा में साहित्यिक और उपयोगी विषयों का सुन्दर

समन्वय था। क्रमशः जैसे-जैसे साहित्य की विभिन्न विधाओं पर विशाल एवं सम्पूर्ण साहित्य का प्रणयन होता गया तथा ज्योतिष एवं औषध शाखाएँ विस्तृत होती गई, वैसे ही वेदाध्ययन में शिथिलता आने लगी। इस शिथिलता को दूर करने के लिए ही स्मृतियों ने वेदाध्ययन करना द्विजाति का परम कर्त्तव्य कहा तथा अवैदिक ग्रंथ पढ़ने वालों की तीव्र भर्त्सना की।[117] किन्तु शिक्षा में वेद से विभिन्न विषयों का महत्त्व बढ़ता ही रहा। बौद्ध जातकों से इस विषय पर बहुत प्रकाश पड़ता है। जातकों के अनुसार उस समय युवक वेदों और अठारह शिल्पों का अध्ययन करते थे। धनुर्विद्या, वैद्यक, गणित, सर्पविद्या, जादू, कृषि, व्यापार, पशुपालन आदि सब इन शिल्पों में समाविष्ट थे।[118]

**विद्यार्थी संख्या -**

प्राचीन शिक्षा पद्धति में आचार्य प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देते थे। एक गुरू के पास 15-20 शिष्य ही रहते थे। भारतीय शिक्षा-पद्धति का ध्येय है कि आचार्य और शिष्यों में अधिक से अधिक व्यक्तिगत संपर्क हो। अतः आचार्य के पास छात्रों की संख्या कम ही होनी चाहिये। प्राचीन उपलब्ध विवरणों से विदित होता है कि एक शिक्षक के पास सामान्यतः पन्द्रह छात्र विद्या प्राप्त करते थे।

**वरिष्ठ छात्रों द्वारा अध्यापन -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में वरिष्ठ छात्रों द्वारा अध्यापन कार्य करवाया जाता था। इन छात्रों को वृद्धतर छात्र कहा जाता था। इनका सम्मान आचार्य के समान होता था।[119] जातक साहित्य से विदित होता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में इस प्रकार की व्यवस्था थी। कुरू जनपद के राजकुमार वृद्धतर सब्रह्मचारी सुतसोम ने वाराणसी जनपद के राजकुमार को पढ़ाया था।[120] आचार्यों की अनुपस्थिति में वरिष्ठ छात्र अध्ययन-अध्यापन का कार्य संभाल लेते थे।[121] इससे अध्यापन कार्य अवरूद्ध नहीं होता था।

**प्रश्नोत्तर विधि एवं परिषदें -**

यह प्रश्नोत्तर विधि अत्यधिक प्रचलित थी। छात्र अपने गुरू से प्रश्न पूछते थे और गुरू उसका उत्तर देते थे। सूत्र ग्रंथों तथा उपनिषदों में इस पद्धति का विस्तृत विवरण मिलता है। विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थ भी आयोजित किये जाते थे।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर और परिषदों के आयोजन महत्वपूर्ण थे। 'वृहदारण्यक उपनिषद में जनक द्वारा आयोजित एक विद्वत्परिषद का विस्तृत वर्णन है। शिक्षणालयों के संचालन में परिषदों का महत्वपूर्ण भाग, विश्वविद्यालयों के संचालन, पाठ्यक्रम-निर्धारण, शिक्षा विधि को सुनिश्चित करने के लिए परिषदें होती थी।

गौतम के अनुसार, ''चार वेदों के चार विद्वान, एक छात्र, एक गृहस्थ, एक सन्यासी और विभिन्न विषयों के तीन विद्वान।[122]

साहित्य एवं विद्वानों के अनुसार शिक्षाविधि के जैन साहित्य के अनुसार शिक्षा विधि के पाँच पद बताये थे -

(I) पठन - सबसे पहले पढ़ना

(II) प्रश्न - पाठ के विषय में किसी प्रकार की शंका होने पर आचार्य से प्रश्न करना।

(III) मनन - पुनः पढ़े हुये पाठ पर मनन करना।

(IV) स्मरण - इसके बाद उस पाठ को स्मरण कर लेना।

(V) व्याख्यान - अंत में उस पाठ के संबंध में व्याख्या देना।

श्री हर्ष ने ''नैषधीय चरितम्' में अध्ययन की चार सीढ़ियों का वर्णन किया है - अध्ययन, ज्ञान, आचरण और प्रचार।''[123]

**कौटिल्य की शिक्षा विधि के सात पद -**

(I) शुश्रूषा - विद्यार्थी में आचार्य से ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा।

(II) श्रवणम् - आचार्य से पाठ को सुनना।

(III) ग्रहणम् - सुने हुये पाठ को स्मरण करना।

(IV) धारणम् - ग्रहण किये पाठ का स्मरण और चिंतन करना।

(V) अपोह - पढ़े हुये पाठ पर आचार्य से प्रश्नोत्तर और वाद-विवाद करना।

(VI) विज्ञान - पाठ के अर्थों को समुचित रूप से जान लेना।

(VII) तत्वाभिनिवेश - अधीत विद्या को प्रयोग में लाना।[124]

**अध्यापन का समय -**

प्राचीन समय में अध्ययन का समय ब्रह्ममुहूर्त ही शुभ माना गया था। छात्र प्रातः काल नित्यकर्म से निवृत्त होकर अध्ययन के लिए बैठ जाते थे। मध्याह्न में भोजन के बाद अध्ययन चलता होगा। ''महाभारत'' में वर्णन है कि द्रोणाचार्य छात्रों को प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्ति के बाद अध्यापन कराते थे।

अनेक छात्र जो शुल्क न देने के कारण आचार्य के घर कार्यों को करते थे, उन छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था रात्रि में होती थी। तक्षशिला विश्वविद्यालय में इस प्रकार की व्यवस्था के लिए निश्चित प्रमाण जातक साहित्य में मिलते हैं।[125]

**परीक्षा प्रणाली -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में कोई समयबद्ध पाठ्यक्रम नहीं था, जिसकी परीक्षा आधुनिक शिक्षा पद्धति की तरह ली जा सके, लेकिन गुरूकुलों में आचार्य प्रत्येक छात्र की ओर व्यक्तिगत ध्यान देते थे। वे उसकी योग्यता और प्रतिभा के अनुसार उसे आगे से आगे पढ़ाते जाते थे। मेधावी छात्र आगे निकल कर अपनी शिक्षा पूरी कर लेते थे, जबकि मंद-बुद्धि छात्र पीछे रह जाते थे।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में प्रत्येक छात्र को प्रतिदिन ही परीक्षा देनी होती थी। छात्र को अगला पाठ तब तक नहीं पढ़ाया जाता था जब तक कि पिछला पाठ उसको पूरी तरह समझ न आ जाये और वह उसको स्मरण न कर ले।[126] जो छात्र पिछले पाठ के किसी अंश को भूल जाते थे, तो आचार्य उसकी आगे की पढ़ाई को तब तक के लिये स्थगित कर देते थे, जब तक कि वह अपने पुराने पाठ को स्मरण न कर ले।[127]

शिक्षा के पूरा होने पर छात्रों से कहा जाता था कि वे स्थानीय परिषद के सामने अपने को उपस्थित करें। इस परिषद में दस सदस्य होते थे।[128] इसके अतिरिक्त इन विद्वान स्नातकों को राजसभा में और राजकीय यज्ञों के अवसरों पर भी उपस्थित होने का निर्देश प्राप्त होता था। यहाँ उनसे प्रश्न पूछे जाते थे, जिससे उनकी अर्थात् उनकी विद्या की परीक्षा होती थी।[129]

'चरक संहिता' के विमान स्थान के आठवें अध्याय में शास्त्र और आचार्य की परीक्षा का विस्तृत वर्णन है। इस परीक्षा के अनंतर ही चिकित्सक को चिकित्सा कार्य को प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में निष्कर्ष स्वरूप यह निकलता है कि छोटी कक्षाओं में पाठ स्मरण पद्धति से छात्र आगे की ओर बढ़ते चले जाते थे एवं स्नातक स्तर पर परिषद, राजसभा, राजकीय यज्ञों के द्वारा उसका साक्षात्कार होता था। शास्त्रों में काव्यकारों, शास्त्रकारों की परीक्षा का विवरण है, इनमें उपवर्ष, वर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्याडि, बररूचि और पतंजलि की परीक्षा हुई थी।[130]

**परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ -**

वैदिक काल में शिष्यों के सफल होने पर प्रमाण-पत्र नहीं दिये जाते थे, उनकी योग्यता ही उनका प्रमाणपत्र होती थी। जो छात्र गुरूकुलों का 12 वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम अथवा किसी एक वेद का अध्ययन पूरा कर लेते थे, उन्हें स्नातक, जो 24 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं दो वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें वसु, जो 36 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं तीन वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें रूद्र, और जो 48 वर्षीय पाठ्यक्रम (चारों वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें आदित्य कहा जाता था।

शिष्यों के पारस्परिक संवाद, व्याख्यान एवं प्रश्नोत्तरों में शिष्य की योग्यता प्रकट होती जाती थी। राम ने सफलतापूर्वक ताड़का का वध कर दिया, तो उन्हें योग्य मान कर गुरू ने दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया और यज्ञ विध्वंस करने वाले राक्षसों के वध की आज्ञा देकर राम-लक्ष्मण के ज्ञान की एक तरह से परीक्षा ले ली।[131] महाभारत में द्रोणाचार्य ने कौरवों-पाण्डवों को अस्त्रशिक्षा देकर जब जब जनसमूह के समक्ष उनके अस्त्र-कौशल का प्रदर्शन आयोजित किया, तब वह वस्तुतः परीक्षा ही थी। गुरूकुलों में आए हुए विभिन्न अतिथि आचार्यों और विद्वानों के समक्ष तर्कपूर्वक अपना पक्ष प्रस्तुत करना भी परीक्षा का ही प्रकार था।

**प्राचीन काल में शिक्षा में अनुशासन (वैदिक काल) -**

प्रारम्भिक वैदिक काल में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक संयम से लिया जाता था। उस काल में शारीरिक संयम से तात्पर्य था - ब्रह्मचर्य

व्रत का पालन, श्रृंगार न करना, सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग न करना, नृत्य एवं संगीत में आनन्द न लेना, मादक पदार्थों का प्रयोग न करना, जुआ न खेलना, गाय नहीं मारना, झूठ न बोलना और चुगली न करना। मानसिक संयम से अभिप्राय - सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन और काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद से दूर रहना और आत्मिक संयम से तात्पर्य था - आत्मा के स्वरूप को पहचानना, सबमें एकात्म भाव देखना और सबके कल्याण के लिए कार्य करना। परन्तु उत्तर वैदिक काल में शिष्यों द्वारा गुरूओं के आदेशों और नियमों के पालन को ही अनुशासन माना जाने लगा, जो शिष्य इनका पालन नहीं करते थे उन्हें दण्ड दिया जाता था। शारीरिक दण्ड विशेष परिस्थितियों में ही दिया जाता था।

**शिक्षण प्रणाली एवं शिक्षा प्रविधियाँ -**

प्राचीन भारत में शिक्षण कार्य मौखिक था। सर्वप्रथम ओंकार, व्याहृतियाँ तथा गायत्री सिखाई जाती थी।1 गायत्री एक छन्द है जो ऋग्वेद के सात प्रसिद्ध छंदों में एक है। यह सात छंद हैं - गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, विराट, त्रिष्टुप, जगती।

गायत्री छंद में आठ-आठ अक्षरों के तीन चरण होते हैं। ऋग्वेद के मंत्रों में त्रिष्टुप को छोड़कर सबसे अधिक संख्या गायत्री छंदों की है। गायत्री के तीन पद होते हैं। जब छंद या वाक के रूप में सृष्टि के प्रतीक की कल्पना की जाने लगी तब इस विश्व को त्रिपदा गायत्री का स्वरूप माना गया। जब गायत्री के रूप में जीवन की प्रतीकात्मक व्याख्या होने लगी तब गायत्री छंद की बढ़ती हुई महत्ता के अनुरूप विशेष मंत्र की रचना की गई।

तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गोदेवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्।(ऋग्वेद 3,62,10)

यह मंत्र चारों वेदों में आया है। इसके ऋषि विश्वामित्र है और देवता सविता है। इस मंत्र में 24 अक्षर हैं। उनमें आठ-आठ अक्षरों के तीन चरण हैं। किंतु ब्राह्मण ग्रंथों में और कालांतर के समस्त साहित्य में इन अक्षरों से पहले तीन व्याहृतियाँ और उनसे पूर्व प्रणव या ओंकार को जोड़कर मंत्र का पूरा स्वरूप इस प्रकार स्थिर हुआ।

शब्दार्थों की दृष्टि से गायत्री और सावित्री पर्यायवाचक माने जाते हैं पर जब साहित्यिक शब्दार्थ से आगे बढ़कर आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो दोनों की प्रकृति में भिन्नता आ जाती है। गायत्री का तप करके ब्रह्मा जी ने उच्च स्तरीय ज्ञान प्राप्त किया था। पर जब सृष्टि संरचना की आवश्यकता पड़ी तो पदार्थ सम्पदा सावित्री का आश्रय लेना पड़ा।

शास्त्रकार कहते हैं:-

ओंकारद व्याहृतिभवति, व्याहृतो गायत्री भवति, गायत्री सावित्री भवति, सावित्र्याः सरस्वती भवति, सरस्वत्या वेदा भवन्ति वेदेभ्यो लोकः

ओंकार से व्याहृतियाँ हुई। व्याहृतियों से गायत्री। गायत्री से सावित्री, सावित्री से सरस्वती, सरस्वती से वेद और वेद से लोक उत्पन्न हुए।

उपर्युक्त शास्त्र विवेचन में गायत्री और सावित्री के प्रत्यक्ष स्वरूप में क्या अन्तर है, यह स्पष्ट किया गया है। 24 अक्षरों के साथ तीन व्याहृतियाँ (भूर्भुवः) लगाने में वह गायत्री मंत्र रहता है और उनके साथ सप्त महा व्याहृतियाँ लग जाने पर उसकी संज्ञा सावित्री हो जाती है।

तदुपरान्त वेद के अन्य भाग पढ़ाए जाते थे। वेद को ज्यों का त्यों भविष्य की पीढ़ियों तक ले जाने के लिए अनेक सुव्यवस्थित नियम बनते गए। वेदों के संरक्षण एवं श्रुति परम्परा से उनके शिक्षण को ध्यान में रखकर आठ प्रकार के पाठ उपाय रूप में प्रयुक्त होते थे, जिनसे वेद का पाठ नितान्त शुद्ध रूप में ग्रहण किया जाता था -

जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वजो, दण्डो, रथो, धनः।

अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा मनीषिभिः।।

शिष्य गुरूमुख से श्रवण किए गए पाठ को दोहराता, अपनी त्रुटियाँ सुधारता, प्रश्न पूछता तथा इस प्रकार उस पाठ को कण्ठस्थ कर लेता। प्राचीन काल में वेद लिपिबद्ध नहीं थे। लेखन कला आने पर भी वेदों को लिपिबद्ध न करने के पीछे अनेक कारण रहे। वेदों को लिपिबद्ध कर देने से भगवती श्रुति के अपवित्र हाथों में पड़ने की आशंका थी, लिपिकारों के अज्ञान और प्रमाद से वेद के स्वरों और वर्णों के दूषित ढंग से लिखे जाने की संभावना थी। बिना पुस्तकों की सहायता के ज्ञान प्राप्ति होना प्राचीन शिक्षण प्रणाली

की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। शिक्षा के पुस्तगत न होने के कारण छात्र सम्पूर्ण मनोयोग पूर्वक विषय को ग्रहण तथा स्मरण करता था। अर्थज्ञान के बिना केवल रटना ही पर्याप्त नहीं था। अतः वेदों का अध्ययन मंत्रों को कण्ठस्थ करना ही नहीं प्रत्युत अर्थ भी समझना है।[132] श्रुति परम्परा से वेदों के संरक्षण के साथ-साथ ब्राह्मण एवं उपनिषदकाल में व्याख्यान शैली तथा प्रश्नोत्तर शैली का पर्याप्त विकास हुआ। दक्षस्मृति ने वेदाध्ययन में पाँच बातों को सम्मिलित किया है।[133] वेद को कण्ठस्थ करना, उसके अर्थ पर विचार करना, बार-बार दोहरा कर सदा स्मरण रखना, जप करना (मन में दोहराना) तथा दूसरों को पढ़ाना।

इस मौखिक प्रणाली से व्यक्ति चलता-फिरता विश्वकोश ही बन जाता था। भारत की प्राचीन शिक्षण प्रणाली के विषय में कौटिल्य ने अत्यन्त मार्मिक रूप में एकत्र समाहार ही प्रस्तुत कर दिया है।[134]

इस शिक्षण प्रणाली का बहुत बड़ा महत्त्व यह था कि प्रत्येक छात्र पर गुरू वैयक्तिक ध्यान देता था। शिक्षण कार्य में बडे विद्यार्थी अपने से छोटे छात्रों को पढ़ाते थे। आवश्यक विषयों पर गुरू तथा शिष्यों में वाद-विवाद होते थे। इससे मानसिक शक्तियाँ प्रस्फुटित एवं पुष्ट होती थी।

**शिक्षा प्रविधियाँ -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षा की प्रविधियाँ क्या थी? गुरूजन किस पद्धति से विद्यार्थियों को पढ़ाते थे? शिष्य किस प्रकार से पढ़ते थे? अध्ययन का समय, परीक्षाएँ, शिक्षा-सत्र, कक्षा-कक्ष में छात्रों की संख्या, उपस्थिति, सहशिक्षा आदि के विषय में विस्तृत उल्लेख है।

**(I) नैतिक शिक्षा** - उपनयन संस्कार के पश्चात् आचार्य जैसे वेदारम्भ संस्कार करके विद्यार्थी की शिक्षा प्रारम्भ करते थे वैसे ही सर्वप्रथम विद्यार्थी को नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। स्वच्छ हल्के वस्त्र पहन कर हाथ जोड़ कर आचार्य के चरणों में प्रणाम करता था।

**(II) शिक्षा को प्रारंभ करना** - गुरू छात्र को सर्वप्रथम अक्षरों का ज्ञान करा कर अक्षरों और शब्दों का शुद्ध उच्चरण करना सिखाते थे। किस अक्षर को मुख के किस

भाग से उच्चारण करना है, यह सीखना अनिवार्य था। जैसे कि अ, क वर्ग और विसर्ग (: ) का उच्चारण कंठ से करना चाहिये।[135] आचार्य एक-एक करके उस पद के अक्षरों का तब तक उच्चारण कराते थे,जब तक शिष्य उसका उच्चारण बिल्कुल शुद्ध रूप से न कर ले। पाठ समाप्त होने पर शिष्य गुरू के चरणों का स्पर्श करके बाहर जाने की अनुमति माँगते थे।

**(III) मौखिक शिक्षा** - वेदों के अध्ययन में मौखिक पद्धति विशेष रूप से प्रचलित थी। छात्र सुनकर स्मरण रखते थे। अतः वेदों को श्रुति भी कहा गया था। वेदमंत्रों का अशुद्ध पाठ करने को बहुत बड़ा दोष माना जाता था। अतः वेदों के विभिन्न पाठों - संहिता पाठ, पद-पाठ, धन-पाठ, जटा-पाठ आदि को स्मरण करने और सस्वर पाठ करने की व्यवस्था हुई, जिससे कि वेदों को शुद्ध सस्वर रूप से पढ़ा जा सके।

**प्राचीन भारत में शिक्षा के विभाग एवं विषय -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में विभिन्न विषयों का सम्बन्धित विशेषज्ञों द्वारा अध्ययन करवाया जाता था। उसी के अनुरूप अलग-अलग विषयों के सम्बन्धित विभाग होते थे, इनके विशेषज्ञ छात्रों को समुचित शिक्षा देते थे। विभागों के अधिकारी विभागाध्यक्ष कहलाते थे। राधाकुमुद मुकर्जी ने इन विभागों की गणना निम्न प्रकार की है।[136]

**(I) अग्निस्थान** - अग्निस्थान एक प्रकार की यज्ञशाला थी, जहाँ सामुहिक रूप से यज्ञ, अग्नि की उपासना और प्रार्थना की जाती थी।

**(II) ब्रह्मस्थान** - यह वैदिक साहित्य के अध्ययन का स्थान था। यहाँ वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदांगों (शिक्षा-कल्प- व्याकरण-निरूक्त-छन्द-ज्योतिष) का अध्ययन होता था।

**(III) विष्णुस्थान** - यहाँ तीन प्रकार की व्यावहारिक विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। दण्डनीति (राजनीति शास्त्र), अर्थनीति और वार्ता (कृषि-गौरक्षा-वाणिज्य - उद्योग)।

**(IV) महेन्द्रस्थान** - इस विभाग में विविध प्रकार के आयुधों तथा सेनाओं के संचालन की शिक्षा दी जाती थी।

**(V) विवस्वतस्थान** - यह ज्योतिष विद्या का स्थान था। इसके अंतर्गत नक्षत्र, ज्योति, गणित आदि विषय सम्मिलित थे।

**(VI) सोमस्थान** - यहाँ वनस्पति विज्ञान का अध्ययन होता था। इसमें उद्यान, वन, औषधि आदि से संबंधित विषय पढ़ाये जाते थे।

**(VII) गरूड़स्थान** - यहाँ वाहनों तथा परिवहनों से संबंधित विषयों की शिक्षा का प्रबंध था। विमान, नौका, रथ, बैलगाड़ियाँ, गज, अश्व, उष्ट्र आदि का प्रबंध एवं परिवहन के लिये सड़कों, पुलों, बाँधों आदि का निर्माण करना होता था। गरूड़स्थान में इन सब विद्याओं के अध्यापन तथा क्रियात्मक प्रशिक्षण का प्रबंध था।

**(VIII)कार्तिकेयस्थान** - सैनिक संगठन, व्यूहरचना, शत्रुओं की अभियान योजनाओं को जानना आदि की शिक्षा दी जाती थी।

**शिक्षण संस्थाओं की प्रबन्ध व्यवस्था एवं आर्थिक संरक्षण**

वैदिक काल में शिक्षा का प्रशासन एवं वित्त (**Administration and Finance of Education**) -

(i) राज्य के नियन्त्रण से मुक्त - वैदिक काल में शिक्षा व्यवस्था का उत्तरदायित्व एवं नियन्त्रण राज्य का नहीं था। उस समय शिक्षा पूर्णतः गुरूओं के नियन्त्रण में थी।

(ii) निःशुल्क शिक्षा - वैदिक काल में शिक्षा प्रायः निःशुल्क रही। शिष्यों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था गुरू एवं शिष्य मिलकर करते थे। लेकिन शिक्षा पूर्ण होने पर शिष्य गुरूओं को अपनी सामर्थ्यानुसार गुरू दक्षिणा अवश्य देते थे।

(iii) गुरूओं की आय के स्रोत - वैदिक काल में गुरूकुलों को आज की भाँति राज्य से कोई निश्चित अनुदान प्राप्त नहीं होता था। उस समय राजा, महाराजा और समाज के धनी वर्ग के लोग इन गुरूकुलों को स्वेच्छा से भूमि, पशु, अन्न, वस्त्र, पात्र और मुद्रा दान स्वरूप भेंट करते थे। गुरूकुलों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिष्य समाज से नित्य भिक्षा माँग कर लाते थे। इन गुरूकुलों की आय का तीसरा स्रोत था - गुरूदक्षिणा।

**शिक्षा संस्थाओं की प्रबंध व्यवस्था -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षा-संस्थाओं की प्रबंध व्यवस्था के संबंध में कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलते हैं। लेकिन उत्तर वैदिक काल में ईसापूर्व ही भारतवर्ष में केन्द्रीय संस्थाओं (विश्वविद्यालयों) की स्थापना हो गई थी। प्राचीन साहित्य में अनेक विशाल विद्यालयों के विवरण मिलते हैं।

'कथा सरित्सागर' के अनुसार पाटलिपुत्र में वर्ष और उपवर्ष नामक आचार्यों के विद्यालयों के वर्णन हैं। इनमें पतंजलि और कात्यायन ने भी शिक्षा पाई थी।

पाणिनि को शलातुर ग्राम का मूल निवासी कहा जाता है। इसी के परिसर में तक्षशिला विश्वविद्यालय का विकास हुआ होगा। राजकीय नियंत्रण में इन संस्थाओं का विकास हुआ।

बौद्ध विद्यालयों की प्रबंध-व्यवस्था अति उत्तम थी। नालंदा विश्वविद्यालय का प्रबंध एक अध्यक्ष के अधीन होता था जो एक ख्यातिप्राप्त विद्वान बौद्ध भिक्षु होता था। यहाँ अध्यक्ष के निर्देशन में दो समितियाँ थी - एक शिक्षा समिति दूसरी प्रबंध समिति। शिक्षा समिति का कार्य विद्यार्थियों का प्रवेश, पाठ्यक्रम, अध्यापकों की नियुक्ति, उनके अध्यापन कार्य की परीक्षा, पुस्तकालय, पुस्तकों का लिपिबद्ध करना, पुनर्लेखन आदि कार्य इस समिति द्वारा किये जाते थे। प्रबंध समिति का कार्य विद्यालय के सब प्रकार के प्रबंधों की देखभाल करे। इनमें आय-व्यय भी सम्मिलित था। अन्य मुख्य कार्य थे - नये भवनों का निर्माण पुराने भवनों की मरम्मत, छात्रावास, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा तथा अन्य कार्य। दक्षिण भारत के मंदिरों में विद्यालयों की स्थापना हुई थी।

**शिक्षण-संस्थाओं को आर्थिक संरक्षण -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत शिक्षण संस्थाओं के संचालन के लिए निश्चित रूप से आर्थिक आवश्यकता रही होगी। जिसकी पूर्ति मात्र गुरू दक्षिणा से नहीं हो सकती। अतः जिन संसाधनों से शिक्षणालयों में प्रबंध होता था उनका उल्लेख निम्न प्रकार है-

**राजकीय सहायता -**

धर्मशास्त्रों और स्मृति ग्रंथों में राजा के लिए निर्देश है कि वह शिक्षा-संस्थाओं और विद्वानों के लिए मुक्तहस्त दान करे। शिक्षा प्रोत्साहन हेतु राजा उत्साह प्रदर्शित करते थे। विशेष अवसरों पर जैसे कि राज्याभिषेक, जन्मोत्सव आदि समारोहों में राजा विद्वान पुरूषों को आमंत्रित कर भूमि और धन दान करते थे।

'शुक्रनीतिसार' में राजा के लिए यह आदेश है कि वह वेतन प्राप्त करने वाले सेवकों को शिक्षित करा कर विशेष क्षेत्रों में नियुक्त करे।[137] राजकीय सेवाओं में विद्वान स्नातकों को वरीयता दी जाती थी। आकस्मिक रूप से धन प्राप्त होने पर राजा उसका एक अंश विद्वान ब्राह्मणों के लिए दान करता था। जातक साहित्य से पता चलता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय में अनेक छात्र राजकीय छात्रवृत्तियाँ पाकर अपने अध्ययन को पूरा करते थे।

विद्या को समुन्नत करने तथा विद्वानों को प्रोत्साहन देने के लिये राजाओं द्वारा कवियों और विद्वानों की गोष्ठियाँ बुलाई जाती थी। उनकी परीक्षा होती थी और पुरस्कार दिये जाते थे। जैसे कि वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक, साहसांक आदि राजाओं ने किया था।[138] उज्जयिनी विद्या का एक महान केन्द्र था। यहाँ दूर-दूर के कवि और विद्वान अपनी विद्या को प्रमाणित करने के लिये आते थे।

राजशेखर के अनुसार, ''उज्जयिनी में कालिदास, मेंठ, भारवि और हरिचंद्र की परीक्षा ली गई। पाटलिपुत्र भी विद्या का महान केन्द्र था। यहाँ पाणिनि, वररूचि, पतंजलि, वर्ष, उपवर्ष और पिंगल की परीक्षा ली गई।

**छात्रों द्वारा आर्थिक सहायता करना -**

प्राचीन समय में शिक्षा में प्राप्त सभी वस्तुओं को वे ईमानदारी से गुरू के लिए अर्पित कर देते थे। ये भिक्षायें शिक्षा-संस्था के लिए स्थायी आय का प्रमुख स्त्रोत रही थीं।

मनु का कथन है कि शिष्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरू-दक्षिणा दे। वह भूमि, स्वर्ण, गौ, अश्व, छत्र, उपानह्, आसन, धान्य, शाक और वस्त्र देकर गुरू को प्रसन्न करे।[139]

राजा तथा संस्थाओं द्वारा आचार्य एवं विद्वानों को पारितोषिक प्रदान किये जाते थे। जिनसे संस्थाओं को आर्थिक सहायता मिलती थी। उपनिषदों के अनुसार एक संगोष्ठी में याज्ञवल्क्य की संवाद में विजय हुई और इनको स्वर्ण से मढ़े हुये सींगों वाली 1000 गायें पारितोषिक के रूप में प्राप्त हुई। याज्ञवल्क्य ने इन गायों को अपने आश्रम में ले जाने के लिए कहा।[140]

## गुरू-शिष्य स्वरूप

### शिक्षकों की योग्यता -

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षक के लिए निम्न योग्यताओं का होना अनिवार्य था।

योग्यता - 'ऋग्वेद प्रातिशाख्य' में अध्यापक की योग्यता पर निम्न प्रकार उपदेश है-

''यदि कोई विद्वान अध्यापक बनना चाहता है, तो उसको प्रथम तो स्वीकृत पाठ्यक्रम का भली प्रकार से अध्ययन करना चाहिये और दूसरे ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर ब्रह्मचारी के सब नियमों का पालन करना चाहिये।''[141] 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' के अनुसार शिक्षक अपने विषय का प्रकांड पंडित होता है। वह वंश परंपरागत होता है और धर्म के पालन को अपना कर्त्तव्य समझता है[142]। आचार्य तथा शिक्षक के नैतिक गुणों को भी बहुत महत्व दिया गया था। उसको अल्पवक्ता, धैर्यशाली, विद्या में पारंगत, दयालु, आस्तिक, पवित्र आचरण वाला, स्वाध्यायशील और जितेंद्रिय होना चाहिये। आचार्य के लक्षण हैं - वृद्ध, लोभरहित, दंभ न करने वाला, विनम्र और मृदुस्वभाव।[143]

आचार्य, अनेक विषयों का ज्ञाता होता है, अतः विषय को छात्रों को समझाने एवं अपने विषय का प्रतिपादन करने में समर्थ होना चाहिये। सभी शिष्यों को समान रूप से शिक्षा प्रदान करें। शिष्यों की योग्यता के लिए प्रसन्न होकर उन्हें प्रोत्साहित करें एवं अनुशासन के प्रति सचेत रहें।

**गुरू की आवश्यकता एवं महत्व -**

नारद के अनुसार ''पुस्तकों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है और गुरू की सेवा में रहकर जो अध्ययन नहीं किया गया, उस ज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य उसी प्रकार शोभित नहीं होता, जिस प्रकार जार के गर्भ को धारण करके स्त्रियाँ शोभित नहीं होती।''[144]

वैदिक संस्कृति के प्रारम्भिक काल में शिक्षा-पद्धति में मौखिक शिक्षा का बहुत अधिक महत्व रहा था। इस शिक्षा में स्वरों के शुद्ध उच्चारण और छन्दों की लय पर विशेष ध्यान दिया गया। गुरूमुख से विद्याध्ययन होने पर ही यह ज्ञान प्राप्त हो सकता था। इसको सिखाने में गुरू ही समर्थ थे। इसलिए मनु ने शिक्षा पद्धति में सावित्री को माता और आचार्य को पिता कहा।[145]

'कठोपनिषद' के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के लिए अध्यापक का होना अनिवार्य है।[146] मुण्डकोपनिषद के अनुसार 'विद्यार्थी को चाहिये कि वह ज्ञान को प्राप्त करने के लिए श्रुति (वेद) को जानने वाले ब्रह्मनिष्ठ गुरू के पास समित्पाणि होकर जावे।[147] गुरू के महत्व और अनिवार्यता का अनुभव करके ही उसको समाज में उत्कृष्ट स्थान दिया गया था। वह मंदबुद्धि से लेकर प्रतिभावान बालक को सर्वोच्च शिक्षा देता है। उसके अज्ञानी आवरण हो हटाकर चौदह विद्याओं के प्रकाश को फैलाता है।[148]

शिक्षा को प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ गुरूओं की सेवा में उपस्थित होते थे। यह भी हो सकता है कि एक ही गुरू के पास रहते हुए, शिक्षा में कोई विध्न उपस्थित होने या विषय समझ नहीं आने पर विद्यार्थी किसी अन्य गुरू की सेवा में चला जावे। 'उत्तररामचरित' नाटक में वर्णन है कि वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में अध्ययन करने वाली एक तापसी, अध्ययन में विध्न उपस्थित हो जाने पर वहाँ से अगस्त्य ऋषि के गुरूकुल में विद्याध्ययन करने के लिए चली गई।[149]

**गुरू का आदर और सम्मान –**

प्राचीन भारतीय समाज में गुरू को साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश और परम् ब्रह्म माना गया था।[150] गुरू का स्थान पिता से भी ऊपर है। पिता तो मनुष्य के भौतिक शरीर

को उत्पन्न करता है, परंतु आचार्य उसको बुद्धि (ज्ञान) प्रदान करता है। अतः वह गुरू कहलाता है।[151]

राजा, गुरूजनों को उनके आश्रमों में जाकर अथवा उन्हें अपने राज्य में आमन्त्रित कर उनका विशेष आदर करते थे। गुरूजनों से राज्यकार्य हेतु परामर्श भी लिया करते थे। कोई भी गुरू किसी ऊँचे प्रशासनिक पद पर पहुँच कर भी अपने अध्यापन कार्य को नहीं छोड़ते थे। 'मुद्राराक्षस' नाटक में कौटिल्य के इसी प्रकार के चरित्र का वर्णन है। कौटिल्य, मौर्य साम्राज्य के प्रतिष्ठापक एवं चन्द्रगुप्त के महामंत्री थे। महामंत्री के पद पर रहते हुए भी उन्होंने राजकीय वैभव को स्वीकार नहीं किया।

विशाख दत्त के अनुसार राजाओं के भी अधिराज महामंत्री की यह विभूति है -

''यह उपलों को फोड़ने वाला पत्थर का टुकड़ा है, यह विद्यार्थियों द्वारा लाया गया कुशाओं का ढेर है, यह सूखती हुई समिधाओं के ढेर से झुकी हुई छत के किनारों वाला पुरानी दीवारों का घर भी दिखाई दे रहा है।''[152]

भवभूति ने राम के गुरू विश्वामित्र के गुणों का वर्णन किया[153] -

''वे मानो चतुर्थ अग्नि, पंचमवेद, गतिशील धर्म और सभी विद्याओं के निधान हैं। उनसे वार्ता करने पर तमोगुण का विनाश होकर अंतःकरण को शांति मिली है। प्रसन्नचित्त होकर वे जो कुछ कहते हैं, वह सत्य हो जाता है। वह अनंत फल को देने वाला है।''

**गुरू का स्वरूप एवं कर्त्तव्य -**

शिक्षा का सम्बन्ध संस्कारों, साधनों एवं विद्या से होता है। संस्कार, परिवार से एवं व्यक्तिगत रूप से अर्जित होते हैं। किन्तु साधन एवं विद्या के लिए विशिष्ट दिशा-निर्देश की आवश्यकता होती है, इसलिए शिष्य को गुरू की अनिवार्य अपेक्षा होती है। जीवन व्यवहार की अनेक विधाएँ दैनिक प्रयोगों एवं अनुभवों एवं इष्टसिद्धि हेतु तो गुरू की ही आवश्यकता होती है। जीवन के चार पुरूषार्थों का समन्वित एवं विशिष्ट आचरण गुरू प्रदत्त ज्ञान के कारण ही संभव हो पाता है। मनुष्य जन्म से तीन ऋणों से युक्त होता है। तीनों ऋणों से मनुष्य जब उऋण हो पाता है जब मनुष्य गुरू के समीप शिक्षा ग्रहण करे। "आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या संधिः प्रवचनं सन्धानम्।" तैत्तिरीय

उपनिषद में अधिविद्यदर्शन का कथन करते हुए स्पष्ट किया गया है कि ''इसका प्रथम वर्ण आचार्य है, अन्तिम वर्ण शिष्य है, विद्या संधि है और प्रवचन (प्रश्नोत्तर रूप से निरूपण करना) सन्धान है।'' कुमारिल भट्ट ने परवर्ती युग में इसी विचारधारा को प्रसारित किया। गुरू शब्द के समानार्थक शब्द आचार्य, अध्यापक, उपाध्याय, शिक्षक आदि। सभी समानार्थक शब्दों में शिक्षादान तो समान कार्य है। परवर्ती स्मृति युग में तो इन सभी नामों के विशिष्ट अर्थ भी मिलते हैं। वैदिक शिक्षा काल में निरूक्तकार (यास्क) ने आचार्य शब्द का निर्वचन प्रस्तुत करके उसका विशिष्ट गुण प्रतिपादित किया है जो (उचित) आचरण ग्रहण कराता है, (कठिन शब्दों के) अर्थ संगृहित कराता है अथवा बुद्धि का संग्रह कराता है, वह आचार्य है।

शिक्षकवाची सभी शब्दों में गुरू शब्द विशिष्ट एवं महत्तम है। गुरू अपने ज्ञान के आलोक से शिष्य के अज्ञान को सम्पूर्णतया नष्ट कर देता है जिससे शिष्य की बुद्धि ज्ञान ग्रहण करने योग्य निर्मल एवं तीक्ष्ण हो जाती है।

सामान्यतः मनुष्य शास्त्रों के वास्तविक अर्थ स्वतः नहीं ग्रहण कर पाता। इसी प्रकार मोक्षोपयोगी धर्म का ज्ञान भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के कारण सहजोपलब्ध नहीं होता। गुरू अपनी सूझ-बूझ, तीव्र बुद्धि के द्वारा सभी प्रकार का शास्त्रीय एवं धर्म सम्बन्धी ज्ञान ग्रहण करा देता है।

अपने उत्तम आचरण एवं व्यवहार के द्वारा गुरू शिष्य के हृदय में उदात्तवृत्तियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराके उसे सत्पथ पर प्रवर्तित कर देता है। देवता, मनुष्य एवं असुर तीनों गुरू के सान्निध्य में अध्ययन करते थे, गुरू अपने शिष्यों को आत्मनिरीक्षण का अवसर भी देता है और उसकी प्रवृत्तियों को संयमित करके धर्म सम्मत मार्ग पर प्रेरित करता है। वैदिक साहित्य में गुरू के अपने गुणों से युक्त न होने पर भर्त्सना किए जाने के भी प्रसंग हैं। सत्यकाम जाबाल ने अपने समीप रहने वाले तपस्वी एवं व्रती शिष्य (कामलायन उपकोसल) को उपदेश देकर समावर्तन नहीं किया तो जाबाल की पत्नी ने ही भर्त्सना की कि ऐसे व्रतयुक्त, तपयुक्त ब्रह्मचारी का समावर्तन न करने से कहीं आपके व्रतादिक धर्म ही आपको न त्याग दें। इसी प्रकार जो गुरू तथ्य को न जान कर भी जानने का ढोंग करता है, शिष्य से अनृतकथन करता है, वह समूल नष्ट हो जाता है।

**शिष्य का स्वरूप एवं कर्त्तव्य -**

गुरू शब्द के समान ही शिष्य शब्द के अनेक समानार्थक शब्द प्राप्त होते हैं।

1. **शिष्य** - शासितुं योग्यः इति (एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्-पाणिनि 3/1/109)

   यह शब्द बालक अथवा व्यक्ति के जीवन में अनुशासन के महत्त्व को प्रकट करता है। अध्ययन के समय में गुरू से पुनः पुनः अनुशासित शिष्य में क्रमशः संयम एवं अनुशासन की भावना प्रबल हो जाती थी; जिसके प्रभाव से उसका भविष्यत् जीवन सफल होता था।

2. **विद्यार्थी** - विद्याम् अर्थयते (विद्या+अर्थ+णिनि+सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये - पाणिनी 3/2/78)

   इस शब्द से विद्या के प्रति मनुष्य की उत्कृष्ट जिज्ञासा प्रकट होती है। ज्ञानसम्पन्न एवं बहुश्रुत गुरू के सम्मुख विद्याध्ययन करते हुए विद्यार्थी के जीवन में एकाग्रता, विनम्रता एवं शुश्रुषा आदि गुणों का विकास होता है।

3. **अन्तेवासी** - अन्ते गुरूसमीपे वसति तच्छीलः (अन्ते+वस्+णिनि पुनः शयवासवसिण्वकालात् - पाणिनि 6/3/18 से अलुक)

   उपनिषदों में प्रायः इसी शब्द का व्यवहार किया गया है।[154] गुरू के समीप रहकर विद्याध्ययन करने के कारण अन्तेवासी को अधिक समय का सुयोग भी प्राप्त होता था और वह गुरू की परिचर्या में भी संलग्न रहता था। इस स्थिति से उसके व्यक्तित्व में सेवा, शुश्रुषा आदि गुण विकसित हो जाते थे।

4. **छात्र** - छत्रं गुरोर्दोषाणामावरणं, तच्छीलमस्य (छत्रादिभ्योणः - पाणिनि 4/4/62)

   पर्याप्त दीर्घ समय तक गुरू से अध्ययन करते रहने पर छात्र को अपने गुरू के अनेक अथवा किंचित दोष भी उद्घाटित हो जाते थे। किन्तु उन दोषों को आवृत्त करके गुरू के गुणों एवं यश का प्रसार करने के कारण ही वे छात्र कहलाते थे।

इसके अतिरिक्त शिष्य की योग्यताओं एवं अर्हताओं का विविध उल्लेख वैदिक साहित्य में हुआ है। अध्यापन किए जाने पर भी जो मन, वाणी कर्म से गुरू का आदर नहीं करता, शास्त्र भी (समय पर) उनकी रक्षा नहीं करता। पवित्र, अप्रमत्त (जागरूक), मेधावी,

ब्रह्मचर्यसम्पन्न तथा गुरू से कदापि द्रोह न करने वाले शिष्य के प्रति मुझे (विद्या का) दान करना। तभी सुरक्षित रहकर मैं सुख का आश्रयस्थान बनूँगी।[155] उपरोक्त पंक्तियाँ निरूक्तकार यास्क ने विद्या-ब्राह्मण संवाद के रूप में किसी भी शिष्य के गुणावगुणों का सुन्दर प्रस्तुतीकरण किया है। तद्नुसार विद्या ने विद्वान के समीप आकर कहा - 'असूयायुक्त, दोषदर्शी, कुटिल, असंयमी एवं गुरूद्रोही व्यक्ति (शिष्य) के प्रति मुझे मत देना'। शिष्य के लिए उपयुर्क्त गुणों का विवेचन करने के पश्चात् दो गुण जो प्रत्येक शिष्य में अतिआवश्यक थे - वाक्यसंयम तथा गुरूशुश्रुषा ऐसे ही गुण हैं।

छात्र निहित गुणों में वाक्यसंयम एक ऐसी योग्यता है, जिसमें सत्यवचन, प्रियवादिता, विनम्रता आदि गुण समाहित होते हैं। अतः शिष्य में वाक्यसंयम होना ही चाहिए। प्राचीनकाल में गुरू-शिष्य सम्बन्ध को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है।

**(1) स्वामी-सेवक सम्बन्ध -** शिष्य के अनुरोध पर गुरू शिक्षा का दान देता था, इस दृष्टि से दोनों में स्वामी-सेवक सम्बन्ध भी हो जाता था। शिष्य, गुरू की अधीनता स्वीकार करके अपनी निष्कपट सेवाचर्या से गुरू को प्रसन्न एवं संतुष्ट रखने का प्रयास करता था।[156] इसी सेवा भाव के कारण शिष्य में सीधापन (छलकपट से मुक्त), विनम्रता, सत्यवादिता, अद्रोह आदि गुण स्थिर होते थे। गुरू स्वयं भी यही इच्छा करता था कि सब ओर से मेरे पास शिष्य आएँ, ये ब्रह्मचारी मुझसे द्रोह न करें।[157] द्रोह न करने के साथ ही सेवक के समान शिष्य को भी स्वामी गुरू से सदैव सत्य ही बोलना चाहिए। सत्यकाम जाबाल की सरल सत्यवादिता से प्रसन्न होकर ही गुरू ने उसको अपने संरक्षण में लिया था।[158] स्वामी-सेवक भाव के कारण ही गुरू शिष्य का पालन करता, उसे अनुशासित करता तथा दोष होने पर दण्डपूर्वक सुधार करता था।

**(2) पूज्य-पूजक सम्बन्ध -** वैदिक शिक्षा में शिष्य की गुरू के प्रति अपार श्रद्धा भाव के कारण पूज्य-पूजक सम्बन्ध स्पष्ट होता है। गुरू में पूज्यभाव के साथ श्रद्धा रखने वाले शिष्य को ही विद्या-दान का आदेश दिया गया है।[159] परवर्ती युग में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं साक्षात् परब्रह्म घोषित करने के मूल में वैदिक भावना ही थी। विनम्र भाव से उपस्थित शिष्य के अन्तःकरण में आध्यात्मिक ज्ञान की उत्पत्ति करने के कारण गुरू ब्रह्मा है; संसार को अज्ञान व्याधि से मुक्ति दिलाने एवं ज्ञान विज्ञान के पोषण के कारण गुरू विष्णु है; शिष्य के समस्त बाह्य एवं आन्तरिक कलुष के नाश एवं संहरण के कारण गुरू

शिव है तथा परा विद्या (परमार्थ का ज्ञान कराने वाली विद्या) प्राप्त करने के कारण गुरू स्वयं परब्रह्म है। गुरू को ईश्वर सदृश मानने के कारण ही शिक्षा की समाप्ति पर शिष्यगण गुरू की स्तुति एवं अर्चना किया करते थे।[160] जिस प्रकार पूजा से प्रसन्न ईश्वर, भक्त में अपनी शक्ति एवं ऐश्वर्य संक्रान्त स्थानान्तरित कर देते हैं, उसी प्रकार श्रद्धालु एवं विनयी शिष्य के अन्तःकरण में गुरू की समस्त विद्या उद्भासित हो जाती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में 'आचार्य देवो भव' का आदेश भी यह ध्वनित करता है।

**(3) मैत्री एवं सौहार्द का सम्बन्ध -** वैदिक शिक्षा में गुरू-शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध मैत्री और सौहार्द के कारण समानता का भाव भी दृष्टिगोचर होता है। कठोपनिषद् का शांति पाठ गुरू-शिष्य के पारस्परिक समभाव का सुन्दर दिग्दर्शन कराता है।[161]

**(4) पिता-पुत्र सम्बन्ध -** शिक्षा के प्रारम्भ से ही गुरू और शिष्य में जनक-जन्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। आपस्तम्ब ने श्रुति के वचन को सम्पूर्णतया स्पष्ट कर दिया "माता-पिता तो केवल शरीर ही उत्पन्न करते हैं। गुरू विद्या से शिष्य उत्पन्न करता है और वही विद्या जन्म ही श्रेष्ठ है।" वैदिक साहित्य में गुरू में पिता की भावना कर लेने के कारण ही पिता को भी गुरू नाम से व्यवहृत किया जाने लगा। परवर्ती युग में मनु ने पुनः-पुनः गुरू को पिता उद्घोषित किया है।[162]

**गुरू शिष्य पारस्परिक संबंध -**

अध्ययन के प्रारंभ में गुरू और शिष्य दोनों साथ मिलकर ईश्वर से प्रार्थना करते हैं-

**उपनिषद के कथनानुसार -**

''हे भगवन! आप हम दोनों गुरू और शिष्य की साथ-साथ रक्षा करें। साथ-साथ हमारा पालन करें। हम दोनों साथ-साथ शक्ति को प्राप्त करें। हम दोनों की अधीन विद्या तेजोमयी हो और हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।''[163]

प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति में गुरू और शिष्य का संबंध पिता-पुत्र का था। आपस्तंब का कथन है कि आचार्य शिष्य को अपने पुत्र के समान स्नेह करे।[164]

वशिष्ठ ने लिखा है कि श्रोत्रिय कभी संतानहीन नहीं होता। शिष्य ही उसकी संतान है।[165]

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार, ''आचार्य शिष्य के अज्ञान के आवरण को दूर करके ज्ञान के प्रकाश से उसको आलोकित करता है। गुरू उस आवरण को हटाकर चौदह विधायें प्राप्त कराता है।[166]

पंचतंत्र के अनुसार, ''गुरू भौतिक विद्याओं के साथ शिष्य का आध्यात्मिक गुरू भी है। शिष्य की कमियों और निर्बलताओं का उत्तरदायित्व आचार्य का ही समझना चाहिये। यदि शिष्य में कोई दोष है, तो उस दोष के लिए उसका आचार्य ही उत्तरदायी है।[167]

शिष्य की दिनचर्या, उसके सोने-जागने, भोजन एवं व्यवहार पर निरीक्षण एवं निगरानी रखना गुरू का कर्त्तव्य है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में गुरू एवं शिष्य का संबंध अति पवित्र, गौरवपूर्ण एवं मधुर माना गया था। आचार्य अपने शिष्यों के प्रति स्नेह रखते थे और उनको सब प्रकार से योग्य बनाते थे। शिष्य भी आचार्य के आदेशों का पालन करना और उनकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

विद्या प्राप्ति के लिए गुरू की महत्ता निश्चय ही स्वीकार की गई थी। शास्त्रों का उपदेश है कि केवल पुस्तकों के अध्ययन से ही विद्या प्राप्त नहीं होती। गुरू के समीप रहकर अध्ययन न करने वाला विद्वान, विद्वानों के मध्य शोभित नहीं होता।[168]

गुरू की निंदा करने को महान अपराध बताया गया है। यदि कोई अन्य व्यक्ति गुरू की निंदा करता है, तो शिष्य उसको सहन नहीं कर सकता।

विशाखदत्त के नाटक मुद्राराक्षस के अनुसार ''जो शिष्य अपने गुरू की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं या उनको अपमानित करते हैं उनका हृदय लज्जा से फट जाना चाहिये।''[169]

- **गुरू के प्रति शिष्य का व्यवहार -**

शिष्य द्वारा, माता-पिता के समान ही गुरू का सम्मान करना चाहिये। उनके प्रति कभी पाप का व्यवहार न करे। शिष्य को गुरू का प्रतिदिन सम्मान करना चाहिये। शिष्य को अपने मन को पवित्र और केन्द्रित करके अपने अध्ययन में प्रवृत्त रहे।

- शिष्य मन, कर्म, शरीर से और धन से गुरू की सेवा करे। गुरू के आदेशों का पालन एवं इच्छाओं को पूरा करे। साथ ही गुरू के परिवार के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित करें।
- शिष्य को गुरू द्वारा प्रदत्त शिक्षा और उपदेशों के महत्व का अनुभव करे। उसको यह विचार करना चाहिये कि गुरू ने ही मेरा समुचित विकास किया है।
- शिष्य का कर्त्तव्य है कि विनम्र भाव से गुरू द्वारा निर्दिष्ट गुरू-दक्षिणा अर्पित करे।[170]

- **गुरू का शिष्य के प्रति व्यवहार -**
  - गुरू के शिष्य के प्रति व्यवहार का प्राचीन साहित्य में उल्लेख है -
  - गुरू को सभी शिष्यों के प्रति समान व्यवहार करना चाहिये। शिष्यों को शिक्षा देने में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करे।[171]
  - अपना सम्पूर्ण ज्ञान शिष्य को प्रदान करे, कुछ छिपाये नहीं।[172]
  - गुरू-शिष्य का संबंध केवल अध्ययनकाल तक ही नहीं है, अपितु जीवनपर्यंत का संबंध है।

**कुलपति -**

भारतीय प्राचीन शिक्षा-पद्धति में कुलपति का प्रायः उल्लेख है। अनेक आश्रम, जो समूह रूप में थे, शिक्षा-केन्द्रों के रूप में प्रसिद्ध एवं विकसित हुये। यहाँ विविध विषयों की शिक्षा देने वाले आचार्य एकत्रित होते थे। जैसे कि नैमिषारण्य में विविध विषयों की शिक्षा देने वाले विद्यालयरूपी आश्रमों का विकास हुआ। हिमालय की तलहटी में मालिनी नदी के तट पर सम्पूर्ण वन में आश्रम बन गये थे। इन आश्रमों का एक अध्यक्ष होता था, जिसको कुलपति कहा जाने लगा था। कुलपति सभी प्रकार के साधनों से संपन्न होते थे। ये अपने आश्रमों में रहने वाले छात्रों के अध्ययन, भोजन, वस्त्र, निवास आदि का निःशुल्क प्रबंध करते थे। प्राचीन शास्त्रों के अनुसार कुलपति वह है, जो दस हजार छात्रों के भोजन आदि के प्रबंध की व्यवस्था करके अध्ययन का प्रबंध करने में समर्थ हो।[173] प्राचीन ग्रंथों में अनेक कुलपतियों का वर्णन मिलता है। इनमें वसिष्ठ,

भारद्वाज, विश्वामित्र, वाल्मीकि, कण्व, शौनक आदि बहुत प्रसिद्ध है, उनके आश्रम विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित हुए थे।

कुलपतियों के पास विद्या और अध्यात्म की प्रचुर संपत्ति होने के साथ-साथ इनके पास प्रचुर भौतिक धन-संपत्ति और लौकिक वैभव भी होता था। इसी कारण वे दस हजार छात्रों के भरण-पोषण और अध्यापन का प्रबंध करने में समर्थ होते थे। वे हजारों अतिथियों का आतिथ्य संपन्न करने में तथा राजोचित सत्कार करने में भी सक्षम थे। 'रामायण' में वर्णन है कि भरत के नेतृत्व में अयोध्या के नागरिकों तथा सैन्य के आने पर कुलपति भारद्वाज ने सब यथायोग्य सत्कार किया था। शकुन्तला को पतिगृह के लिए विदा करते समय कुलपति कण्ठ ने उसको विविध आभूषणों, वस्त्रों, प्रसाधनों और अन्य उपहारों के साथ ससुराल भेजा था।

''वृहदारण्यक उपनिषद'' में आचार्य कुलपति आरूणि ने अपनी सम्पत्ति का वर्णन किया है -

''मेरे पास स्वर्ण, गायें, घोड़े, दासियां, कम्बल और वस्त्र पर्याप्त मात्रा में है।''[174]

कुलपतियों के पास यह संपूर्ण वैभव राजकीय अनुदानों से और शिष्यों द्वारा प्रदत्त गुरू-दक्षिणा से एकत्रित होता था। वरतन्तु के शिष्य कौत्स ने अपने गुरू के लिए अयोध्या के राजा रघु से चौदह करोड़ स्वर्ण-मुद्रायें प्राप्त कर उनको अपने गुरू के लिए गुरू-दक्षिणा के रूप में अर्पित कर दिया था।[175]

**शिक्षकों का वर्गीकरण -**

प्राचीनकाल में कुलपति, गुरू, आचार्य और उपाध्याय एवं अतिरिक्त अतिगुरू पद मिलता है।

कुलपति का पद वर्तमान के वाइस-चान्सलर के तुल्य रहा होगा। जो विश्वविद्यालय की समस्त व्यवस्था के लिए जिम्मेदार होते थे। इनके अधीन दोनों कार्य थे - अध्यापन की व्यवस्था करना और प्रबंध-तंत्र की देखभाल करना।

**(I) गुरू** - गुरू पद का संबंध विद्याध्ययन के अतिरिक्त अनेक कार्य-विधियों से भी था। उत्तम गुणों से गौरवान्वित किसी भी व्यक्ति को गुरू कहा जा सकता था। प्राचीन काल से ही शिक्षक को सबसे आदरणीय और गौरवास्पद माना गया था, अतः उसे गुरू

कहा गया। कुल के गुरू को कुलगुरू कहा गया था। इक्ष्वाकुवंशियों के कुलगुरू वसिष्ठ थे। संभवतः यह वसिष्ठ शब्द पद नाम भी रहा होगा, क्योंकि इक्ष्वाकुओं की अनेक पीढ़ियों में वसिष्ठ ही कुलगुरू रहे थे।

याज्ञवल्क्य के अनुसार, ''धार्मिक क्रियाओं को सम्पादित करके वेदों का ज्ञान कराने वाला गुरू होता है।''

मनु के अनुसार, ''स्वल्प ज्ञान देने वाला भी गुरू है।''[176]

**(II) आचार्य** - आचार्य का कार्य केवल अध्यापन ही नहीं था, अपितु वह छात्रों को श्रेष्ठ आचार (आचरण) को, बुद्धि को और अर्थों को भी ग्रहण कराता था।

वेदों का अध्यापन कराना आचार्य की विशेषता थी। प्रायः सभी शास्त्रकारों ने आचार्य के कर्त्तव्यों में वेदों का अध्यापन प्रतिपादित किया है। गौतम[177] , विष्णु[178] और वसिष्ठ[179] के वचनों से सिद्ध है कि वेद शिक्षा के मुख्य विषय थे तथा सभी आचार्य वेदों का अध्ययन कराते थे। इसी विशेषता के कारण आचार्य पद को श्रेष्ठ समझा गया है।[180]

मनु ने आचार्य की बहुत प्रशंसा की है। वह वेदों में पारंगत होता है।[181] वह ब्रह्मा की मूर्ति है।[182]

**(III) उपाध्याय** - जो वेद के किसी एक भाग का अध्ययन कराता है, वह उपाध्याय है।[183]

मनु के अनुसार ''जो शिक्षक वेद के किसी एक अंग का या वेदांगों का अध्ययन कराता है और इसके लिए शुल्क लेता है, वह उपाध्याय है।''[184]

राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार ''उपाध्याय किसी विशेष वेदांग में या वेद के किसी विशेष भाग में विशेषज्ञ होते थे और पूरक शिक्षा प्रदान करते थे।''

**(IV) अतिगुरू** - प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में अतिगुरू पद का भी उल्लेख मिलता है। अतिगुरू सामान्य गुरूओं की तुलना में अधिक श्रेष्ठ समझे जाते थे। विष्णु स्मृति के अनुसार अतिगुरू तीन हैं - माता, पिता और आचार्य।[185]

**शिक्षकों का पारिश्रमिक -**

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में प्रायः शिक्षकों का कोई विशेष वेतन या पारिश्रमिक नहीं था। शिक्षक प्रायः पुरोहित भी होते थे। त्यौहारों, धार्मिक कर्मकांडों और यज्ञों के अवसरों पर प्राप्त उपहार तथा गुरू दक्षिणा इनकी आय के प्रमुख साधन थे। आय

के इन साधनों में अनिवार्यता नहीं थी बल्कि स्वेच्छा से शिक्षक को दिया जाता था। परन्तु दक्षिण भारत के कुछ विवरणों से विदित होता है कि उत्तरवर्त्ती काल में शिक्षकों की योग्यता और कार्य के अनुसार उनको पारिश्रमिक प्राप्त होता था। उनको प्रति वर्ष 160-200 मन चावल प्राप्त होने के संकेत हैं।[186]

प्राचीन धर्मशास्त्रों में निर्देश है कि शिष्य द्वारा गुरू के लिये गुरू-दक्षिणा दी जावे। ''गौतम धर्मसूत्र'' में विधान है कि शिष्य जब गुरूकुल से जाने लगे तो गुरू-दक्षिणा में गुरू के लिये धन प्रदान करे।[187] परन्तु आपत्तिकाल में गुरू को अनुमति थी कि वह यज्ञ करावे, अध्यापन करे और चारों वर्णों से यथासंभव धन प्राप्त करे।[188]

छात्र का यह धार्मिक कर्त्तव्य था कि विविध विद्याओं को प्राप्त करके अपनी क्षमता के अनुसार गुरू-दक्षिणा दे।[189] परन्तु आपत्तिकाल में गुरू अपने उग्र एवं शूद्र शिष्य से भी गुरू दक्षिणा ले सकता है।[190]

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षा शुल्क लेना या धन की माँग करना पाप माना जाता था क्योंकि शिक्षा का कार्य परम पवित्र और पुण्य देने वाला समझा जाता था। कालिदास लिखते हैं - ''जिसने शास्त्रों का अध्ययन केवल जीविका के लिए किया है, उसको ज्ञानरूपी पुण्य को बेचने वाला वणिक् कहते हैं।''[191]

विष्णुस्मृति में वेतन लेकर अध्यापन करने की निंदा की गई है तथा इसकी गणना उपपातकों में है।[192]

महाभारत में अध्यापन के निमित्त से धन लेने की निंदा की है। इसके द्वारा प्रदत्त अन्न का जो उपभोग करता है, उसको शूद्र समझना चाहिये।[193]

**प्राचीन गुरूकुल और उनके आचार्य -**

प्राचीन समय के अनेक गुरूकुलों एवं आचार्यों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में उपलब्ध है। अयोध्या, कुरूक्षेत्र, वाराणसी, नैमिषारण्य आदि स्थान शिक्षा-केन्द्रों के रूप में प्रसिद्ध थे। जाबालि, परशुराम, भारद्वाज, वसिष्ठ, कण्व, वामदेव, विश्वामित्र, व्यास, शौनक आदि महान् पुरूष ऋषि और कुलपति के रूप में प्रसिद्ध हुये थे।

**अयोध्या -**

प्राचीन समय में अयोध्या शिक्षा और संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा है। वाल्मीकि ने अयोध्या में अध्यात्म की परंपरा का विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ तैत्तिरीय, काठक, मानव आदि शाखाओं के वैदिक विद्यालय थे। कोई भी ब्राह्मण अशिक्षित एवं अज्ञानी नहीं था। यहाँ ब्रह्मचारियों के संघ थे जिनको वाल्मीकि ने ''मेखलीनां महासंघाः'' लिखा है। यहाँ निरंतर शिक्षा संबंधी परिषदों, गोष्ठियों और शास्त्रार्थों का आयोजन होता रहता था।

अयोध्या में महिलाओं की संस्थायें (वधुसंघ) थीं। ये संघ गीत-नृत्य-वाद्य, नाटक का आयोजन करती रहती थीं। नागरिकों के भी संघ थे, वे नगर में उत्सवों व समारोह का आयोजन करते रहते थे।

**(I) अगस्त्य** - प्राचीन भारतीय साहित्य में अगस्त्य ऋषि का नाम संस्कृति, धर्म और शिक्षा के प्रचारक के रूप में प्रसिद्ध है। इन्होंने विंध्य पर्वत को पार करके दक्षिण भारत में आर्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया।[194] ऋषि अगस्त्य के आश्रम हिमालय से लेकर दक्षिणी समुद्र तट तक विस्तृत थे।

'उत्तररामचरित' के अनुसार अगस्त्य ऋषि का आश्रम और विद्या केन्द्र गोदावरी नदी के तट पर अवस्थित था। यह ब्रह्मविद्या (वेदान्त) के अध्ययन का महान केन्द्र रहा था। इस विद्या का अध्ययन करने के लिए छात्र दूर-दूर से अगस्त्य ऋषि के आश्रम में आते थे।[195] वनवास की अवधि में राम जब अगस्त्य मुनि के आश्रम में आये तो उन्होंने उनको दिव्य आयुध प्रदान किये थे।

राम ने अपनी कुटीर गोदावरी नदी के तट पर अगस्त्य के कहने पर ही बनाई थी। इस आश्रम की पहचान नासिक से पंद्रह मील दूर अकोला ग्राम में की गई है।[196]

**(II) कण्व** - महर्षि कण्व वैदिक परंपरा के ऋषि थे। भारतीय साहित्य में महर्षि कण्व का आश्रम तीर्थ, तपोभूमि धर्मारण्य और विद्या-केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध है।[197] कण्व के आश्रम की स्थिति मालिनी नदी के तट पर थी।[198] वर्तमान समय में इस स्थान को कोट द्वार - हरिद्वार मार्ग पर कोट द्वार से छः मील पर पश्चिम में स्थित है। इसके निकट वेतस (नडों) का वन है। यह वन प्राचीन काल में नडपित वन कहलाता था। यहाँ विश्वामित्र

ऋषि ने तप किया था और यहीं मेनका - विश्वामित्र के संयोग से शकुंतला का जन्म हुआ था।

कण्व के गुरूकुल में हजारों छात्र विद्याध्ययन करते थे। अनेक आचार्य का निवास गुरूकुल ही था। राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार कण्व के गुरूकुल में निम्न विषयों का अध्ययन होता था -

चार वेद, वेदांग, कर्मकाण्ड, यज्ञ, कल्पसूत्र, वैदिक मंत्रों के विभिन्न पाठ, शिक्षा, ध्वनि विज्ञान, शब्द विज्ञान, छंद, व्याकरण, निरूक्त, आत्म विज्ञान, ब्रह्मोपासना, मोक्ष, धर्म, लोकायत, न्याय, भौतिक विज्ञान, कलायें, गणित, द्रव्यगुण, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान।

**(III) जाबालि** - जाबालि संभवतः सत्यकाम जाबाल के वंशज रहे होंगे। अनेक संस्कृत काव्यकारों ने महर्षि जाबालि के आश्रम, तपोवन और विद्या केन्द्र का विस्तृत वर्णन किया है। बाण ने 'कादंबरी' कथा में विंध्यारण्य में महर्षि जाबालि के आश्रम का मनोहारी विस्तृत वर्णन किया है। बिज्जिका ने 'कौमुदी महोत्सव' नाटक में जाबालि के गुरूकुल का उल्लेख किया है। यहाँ राजकुमार भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रविष्ट होते थे।[199]

**(IV) वसिष्ठ** - इक्ष्वाकुओं के कुलगुरू वसिष्ठ की गणना वैदिक ऋषियों तथा सप्तर्षियों में की जाती है। वे कुलपति भी थे। हिमालय की तलहटियों में इन्होंने अपना आश्रम बनाया था। जबकि ये अयोध्या के राजवंश के कुलगुरू थे। कालिदास ने 'रघुवंश' के प्रथम सर्ग में वसिष्ठ के आश्रम और तपोवन का विस्तृत वर्णन किया है। इनके शिक्षणालय में अनेक शिष्य विद्या ग्रहण करते थे।

**(V) परशुराम** - धनुर्वेद के आचार्य के रूप में परशुराम का नाम प्राचीन साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। वे महर्षि जमदग्नि एवं रेणुका के पुत्र थे। क्षत्रियों का संहार करके परशुराम ने सारी पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर दी और स्वयं महेंद्र पर्वत पर रहने लगे। परशुराम ने भीष्म और कर्ण को धनुर्वेद की शिक्षा दी थी। द्रोण ने भी परशुराम से धनुर्वेद का अध्ययन किया था। परशुराम ने महेंद्र पर्वत पर अपना आश्रम और विद्या का केन्द्र बनाया था। राजशेखर के अनुसार यह स्थान कोंकण में है।[200]

**(VI) वाल्मीकि** - 'रामायण' के रचयिता वाल्मीकि को संस्कृत भाषा का आदि कवि का गौरव प्राप्त है। वाल्मीकि आश्रम गंगा और तमसा नदी के तट पर स्थित था। 'रामायण' में यह स्पष्ट लिखा है कि अयोध्या से चलकर गंगा को पार करके दूसरे पार तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि का आश्रम है।[201] लव-कुश ने महर्षि वाल्मीकि से शिक्षा प्राप्त की थी।[202] वाल्मीकि का आश्रम अपने समय में विद्या का महान केन्द्र रहा था। भवभूति के अनुसार इस शिक्षणालय में छात्रायें भी अध्ययन करती थी। इस तथ्य का उल्लेख अन्य भी अनेक स्थानों पर है।

**(VII) भारद्वाज** - गंगा-यमुना के संगम जो प्रयाग नाम से प्रसिद्ध था, वहाँ पर भारद्वाज ऋषि का आश्रम था। यह एक विशाल आश्रम था, जिसमें राजकीय हाथी और घोड़ों का भी निवास था तथा यह भोज्य पदार्थों से भी सुसज्जित था। 'रामायण' (6/126, 2/90, 2) के अनुसार भारद्वाज ऋषि धन-धान्य से संपन्न कुलपति महर्षि थे। उनके गुरूकुल में अग्निवेश नामक आचार्य धनुर्वेद के महान शिक्षक थे। भारद्वाज से प्रारंभिक शिक्षा को प्राप्त करके द्रोण और द्रुपद ने अग्निवेश से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। अग्निवेश ने अपने शिष्यों को आग्नेयास्त्र की शिक्षा भी दी थी।

**(VIII)विश्वामित्र** - इनकी गणना सप्तर्षियों में की गई है। क्षत्रियत्व से विरक्त होकर विश्वामित्र ने कठोर तप करके ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त किया था।

उनका आश्रम कौशिकी नदी के तट पर था। वे महान आचार्य और कुलपति थे। इस आश्रम में स्वाध्याय करने वाले छात्रों के अध्ययन की ध्वनि दूर-दूर तक सुनाई देती थी।[203] कौशिकी नदी वर्तमान समय की कोसी नदी है, जो पूर्वी नेपाल से भारत में प्रवेश करके बंगाल प्रांत में गंगा में मिल जाती है।

विश्वामित्र के आश्रम की स्थिति गंगा-सरयू संगम पर कही जाती है। यह स्थान वर्तमान समय में बक्सर कहलाता है, जो पटना से काफी दूर पूर्व में है। बक्सर के समीप एक सिद्धासन है, जिसको विश्वामित्र का आश्रम कहते हैं। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण इस क्षेत्र में आये थे। इन्होंने उनके यज्ञ की रक्षा करते हुये अनेक राक्षसों का संहार किया था। राम-लक्ष्मण ने इसी स्थान पर विश्वामित्र से धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की थी।

**(IX) व्यास** - वेदों के संपादक, 'महाभारत' के रचयिता तथा अठारह पुराणों के संग्रहकर्ता के रूप में महर्षि व्यास का नाम बहुत प्रसिद्ध है। महान आचार्य और लेखक के रूप में महर्षि व्यास ने अविनश्वर कीर्ति प्राप्त की थी। वे महर्षि पाराशर और मत्स्यगंधा सत्यवती के पुत्र थे। सामान्यतः व्यास आश्रम की अवस्थिति हस्तिनापुर के निकट गंगा के पार कल्पित की जाती है। व्यास घाट, गढ़वाल में प्रसिद्ध स्थान है जो गंगा और नयार नदियों का संगम है। बद्रीनाथ से दो किलोमीटर उत्तर में माणा नामक स्थान जहाँ व्यास-गुहा और गणेश-गुहा है। प्रसिद्ध महर्षि व्यास ने 'महाभारत का प्रणयन किया था, गणेश देवता उनके लिपिक बने थे एवं कथा को लिखा था। उनके योग्य पुत्र शुक जो योग्य शिष्य भी थे, उन्होंने जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर 'महाभारत' की कथा का वाचन किया था।

**(X) शौनक** - नैमिषारण्य स्थान प्राचीन शिक्षा साहित्य में एक विश्वविद्यालय के रूप में विकसित और प्रसिद्ध हुआ था। महर्षि शौनक एक महान कुलपति के रूप में प्रसिद्ध हुये थे। इसमें दूर-दूर के विद्वानों ने भाग लिया था।

शौनक के एक 12 वर्षीय सत्र यज्ञ में सौति ने 'महाभारत' का पुनः गायन किया था, उसके प्रवचलन में 'महाभारत' में एक लाख श्लोक थे। नैमिषारण्य में ही सूत्र साहित्य की रचना हुई थी।[204] शतपथ ब्राह्मण और सूत्र साहित्य में शौनक ऋषि का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

**(XI) संदीपनि** - प्राचीन गुरूकुलों के कुलपतियों में सन्दीपनि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। उनका गुरूकुल उज्जयिनी में था। कृष्ण, सुदामा ने आचार्य संदीपनि के गुरूकुल में ही शिक्षा प्राप्त की थी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का संपूर्ण विकास करना था। उसके व्यक्तित्व का निर्माण कर उसकी धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष तक की यात्रा को सुगम बनाना था। गुरू-शिष्य सम्बन्धों का अनौखा चित्रण अन्य किसी सभ्यता में नहीं मिलता है। विषयों की व्यापकता परिलक्षित होती है और विद्यार्थी की क्षमतानुसार विषयों का चयन किया जाता था।

# Chapter-1

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**


1. **विष्णु पुराण** - 6.5.6.1, आगमोत्थं विवेकाच्य द्विधा ज्ञानं तदुच्यते।;
   वही, 1.19.41, सा विद्या या मुक्तये। विद्यान्या शिल्पनैपुण्यम्।
2. **ऋग्वेद -** 1.164.66, **श.ब्रा.** - 2.2.2.6, **अथर्ववेद -** 11.5.26, **तै.स.** - 6 3 10 5, **श.ब्रा. -** 11.5.7.1-5
3. **सुभाषितरत्नभाण्डागार।।**
   ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्ततत्वार्थविलोकदक्षम्।
   तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्तिमत्सर्वजगत्त्रयेऽपि।।
4. **सुभाषितरत्नभाण्डागार।।**
   अनेकसंशयच्छेदि परीक्षार्थस्य दर्शनम्।
   सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।।
5. **पञ्चतंत्र, मित्रभेद-**217।।
   सा विद्या या विमुक्तये।।
6. **पञ्चतंत्र, मित्रभेद-**217।।
   बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।
7. **डॉ. कृष्ण कुमार, प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति**, पृ. 8-18
8. **महाभारत** 12.32.78 ।।
9. **अथर्ववेद** 11.5.24।।
   ब्रह्मचारी ब्रह्म भाजद निभति।
   तस्मिन् देवा अधि विश्वे समेताः।।
10. **अथर्ववेद** 11.5.17।।
    ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
    आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।।
11. **गोपथ ब्रह्मण** 1.2.1.7 ।।
12. **अमृत मंथन** 15.4 ।।
    सर्वे धर्माः क्षयं यान्ति यदि सत्यं न विद्यते।
13. **खादिर गृह्यसूत्र** 1.5।।
    अयं त इध्म आत्मा जातवेदः।।
    तेन वर्धस्व चेद्धि वर्धय-चाऽस्मान्।।
14. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** 1.20.6 ।।

देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी स मा मृत।

15. **शतपथब्राह्मण** 1.5.5 ॥

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋण वाञ्जायते ॥

यज्ञेन देवेभ्यो ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः प्रजया पितृभ्यः॥

16. **तैत्तिरीयोपनिषद्** - शिक्षावल्ली - अनुवाक ॥

17. **मनुस्मृति** 2.20॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

18. डॉ. किरण कुमार थपल्याल, संकटा प्रसाद शुक्ल, **'सिन्धु सभ्यता'**, 1976, पृष्ठ 29-30, 175-179

19. डॉ. राधेशरण, **प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,** पृष्ठ

20. पी.एल. गौतम, डॉ. कमलेश शर्मा, **प्राचीन भारत**, पृ. 854, (पांचवा संस्करण 2005)

21. ऋग्वेद 7, 103

22. छान्दोग्योपनिषद, 1/1/10 तथा 7/1/2, विष्णु पुराण 1/19/41

23. राधाकुमुद मुकर्जी, हिन्दू सभ्यता, अनु. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 115

24. Jogiraj Basu, INDIA OF THE AGE OF THE BRAHMANAS, Page No. 45

25. द्रष्टव्य-शतः 11/6/3/11; 13/5/2/11; 11/5/3/1 तथा 11/9/2/5

26. M. Hiriyanna, OUTLINES OF INDIAN PHILOSOPHY, P. 49

27. भगवत शरण उपाध्याय, **भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण**, पृ. 86-87 तक

28. **ऐतरेय आरण्यक**, 3/2/6 तथा मुण्डकोपनिषद, 1/2/7

29. **शतपथ ब्राह्मण** 11/6/2

30. **छान्दोग्योपनिषद** 1/8

31. **कौषीतकि ब्राह्मण**, 7/1

32. वाल्मीकि कृत **सम्पूर्ण रामायण**, पं. रामकृष्ण उपाध्याय पृष्ठ 20

33. वाल्मिकी कृत **सम्पूर्ण रामायण**, पं. रामकृष्ण उपाध्याय पृष्ण 47

34. **महाभारत**, आदि पर्व, अध्याय 1, श्लोक 62-70

35. डॉ. श्याम बिहारी पाठक, **प्राचीन भारत में शिक्षा**, पृ. 65

36. डॉ. शशिकांत सिंह, **बौद्धकालीन संस्कृति**, पृ. 19

37. डॉ. अनिल कुमार सिंह, **बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति**, पृ. 21

38. डॉ. राधा कृष्णन, **इंडियन फिलॉसफी**, पृ. 17

39. डॉ. शशिकांत सिंह, **बौद्ध साहित्य में समाज**, पृ. 18

40. **कौटिलीय अर्थशास्त्र**, पृष्ठ 21, संस्करण 2015

41. **कौटिलीय अर्थशास्त्र**, पृष्ठ 22
42. **कौटिलीय अर्थशास्त्र**, पूर्वोक्त पृष्ठ 21 से 25 तक
43. एम.एल.झा - **पाषाण काल से गुप्त काल तक का भारत**
44. **आर्यभट्टीयम** 4/499, ग्रंथ 4
45. मेक्डानल - **इण्डिया पास्ट**, पृ. 123 व आगे
46. **अल्तेकर**, पूर्वोक्त
47. **एपिग्राफिया इंडिका**, वोल्यूम 4, पृ. 208
48. **मनुस्मृति**- 2/39
49. **तैतिरीय ब्राह्मण** - 3/19/15 ऐतरेय ब्राह्मण 22/9
    **शतपथ ब्राह्मण** - 11/5/4/1..... 17
50. **छान्दोग्य उपनिषद** - 2/23/1; 4/3/5; 4/4/4-5; 4/10/1; 5/11/7; 6/1/2
51. **शतपथ ब्राह्मण** 11/5/6/9
52. **छान्दोग्य उपनिषद** - 4/10/1; 6/1/2
    **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** - 1/1/2/12.....16; 1/11/3/1
    **मनुस्मृति** - 3/1 पर हरदन्त
53. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** - 3/8/1; आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/2/7/15; मनुस्मृति 3/4
54. **आश्वलयान गृह्यसूत्र** - 1/24/1
55. **याज्ञवल्क्य स्मृति** 1.148-151॥
56. **याज्ञवल्क्य स्मृति** 1.151 पर अपरार्क टीका में उद्धृत॥
57. **वेदान्तसूत्र** 3.1.13 पर शाबर भाष्य॥
58. **वेदान्तसूत्र** 1.14 पर शंकर भाष्य॥
59. **तन्त्र वार्तिक** पृ. 1978
60. **मनुस्मृति** 10.126-127॥
61. **मनुस्मृति** 10.126-127॥
62. **मनुस्मृति** 2.67॥
63. **मनुस्मृति** 2.66॥
64. **मनुस्मृति** 2.66॥
65. **मनुस्मृति** 2.145॥
66. **श्रीमद्भागवत पुराण** 3.24.4॥
67. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** 1.19.1-6॥
68. **मनुस्मृति** 2.36॥

69. **कृष्ण कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ** 135
70. **अथर्ववेद** 11.5.5॥
71. **बोधायन गृह्यसूत्र** 1.9.16॥
72. **बोधायन गृह्यसूत्र** 2.5.8.9॥
73. **कृष्ण कुमार पूर्वोक्त**, पृ. 136
74. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** 1.1.3.9-10॥
75. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** ॥
76. **वेदमित्रः एंशियंट इंडियन एजुकेशन** पृ. 178॥
77. **वसिष्ठ धर्मसूत्र** 11.64-67॥
78. **गौतम धर्मसूत्र** 1.24-28॥
79. **वसिष्ठ धर्मसूत्र** 11.47॥
80. **बोधायन धर्मसूत्र** 2.5.13॥
81. **गौतम धर्मसूत्र** 1.29॥
82. **अथर्ववेद** 11.5.3॥
83. **हिरण्यकेशिन् गृह्यसूत्र** 1.5.11॥
84. सदाशिव अल्तेकर, **प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति**, पृ. 210
85. **भारद्वाज गृह्यसूत्र** 1.22॥
86. **पारस्कर गृह्यसूत्र** 1.8॥
87. **मनुस्मृति** 2.50॥
88. **बोधायन ग्रह्यसूत्र** 3.1.3॥
89. **मनुस्मृति** 3.4॥
90. **आश्वलायन गृह्यसूत्र**॥
91. मनुस्मृति 4.31॥ **गोभिल गृह्यसूत्र** 3.5.23॥
    **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** 1.5 तथा 1.22-23
92. **मनुस्मृति** 4.35॥
93. **भारद्वाज गृह्यसूत्र** 11.1-8॥
94. **मनुस्मृति** 2.36 ॥
    गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
    गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥
95. **उत्तररामचरित** - शुद्ध विष्कम्भक अंक 2 ॥
    तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण विधिनां कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्या-पितौ।

96. **मनुस्मृति** 2.36 ॥
97. **छान्दोग्य उपनिषद** 3.11.3 ॥
98. **छान्दोग्य उपनिषद** 6.1.2 ॥
99. **तैत्तिरीय ब्राह्मण** 3.10.11 ॥
100. **गोपथ ब्राह्मण** 2.5 ॥
101. **पारस्कर गृह्यसूत्र** 2.5 ॥
102. **सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास** ॥
103. **अष्टांग हृदय सूत्रस्थान अध्याय** 2 ॥
104. **बोधायन धर्मसूत्र** 1.2.48॥
विद्या सह मर्तव्यं न चैनामूषरे वपेत् ॥
105. **उत्तर रामचरित** 2.4॥
106. **उत्तर रामचरित** 2.4॥
107. **उत्तर रामचरित** 2.4॥
108. **निरूक्त** 2.4॥
109. **मनुस्मृति** 2.159॥
110. **महाभाष्य** 8.1.8॥
111. **मनुस्मृति** 8.299-300॥
112. **शतपथ ब्राह्मण** - 11/5/7/4 ... 8; **गोपथ ब्राह्मण** 2/10
113. **छान्दोग्य उपनिषद** - 7/1/2; 7/1/4; 7/7/1
**वृहदारण्यक उपनिषद** - 1/1/5; 2/4/10
114. **गौतम धर्मसूत्र** - 11/19; **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** - 2/3/8/10-11
115. **याज्ञवलक्य स्मृति** - 1/3
**मत्स्य पुराण** - 53/5-6; **वायु पुराण** - 1/61/78
116. **वायु पुराण** - 1/61/79; **गरूड़ पुराण** - 223/21
117. **मनुस्मृति** - 2/168
118. पी.वी. काणे, **धर्मशास्त्र का इतिहास**, पृ. 244
119. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** 2.7.8॥
120. **सुतसोम जातक संख्या** 537॥
121. **सुख बिहारी जातक संख्या** 10॥
122. **गौतम धर्मसूत्र** 3.20॥
123. **नैषधीयचरित** 1.4

124. **कौटिलीय अर्थशास्त्र** पृष्ठ संख्या 22
125. **जातक संख्या** 252
126. **मिलिन्दपन्ह वो.** 7 पृ. 18 एस.बी.ई. द्वारा संपादित।।
127. **बोधायन धर्मसूत्र** 3.9.6।।
128. **वसिष्ठ धर्मूसूत्र** 3.23।।
129. **वृहदारण्यकोपनिषद्** 6.2.1.2।।
130. **काव्यमीमांसा दशम अध्याय**।।
131. **वाल्मीकि रामायण** 7 1/26 .... 30
132. **वेदान्तसूत्र** - 1/3/30

    **याज्ञवलक्य स्मृति** - 3/200 पर मिताक्षरा
133. **दक्ष स्मृति** - 2/34; **मनुस्मृति** - 12/102
134. **कौटिल्य अर्थशास्त्र** - 1/5/3 .... 8
135. **पाणिनीय शिक्षा**।।
136. राधाकुमुद मुकर्जी: **एंशियंट इंडियन एजुकेशन**, पृ. 333
137. **शुक्रनीतिसार** 1.368-369।।
138. **काव्यमीमांसा अध्याय** 10।।
139. **राजशेखर-काव्य मीमांसा अध्याय** 10।।
140. **बृहदारण्यक उपनिषद** 3.1.10।।
141. **ऋग्वेदप्रातिशाख्य** - अध्याय 15 ।।
142. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** 1.1.1.12-17 ।।
143. **मत्स्यपुराण** 145.29 ।।

    वृद्धाश्चाऽलोलुपाश्चैव आत्मवन्तोह्यदाम्भिकाः।

    सम्यग्विनीताः मृदवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते।।
144. **नारद (पाराशरमाधवीयम्)** भाग प्-पृ. 154 ।।

    पुस्तकप्रत्याधीतं नाधीतं गुरूसन्निधौ।

    भ्राजते न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियः।।
145. **मनुस्मृति** 2.170 ।।

    तत्राऽस्य माता सावित्री पितात्वाचार्य उच्यते।।
146. **कठोपनिषद** 2.8।।

    नरेणावरेण प्रोक्त एषः सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
147. **मुण्कोपनिषद्** 1.2.12 ।।

तद्वज्ञानार्थ स गुरूमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिकम्।।

148. **याज्ञवल्क्य स्मृति** 1.212 पर अपरार्क की टीका।।

यथा घटप्रतिच्छन्ना रत्नराजा महाप्रभाः।
अकिंचित्करतां प्राप्तास्तद्वद् विद्याश्चतुर्दश।।

149. **उत्तररामचरित** 2.3 ।।

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्कीथविदो वसन्ति।
तेभ्शेऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपाश्र्वादिह पर्यटामि।।

150. गुरूब्र्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

151. **रामायण अयोध्याकाण्ड** 113 3 ।।

पिता होनं जनयति पुरूषं पुरूषर्षभ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्यस्तस्मात् स गुरूरूच्यते।। -

152. **मुद्राराक्षस** 3.15 ।।

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां
वटुभिरूपहृतानां बर्हिषा स्तोम एषः।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि-
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुऽयम।।

153. **महावीर चरित** 1.10-12

154. **शतपथ ब्राह्मण** - 5/1/5/17, **छान्दोग्योपनिषद** - 4/10/1; **तैत्तिरीयोपनिषद**, 1/11

155. **शतपथ ब्राह्मण** - 11/5/4/1 ... 17, **तैत्तरीय उपनिषद्** - 1/4/2;
**आश्वलायन गृह्यसूत्र** - 1/22/2; **पारस्कर गृह्यसूत्र** - 2/3

156. **शतपथ ब्राह्मण** - 11/5/4/1

157. **तैत्तिरीयोपनिषद** - 1/4/2 ... **आमायन्तु ब्रह्मचारिण** ... **विमायन्तु ब्रह्मचारिण**

158. **छान्दोग्योपनिषद** - 4/4/5 - तं होवाच ... समिधंसोम्याऽहरोप त्वा नेष्ये। न सत्या दगा इति।

159. **मुण्डकोपरिषद** - 3/2/10

160. **प्रश्नोपनिषद** - 6/8

161. **कठोपनिषद्** - 6/19 - सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्य कखाव है।
तेजस्विनावधीतमस्तुमा विद्वषस्व है।।

162. **मनुस्मृति** - 2/144 - य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावु भी। स माता स पिता ज्ञेयस्तं न दुहोत्कदाचन।

163. **कठोपनिषद् का शान्तिपाठ**।।

ओम् ।। नाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

164. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** 1.2.8.24।।
पुत्रमिवैनमभिकांक्षन्।।

165. **विसिक धर्मसूत्र** 2.10।।
तस्माच्छ्रोत्रियमनूचानमप्रजोऽसीति न वदन्तीति।।

166. **याज्ञवल्क्य स्मृति** 1.212 पर अपरार्क की टीका।
यथाघटप्रतिच्छन्ना रत्नराजा महाप्रभाः।
अकिंचित्करतां प्राप्तास्तद्वद्विद्याश्चतुर्दश।।

167. **पंचतंत्र** 1.21 ।।
अतीत्व बन्धूनवलंघ्यशिष्या - नाचार्यमागच्छति शिष्यदोषः।।

168. **पाराशर स्मृति** 13.8।।
पुस्तकप्रत्याधीतं नाधीतं गुरू सन्निधौ।
भ्राजते न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियः।।

169. **मुद्राराक्षस** 3.33 ।।
ये सत्यमेव हि गुरूनति पातयन्ति। तेषां कथं नु हृदयं न भिनति लज्जा।।

170. राधाकुमुद मुकर्जी, **एंशियंट इण्डियन एजुकेशन**, पृ. 330-331

171. **उत्तररामचरित** 2.4।।
वितरति गुरू: प्राज्ञेविद्यां यथैव तथा जडे।
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।।

172. **प्रश्नोपनिषद्** 6.1 ।।
नाहमिमं वेद। यद्यहमिममवेदिलं कथं ते नाऽवद्यमिति।
समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति।।

173. मुनीना दश साहस्रं याऽन्नेदाना दिपोषणात।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपति: स्मृत।।
आप्टे वी.एस: दी प्रेक्टिकल संस्कृत - इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 365

174. **वृहदारण्यक उपनिषद्** 6.2.7।।

175. **याज्ञवल्क्य स्मृति** 1.34।।
स गुरूर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।।

176. **मनुस्मृति** 2.149
अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः।

तमपहि गुरूं विद्यात् श्रुतोपक्रियया तथा ।।

177. **गौतम धर्मसूत्र** 1.11-12।।

तद् यस्मात् स आचार्यः।। वेदानुवचनाच्च।।

178. **विष्णु धर्मसूत्र** 29.1 ।।

यस्तूपनीय व्रतादेशं कृत्वा वेदमध्यापयेत्तमाचार्य विद्यात्।।

179. **वसिष्ठ धर्मसूत्र** 3.24 ।।

उपनीय तु यः कृव्सनं वेदमध्यापयेत् स आचार्यः।।

180. **गौतम धर्मसूत्र** 2.57 ।।

आचार्यः श्रेष्ठा गुरूणाम्।

181. **मनुस्मृति** 2.148 ।।

आचार्यस्तु वेदपारगः।।

182. **मनुस्मृति** 2.226 ।।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः ।।

183. **याज्ञवल्क्य स्मृति** 1.35 ।।

एक देशमुपाध्यायः।।

184. **मनुस्मृति** 2.141 ।।

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि यः पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।।

185. **विष्णु स्मृति** 31.1-2।।

त्रयः पुरूषस्यातिगुरवो भवन्ति। माता पिता आचार्यश्च।।

186. **वेद मित्र: एजुकेशन इन एंशियंट इण्डिया**, पृ. 47

187. **गौतम धर्मसूत्र** 2.55।

विद्यान्ते गुरूरर्थेन निमन्त्र्यः।।

188. **गौतम धर्मसूत्र** 7.4।।

याजनाध्यापनप्रतिग्रहास्सर्वेषु।

189. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** 1.2.7.19।।

कृत्वा विद्यां यावतीं शक्नुयाद् वेद दक्षिणामहारेद् धर्मतो यथाशक्ति।।

190. **आपस्तम्ब धर्मसूत्र** 1.2.7.20।।

विषमगते त्वाचार्य उग्रतः शूद्रतो हरेत्।।

191. **मालविकाग्निमित्र** 1.17

यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानपष्यं वणिजं वदन्ति।।

192. **विष्णु स्मृति** 17.18-19, 26॥

भृतकाध्यापनम्। भृताच्चाध्ययनादादानम्। देवर्षिपितृऋणानामनया क्रिया॥

193. **महाभारत अनुशासन पर्व**॥

विद्योपजीविनोऽन्नेच यो भुङ्क्ते साधुसम्मतः।

तदायत्तं तदा शौद्रं तत् साधु परिवर्जयेत्।

194. **रामायण अरण्य काण्ड** 2.85-86॥

महाभारत वनपर्व अध्याय 104॥

195. **उत्तररामचरित** 2.3॥

196. **कृष्ण कुमार; संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश**, पृ. 154

197. (अ) **महाभारत आदि पर्व** 215.103 ॥

(ब) **स्कन्द पुराण केदारखण्ड** 57.10-11, **अग्निपुराण** 115.10॥

198. **अभिज्ञान शाकुन्तलम् प्रथम अंक**॥

199. **कौमुदीमहोत्सव** पृ. 3॥

200. **बालरामायण** 2.3॥

201. **रामायण अरण्यकाण्ड** 45.17-18॥

202. **उत्तररामचरित द्वितीय अंक** ॥

203. **अनर्घराघव** 2.45॥

204. राधा कुमुद मुकर्जी: **एंशियंट इंडियन एजुकेशन**, पृ. 171

# अध्याय–द्वितीय
# सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की भूमिका

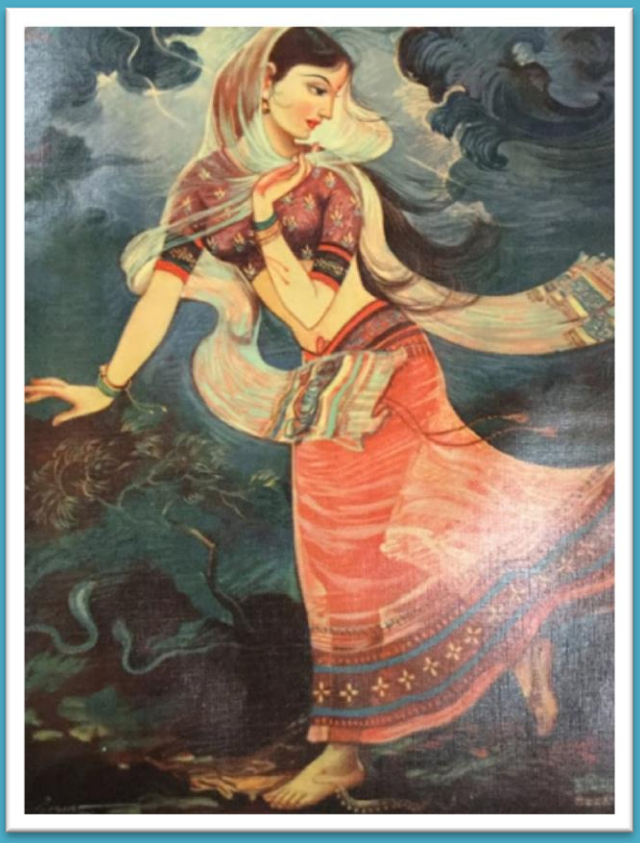

# द्वितीय अध्याय

# सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की भूमिका

नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है, उसके प्रति अपनाये गए दृष्टिकोण से किसी भी सभ्यता की उत्कृष्टता या निम्नता का बोध होता है। उसके द्वारा सांस्कृतिक जीवन में सहभागिता से नारी की बौद्धिक व शैक्षणिक क्षमता परिलक्षित होती है।

**प्रागैतिहासिक काल की नारी -**

प्रागैतिहासिक युग में समाज में नारी एवं पुरूष की समान साझेदारी थी। मनुष्य अपनी आदिम व्यवस्था में था। संस्कृति का पूर्ण रूप से विकास नहीं हुआ था। पुरूष और स्त्री शिकार करके पहले कच्चा फिर अग्नि का आविष्कार होने के बाद पका कर खाते थे। महिलाएँ शिकार भी करती थी और उसे पकाने का कार्य भी करती थी। नारी की प्रजनन क्षमता के कारण उसे सृजनात्मक शक्ति का द्योतक माना जाता था। सांकलिया के प्रागैतिहासिक अन्वेषणों के आधार पर मिर्जापुर क्षेत्र में बेलन घाटी से प्राप्त नारी मृण्मूर्ति मातृदेवी सी लगती है।[1]

भारत की प्राचीनतम संस्कृति सिन्धुघाटी की संस्कृति को राखालदास बनर्जी, जान मार्शल, दयाराम साहनी आदि ने रेखांकित किया। यहाँ उत्खनन के अवशेषों में मिट्टी की अनेक नारी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है।[2] इन मूर्तियों में वक्ष और उदर का भाग असंतुलित रूप से उभरा हुआ दिखाया गया है। इनका उन्नत वक्ष एवं उदर नारी की सृजनात्मक शक्ति का द्योतक होगा। नारी को सृष्टि को धारण करने वाली ही नहीं अपितु पालन करने वाली भी माना गया। मातृदेवी की प्रसन्नता के लिए प्रतिमा पूजन का विधान प्रचलित किया गया होगा। इसी कारण यह प्रत्येक घर के अवशेषों में प्राप्त हुई। एक कांस्य प्रतिमा नृत्यांगना की भी प्राप्ति हुई है जिससे सभ्यता के उद्गम होने वाले समय में भी नारी की सहज मनोरंजन नृत्य एवं संगीत होने का आभास मिलता है।

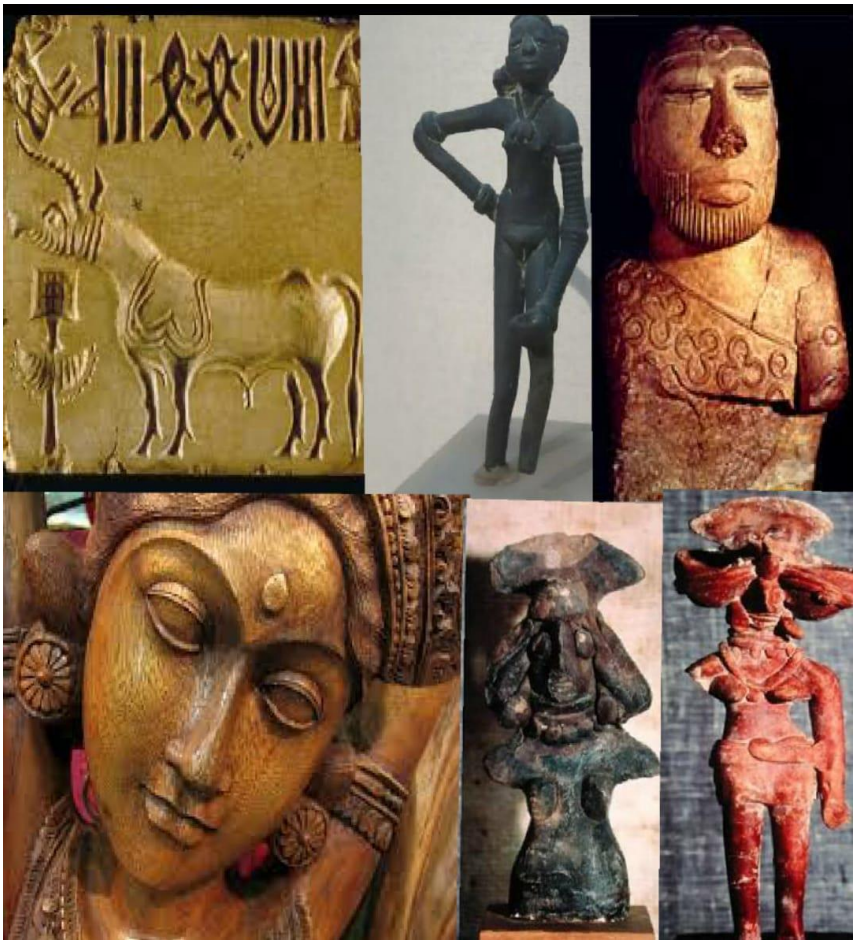

चित्र 2.1: प्रागैतिहासिक काल की नारी

मुहरों पर एक प्रधान देवी उत्कीर्ण है और उनके सामने एक व्यक्ति बलि देने को उद्यत है। सात अन्य देवियाँ भी उपस्थित हैं जो उपशक्तियाँ रही होंगी। दूसरी मुद्रा पर स्त्री के पैर ऊपर हैं और स्त्री के गर्भ से वनस्पति का जन्म प्रदर्शित किया गया है। मातृ देवी की परिकल्पना, परम शक्ति के रूप में की गई है, जिसमें मानव, पशु एवं वनस्पतियों को जन्म देने वाली प्रदर्शित किया गया है। एक अन्य मुद्रा में वृक्ष की दो शाखाओं के बीच खड़ी एक नारी को वनस्पति देवी बताया है। यह सभी मुद्रा, नारी की सृजनात्मक भूमिका प्रदर्शित करते हैं।[3]

सैंधव सभ्यता से प्राप्त नारी मूर्तियों से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ पर नारियों की प्रधानता एवं मातृ-सत्तात्मक समाज था। साथ ही यह तथ्य भी उजागर होता है कि इस काल में नारियों को पुरूषों के समान स्तर प्राप्त था।

**वैदिक काल की नारी -**

वैदिक काल में नारियों की स्थिति सम्मानीय एवं श्रेष्ठ थी। वैदिक कालीन आर्य नारियों का अत्यधिक सम्मान करते थे। उस काल में नारियों की शिक्षा के समुचित प्रबन्ध थे। ऋग्वैदिक काल में नारियों के विदुषी होने के अनेक प्रमाण हैं। उन्होंने अनेक ऋचाओं की रचना की। वह ब्रह्मवादिनी और मंत्र दृष्टा भी थी। विश्वावरा, आपाला, शंची, अदिति आदि ने मंत्रों की रचना कर ऋषि पद प्राप्त किया। शिक्षा के क्षेत्र में नारी उपेक्षित न थी।[4] वह शिक्षिका का पद योग्यता द्वारा प्राप्त करती थी।

वैदिक आर्यों की दृष्टि में दाम्पत्य सम्बन्ध को अत्यन्त कोमल सम्बन्ध माना जाता था। माता-पिता की सहमति से होने वाला विवाह आदर्श माना जाता था। स्त्री-पुरूष दोनों ही परस्पर पति-पत्नी के चुनाव के लिए स्वतंत्र थे।[5] ऋग्वेदिक काल में स्त्रियाँ अपना पति चुनने में पूर्णतः स्वतंत्र थी।[6] बाद में यह अधिकार उनसे छिनता गया। याज्ञवल्क्य असामान्य स्थिति में ही स्वयंवर को मान्यता देते हैं।

उत्तर वैदिक काल में भारत में विवाह के विभिन्न रूप प्रचलित थे। कन्या का विक्रय, अपहरण करके भी कन्या से विवाह किया जाता था।[7] बहु विवाह की प्रथा भी समाज में प्रचलित थी। अनेक मंत्रों से बहुपत्नी प्रथा के संकेत मिलते हैं।[8] विधवा विवाह एवं नियोग का प्रचलन था।[9] पर्दा प्रथा की परम्परा समाज में नहीं थी। पत्नी को अपने घर में गृह स्वामिनी का दर्जा मिला हुआ था। सभी धार्मिक कृत्यों में पत्नी भाग लेती थी। पत्नी के बिना यज्ञ की क्रिया अधुरी मानी जाती थी। स्त्री का सार्वजनिक जीवन सक्रिय था, वह सभाओं आदि में भी भाग लेती थी।

**महाकाव्य काल में नारी -**

महाकाव्य काल तथा स्मृति काल में नारियों की स्थिति में परिवर्तन आ गया। उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति बाल-विवाह, अशिक्षा, विधवा विवाह निषेध आदि नियमों के कारण सम्मानजनक नहीं रही। रामायण काल में स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। यज्ञ[10] व संध्योपासना[11] भी करती थी। सैनिक शिक्षा भी यदा कदा दी जाती थी।[12] क्योंकि कैकयी को अपने पति के साथ युद्ध में जाते हुए बताया गया, किन्तु उसे

बराबर की भागीदारी प्राप्त नहीं थी। समाज में पत्नी से कठोर अनुशासन, त्याग की अपेक्षा की जाती थी। पतिव्रता एवं साध्वी नारियों की प्रशंसा इस साहित्य में उपलब्ध है।

महाभारत में उच्चवंश की नारी पात्र को बताया गया है। तत्कालीन समाज में नारी परिवार की गृहलक्ष्मी थी। उसको सम्पूर्ण अधिकार थे। नारी, पुरूष दोनों के कर्म क्षेत्र भिन्न थे। वाल्मीकि रामायण में विश्वामित्र राम से ताड़का की हत्या करवाते हैं और उसको न्यायोचित बतलाते हैं। सीता की अग्नि परीक्षा लेकर राम उन्हें साथ लेकर अयोध्या लौटते हैं किन्तु बाद में एक धोबी के कहने पर गर्भावस्था में सती साध्वी और पति परायण नारी सीता को राजमहल से निकाल दिया जाता है। महाभारत में युधिष्ठिर ने द्रोपदी को जुए में दाव पर लगाया और उसे हार गए थे, द्रोपदी को भरी सभा में वस्त्रहीन करने का प्रयास किया। इससे स्पष्ट है कि दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और स्त्री को सम्पत्ति समझा जाने लगा था। निजी सम्पत्ति समझ कर ही उसका शोषण किया जाता था। समाज में नारी की स्थिति अधीनस्थ की हो गई थी। समाज में विवाह के अनेक रूप प्रचलित थे। स्वयंवर की प्रथा, बहुपत्नी प्रथा विद्यमान थी। पाण्डु के माद्री तथा कुन्ती रानियाँ बहुपति प्रथा के उदाहरण में द्रोपदी के बाद अन्य कोई उदाहरण नहीं मिलता।

इस युग में नियोग की प्रथा थी। जब ऋषि परशुराम ने क्षत्रियों का नाश कर दिया तो क्षत्राणियों ने नियोग द्वारा ब्राह्मणों से सम्बन्ध कर अपना वंश चलाया। भीष्म ने स्त्रियों के प्रति उच्च आदर भाव को प्रदर्शित करते हुए कहा था कि सदैव पूज्य मानकर उससे स्नेहपूर्ण व्यवहार करना आवश्यक है।[13] इसी पर्व के एक स्थान पर युद्धिष्ठिर ने भीष्मपितामह से स्त्रियों की प्रकृति के बारे में जानने की इच्छा की तब भीष्म ने बताया कि स्वभाव से स्त्री में लालच को दबाने की क्षमता नहीं होती और इसलिए उसे सदैव किसी पुरूष का संरक्षण मिलना आवश्यक होता है।[14] स्त्रियों के दो प्रकार बताये गये हैं - साध्वी और असाध्वी। साध्वी स्त्रियाँ पृथ्वी की माता और इसकी संरक्षिका है जबकि असाध्वी स्त्रियाँ अपने दुष्ट व्यवहार से कहीं भी पहचानी जा सकती हैं।[15]

स्त्री की स्थिति हर युग के साथ बदलती रही है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय विचारकों में नारी की स्थिति के संदर्भ में मतवैभिन्न पाया जाता है।

**मौर्यकाल से पूर्व मध्यकाल तक नारी -**

मौर्ययुगीन भारत में नारी की स्थिति इस तरह विवादास्पद थी। स्त्रियों को अनेक बंधनों में बांध दिया गया था। घर की चार दीवारी तक सीमित थी। बहु विवाह प्रथा विद्यमान थी। व्यभिचारी, प्रवासी, राजद्रोही, नपुंसक पतियों का स्त्री परित्याग कर सकती थी।[16]

पुरूष स्त्रियों का वध कर दिया करते थे इसके लिए समाज में राजकर्मचारी एवं अन्य के लिए दण्ड व्यवस्था का प्रावधान था, नारी हत्या को ब्रह्म हत्या के समान अपराध घोषित किया गया था।[17]

इसी काल (मौर्ययुगीन काल) में स्त्रियों की स्थिति साहित्य मात्र से प्रमाणित नहीं होती अपितु अभिलेख, गुफाओं, स्तूप और चैत्य आदि पर उत्कीर्ण चित्र आदि में तत्कालीन समाज की झांकी मिलती है।

**स्मृतियों एवं धर्मसूत्र काल में नारी -**

स्मृतियों एवं धर्मसूत्र काल में साहित्य द्वारा नारी की स्थिति में विशेष परिवर्तन आया। पुत्री की अपेक्षा पुत्र जन्म श्रेष्ठ ठहराया जाने लगा।

स्त्री की स्वतंत्रता पर पूर्ण अंकुश लगा दिया गया। बाल विवाह एवं शिक्षा के अभाव ने आत्मज्ञान के अवसर छीन लिये। आजीवन पिता, पति, पुत्र के सानिध्य में रहने को मजबूर थी। स्त्री कभी स्वयं स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है।[18] प्रो. कमलेश भारद्वाज के अनुसार स्मृतियों में शिक्षा विषयक संस्कार उपनयन को विवाह के साथ सम्बद्ध कर दिया गया था (प्राचीन भारत में समाज एवं राज्य, पृ. 83)। उनका वास्तविक जीवन विवाह से ही आरंभ माना जाता था। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकारों से पूर्णतया वंचित कर दिया गया। सामाजिक विकृति और धार्मिक संकीर्णता नारी पर हावी थी। दूसरी से पांचवी शताब्दी के बीच बनने वाली व्यास स्मृति ने नारी को नौकरानी का दर्जा दिया।[19]

समाज में अराजकता, अस्थिरता एवं विदेशी आक्रमणों के कारण महिलाओं की स्थिति पर दुष्प्रभाव पड़ा। इन्हें आरम्भ से ही बंधनों में रखा गया, किन्तु इनके संस्कारों, रीति-रिवाजों ने जीवन के संघर्षपूर्ण उत्तरदायित्व को धारण किया। सामाजिक सामंजस्य

में भी उनकी भूमिका प्रशंसनीय रही। इन्हें नगरवधु, विषकन्या एवं वैश्या का जीवन भी व्यतीत करना पड़ता था। पुरूष समाज का वर्चस्व पितृ सत्तात्मक परिवार के कारण था।

हिन्दू समाज में नारी का स्थान गृहस्थ जीवन में जो विवाह संस्कार से प्रारम्भ होता है अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। ऐसी स्थिति में नारी प्राचीनकाल से हिन्दू सामाजिक-संरचना का महत्वूपर्ण संवेदनशील केन्द्रबिन्दु रही है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर जब भी कोई बाह्य आक्रमण से स्त्रियों की स्थिति प्रभावित हुई, प्राचीन व्यवस्थाकारों का ध्यान स्त्रियों के अधिकार क्षेत्र और उनसे सम्बन्धित नियमाचारों पर आकृष्ट हुआ।

पूर्व मध्यकाल में नारी की दशा पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा सर्वाधिक संक्रमणशील थी। यद्यपि गृहस्थाश्रम में एक पत्नी के रूप में उसकी प्रतिष्ठा थी। धर्म, अर्थ और काम की उपलब्धता का आधार पत्नी मानी जाती थी।[20] पत्नी से यह अपेक्षा रखी जाती थी कि वह व्यवहारकुशल, विनम्र, मृदुभाषिणी, सेवारत, शील और सन्तान-सम्पन्न आदि हो। पत्नी के रूप में उसका स्थान पति से निम्न था।[21] दक्ष व व्यास के अनुसार उपरोक्त अहर्ताओं से सम्पन्न पत्नी केवल 'महान' पुण्य कर्मों से ही उपलब्ध होती है।[22] स्त्रियों को घरेलू कार्यों में प्रायः व्यस्त रखा जाता था। घर से बाहर समाज में उसकी विशेष स्थिति नहीं थी। परिवार में उन स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था, जो पत्नी की अहर्ताओं से युक्त थी। गुण सम्पन्न संस्कार-युक्त पत्नी को भाई के समान स्थान प्राप्त था।[23] पत्नी के रूप में उसका कार्य आय-व्यय और घर के देख-रेख, स्वच्छता, भोजन बनाना, विवाहाग्नि या गृहाग्नि की सुरक्षा आदि था।[24]

**राजनीतिक क्षेत्र में नारी की भूमिका -**

प्राचीन युग में साधारण नारी समाज में अपने परिवार के प्रति उत्तरदायित्व से दबी हुई थी। उसे स्वतंत्रता एवं शैक्षणिक अधिकारों से वंचित किया हुआ था। उसका क्षेत्र गृहस्थी तक सीमित हो गया था। राजनीतिक क्षेत्र से नारी का कोई सरोकार नहीं था। इस युग में प्रतीक स्वरूप कुछ ही उदाहरण ऐसी स्त्रियों के मिलते हैं, जिनकी प्रशासन से सम्बद्धता रही थी। सामान्य वर्ग की स्त्रियों का इसमें प्रवेश करने का कोई अवसर नहीं था, केवल राज परिवारों की स्त्रियाँ ही इसमें भाग लेती थी। राजघरानों में बाल्यावस्था से ही राजकुमारों के समान राजकुमारियों को राजनीति की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। राजनीति की यह शिक्षा, राजकुमारियों को शासन का कार्यभार सम्भालने में समर्थ बनाती थी।

सातवीं सदी में उत्तर भारत के दो स्त्री राज्यों का उल्लेख चीनी यात्री हुएनसाँग ने किया है। इनमें से एक पूर्व की ओर तथा दूसरा पश्चिम की ओर था जिन्हें 'पूर्वी स्त्री राज्य'[25] तथा 'पश्चिमी स्त्रियों का देश' कहा जाता था। इन राज्यों में प्रत्येक की अपनी सरकार थी।[26]

प्राचीन काल में स्त्रियों की राजनीति एवं शासन को दृढ़ता से चलाने में विशेष रूचि हुआ करती थी। गुप्तकाल में नारियाँ शासन कार्य में सहयोग देती थी। चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्कों पर महादेवी कुमार देवी के चित्र का अंकन इस बात का प्रतीक है। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त ने अपने पति वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के निधन पर अपने पुत्र प्रवरसेन द्वितीय की अल्पवयस्कता के कारण संरक्षिका के रूप में राज्य किया था।[27] रानियाँ राज्य संचालन के साथ युद्ध में वीरता का प्रदर्शन भी करती थी। 8वीं शती में दाहिर की बहिन रानी बाई ने अरब जनरल मोहम्मद बिन कासिम से युद्ध किया था और पति की युद्ध क्षेत्र में वीरगति पा जाने के पश्चात् पराजित होने की आशंका से अग्नि में प्रवेश कर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया था। सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ भी संभवतः सैनिक होती थी, युद्ध क्षेत्र में जाती थी। इसकी पुष्टि खजुराहो की मूर्ति कला से होती है। विश्वनाथ मन्दिर के बाएँ बाह्य भाग में उत्कीर्ण एक दृश्य में एक स्त्री शस्त्रों से सुसज्जित दिखाई दे रही है, संभवतः वह पुरूष के साथ युद्ध क्षेत्र में जा रही है। एक अन्य स्त्री बांएँ हाथ में बड़ी सी तलवार लिए खड़ी है और दाहिने हाथ से तलवार का ऊपर भाग पकड़ा हुआ है, यह दृश्य दूल्हादेवी मन्दिर के पिछले बाह्य भाग में उत्कीर्ण है। इन दृश्यों से स्पष्ट हो जाता है कि राजा स्त्रियों की सैनिक टुकड़ियाँ भी रखते थे जो निश्चित रूप से आपत्तिकाल में सहयोग देती थी। भोज का ग्वालियर अभिलेख भी स्त्री सैनिक टुकड़ी की पुष्टि करता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीनकालीन स्त्रियों को विशेषतः राजकुमारियों एवं रानियों को राजनीतिक एवं प्रशासनिक ज्ञान अनौपचारिक रूप से पीढ़ी प्रदत्त था किन्तु उन्हें, इन क्षेत्रों में भी प्रवीण किया जाता था, ताकि अपने पति का राज्यकार्य एवं युद्ध संचालन में सहयोगी एवं परामर्शदात्री की भूमिका का निर्वाह कर सके। सैनिक शिक्षा से प्रवीण स्त्रियाँ अस्त्र शस्त्र में कुशलता प्राप्त करके राजाओं की सेना में स्त्री सैन्य टुकड़ियों में सम्मिलित हो जाया करती थी। दासी वर्ग से भी कई साहसी, कुशल दासियाँ सैन्य कार्यों में सम्मिलित कर ली जाती थी।

**आर्थिक क्षेत्र में नारी की भूमिका -**

प्राचीन काल के आरम्भ से महिलाओं का परिवार में आर्थिक योगदान रहा है। लेकिन विभिन्न वर्ग की महिलाओं की आर्थिक क्षेत्र में भूमिका पृथक-पृथक है। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पुरूष के साथ आर्थिक कार्यक्रम में घर के बाहर सम्मिलित नहीं हो पाती थी। केवल निम्न वर्ग की स्त्रियाँ कुटीर उद्योगों में अपने पति की सहायिका होती थी। जैसा कि विष्णु के कथन से प्रतीत होता है कि चरवाहे, सुराकार, नटकार, धोबी, आखेटक की पत्नियों द्वारा लिया गया ऋण उनके पति को देना पड़ता है। क्योंकि उनकी पत्नियाँ उनके उद्योग में सहायिका होती हैं।[28] याज्ञवल्क्य द्वारा दिए गए इसी प्रकार के निर्देश का समर्थन अपरार्क और मिताक्षरा में भी किया गया है। नारियों द्वारा दुकान चलाने[29] और कृषि कार्य में सहयोग देने[30] का उल्लेख साहित्य में भी मिलता है। कादम्बरी में प्रतिहारी, ताम्बुलकरंक वाहिनी और चंवर डुलाने वाली सेविकाओं का उल्लेख मिलता है।[31] कामन्दकीय नीतिसार में स्त्रियों को निवास में कर्मचारिणी नियुक्त करने का निर्देश दिया गया है।[32] कथा सरित्सागर में एक स्थल पर एक स्त्री गुप्तचर का भी उल्लेख किया गया है।[33] साहित्य में यदा-कदा वणिकों द्वारा लाभार्थ अपनी पत्नि के दुरूपयोग का भी उल्लेख मिलता है, जो पतनोन्मुख समाज का निम्न चित्र उद्घाटित करता है। सोमदेव अर्थलोम नामक व्यापारी के बारे में लिखता है कि, उसकी पत्नी मानपरा उसके निर्देश पर अपनी इच्छा के प्रतिकूल विवश होकर अपने मधुर रूप, भाषण, व्यवहार से मनुष्यों को आकृष्ट कर व्यापार चलाया करती थी।[34]

**नारी का धार्मिक क्षेत्र में स्थान -**

प्राचीन युग में नारी के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण को लेकर दो विरोधी धारणाएँ समाज में प्रचलित थी। एक ओर परम्परागत हिन्दू सामाजिक विचारकों ने नारी को धर्म सम्बन्धी अधिकारों से वंचित कर दिया था। इस विचारधारा का मेघातिथि[35] तथा कुल्लुक[36] ने समर्थन किया है। स्मृति चन्द्रिका[37] और कृत्यकल्पतरू ने विष्णु को उद्धृत करते हुए लिखा है कि, पति की जीवितावस्था में व्रतोपवास करने वाली नारी पति की आयु का क्षय करती है और नरकगामी होती है। प्रायः सभी परवर्ती स्मृतियों ने नारी के लिए व्रत, उपवास, तपादि को निषिद्ध कर दिया और पति सेवा को ही उसकी परमगति का साधन और नारी-धर्म बताया। पराशर माधवीय ने भी इसी धारा का समर्थन और

अनुमोदन किया है। इस सन्दर्भ में उसने मार्कण्डेयपुराण, शंखलिखित, कात्यायन आदि का उद्धरण देते हुए नारी के सधवावस्था में अलग से किए जाने वाले धर्म कार्यों को निष्फल माना है। साहित्य में भी ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं।[38]

इस विचारधारा के विपरीत दृष्टिकोण तंत्रवाद से प्रभावित वाममार्गी और सहजीया विचारधारा के अन्तर्गत विभिन्न धर्म सम्प्रदायों से सम्बद्ध शाखाओं में विकसित हुआ है, जिसने खुलकर स्त्रियों को दीक्षा देने और ग्रहण करने तथा संन्यस्त होने का अधिकार प्रदान किया। समय मातृका में विवरण है कि मृगवती नामक वैश्या पहले शाक्त मठ में प्रवेश करती है, और भैरव सोम से दीक्षा लेकर शिखा नाम धारण करती है।[39] मालतीमाधव में लाल परिधानयुक्त, कामन्दीकी और उसकी शिष्या अवलोकिता का बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में उल्लेख है।[40] इसी ग्रंथ में कपाल कुण्डला और उसके गुरू उपधोरघंट द्वारा मालती को बलि देने का विवरण है।[41] उक्त ग्रंथ में बौद्ध भिक्षुणी कामन्दीकी मंत्री भूरिवसु को सहपाठी बताते हुए कहती है कि, विद्याध्ययन के लिए हम लोगों का अनेक दिगन्तों में वास और साहचर्य था।[42] कर्पूर मंजरी में भैरवानन्द का कथन है कि 'रण्डा अर्थात् विधवा, चण्डा अर्थात् क्रूरा और तान्त्रिक शिक्षा में दीक्षित स्त्रियाँ ही हमारी पत्नियाँ है।[43] इसी ग्रंथ में राजकुल की रानी द्वारा दीक्षा ग्रहण किए जाने का उल्लेख है।[44] दशकुमारचरित में बौद्ध संन्यासिनी द्वारा कुटनी-कार्य करने का भी विवरण है। कथा सरित्सागर में कालरात्रि नामक ब्राह्मणी की चर्चा की गई है। जो भैरव की पुजारिन है और सिद्धि प्राप्त करने की दीक्षा देती है। देवी भागवत पुराण में नारियों के लिए आजीवन कौमार व्रत की चर्चा की गई है।[45] कथा सरित्सागर में भी इस प्रकार की ब्रह्मचारिणी नारियों का उल्लेख है।[46]

सामाजिकता के प्रति सजग विचारकों ने गृहस्थ नारियों को इस प्रकार की भिक्षुणी और संन्यासिनियों के सम्पर्क से दूर रहने का निर्देश दिया है।

**धार्मिक क्षेत्र में नारी -**

धर्मिक जीवन में यज्ञ का महत्वपूर्ण स्थान था तथा इसे सम्पन्न करने में पत्नियाँ, पति का साथ देती थी। यज्ञों को सम्पन्न कराने के साथ ही वे वैदिक शिक्षा सम्पन्न भी होती थी तथा धार्मिक विषयों पर उनका ज्ञान विस्मयकारी था। लोपामुद्रा, गार्गी तथा मैत्रेयी सदृश बृह्मवादिनी नारियाँ विलक्षण थीं तथा उनमें धार्मिक चर्चा करने की

अभूतपूर्व क्षमता थी। मीमांसा जैसे विषयों के वाद-विवाद में पुरूषों के समकक्ष खड़े होने की क्षमता के जो उदाहरण प्राचीन साहित्य में उपलब्ध हैं वे इस बात के द्योतक हैं कि धार्मिक क्षेत्र में वे पुरूषों से पीछे कदापि न थी। किन्तु धीरे-धीरे स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों पर कुठाराघात होने लगा। स्कन्द पुराण के अनुसार महिलाएँ श्राद्ध के समय मंत्रोच्चारण कर सकती थी। मार्कण्डेय पुराण में ''सर्वाभावे स्त्रियः कुर्यः स्वभर्तुणायमन्त्रकम'' से स्त्रियों द्वारा श्राद्ध सम्पन्न कराने का संकेत मिलता है। शंख स्मृति के अनुसार पुत्र के समान पुत्री के संस्कार के पश्चात् उसे भी श्राद्ध कर्म पिण्डदान करना चाहिए।

**धार्मिक समारोह एवं उत्सवों में महिलाओं की सहभागिता -**

मत्स्य पुराण में महोत्सव, समाजोत्सव, वृक्षोत्सव तथा देवोत्सव आदि चार प्रकार के उत्सवों की विवेचना है। ये उत्सव मानसिक प्रसन्नता का कारण थे। विष्णु पुराण में महोत्सव और श्री कृष्ण के दर्शन को समकक्ष वर्णित किया है। रत्नावली नाटिका में बसन्त के अवसर पर मनाए जाने वाले उत्सव को महोत्सव नाम दिया गया है। देवोत्सव के कारण जनसम्पर्क होना स्वाभाविक था। अशोक के अभिलेखों में उत्सवों के प्रचलन का उल्लेख है जो उत्सवों की प्राचीनता को दर्शाते हैं। कभी-कभी समाजोत्सव धर्मरहित भी हो जाते थे, इसलिए अशोक ने इन्हें रोकने का प्रयास किया था।[47]

**स्त्रियों का लौकिक विश्वास -**

संकेत साहित्य में स्त्रियों के लौकिक विश्वास (तावीज, भूत-प्रेत, व्याधि, जादू-टोने, शकुन-अपशकुन, शुभ-अशुभ) के प्रमाण मिले हैं। स्त्रियाँ शकुन-अपशकुन पर अटूट विश्वास करती थी और शकुन शास्त्र के ज्ञाता स्त्रियों के मध्य विशेष सम्मानीय थे तथा स्त्रियाँ इनके द्वारा प्रदत्त मंत्र युक्त यंत्र (तावीज) पहनती थी। रानी विलासवती गोरोचना द्वारा लिखित भोजपत्र पर यंत्र पहनती थी तथा हाथ में रक्षा कंकण और औषधयुक्त सूत्र बाँधती थी।[48]

रानी विलावती ने पुत्र प्राप्ति के लिए सभी जादू टोनों का सहारा लिया था। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी रात्रि में चौराहों पर जाकर बड़े वैद्यो (ओझाओं) द्वारा बनाए हुए जादू के घेरों के बीच में बैठकर अनेक प्रकार के बलिदानों से दिक्पालों को संतुष्ट करके मांगलिक

स्नान करती थी। जिन देवियों ने अपने भक्तों को अनिष्टफल प्रदान कर विश्वास उत्पन्न कर दिया था समीवर्ती स्त्रियाँ उन सभी देवियों के मन्दिरों में जाती थी।[49] चक्षुस्पन्दन आदि शुभ-अशुभ शकुनों पर स्त्रियों का विश्वास था। वे दाहिनी आँख का स्पन्दन (फड़कना) अशुभ मानती थी तथा बाँई आँख का स्पन्दन शुभ। अपशकुनों को देखकर सीता का मुख कमल की तरह मुरझा गया,[50] वहीं शकुन्तला विचलित हो गई थी।[51]

प्राचीन काल में स्त्रियों के लौकिक विश्वास के उदाहरणों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि संभवतया तांत्रिक विद्या, जादू-टोने, शकुन-अपशकुन आदि औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा के विषय रहे होंगें। संकेत साहित्य में लिखित पंक्ति कि 'स्त्रियों के मध्य शकुन शास्त्र के ज्ञाता विशेष सम्माननीय थे' से स्पष्ट होता है कि पुरूषों का महिलाओं से लौकिक विश्वासों में तुलनात्मक कम विश्वास था। रानी विलावती ने पुत्र प्राप्ति के लिए इन जादू टोनों का सहारा लिया जो यह संकेत करता है कि पुत्र मोह प्रबल था, जिसकी चाह में वे कुछ भी कर सकती थी।

**धार्मिक जीवन में देवदासी -**

मन्दिरों में ईश्वर आराधना के लिए नर्तकियाँ जिन्हें देवदासी कहा जाता था, रखी जाती थी। ये गीत, वाद्य तथा नृत्य द्वारा ईश्वर का पूजन करती थी।[52] लगभग 8वीं सदी के मन्दिरों में नाट्यमण्डप का विधान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मिला है। खजुराहो तथा उड़ीसा के मन्दिरों में बने नाट्यमण्डप दर्शनीय है तथा यहाँ के मन्दिरों की दीवारें नर्तकियों एवं संगीतज्ञ स्त्रियों की प्रतिमाओं से परिपूर्ण है। उड़ीसा में लिंगराज, परशुरामेश्वर तथा राजारानी मन्दिरों की दीवारों में नृत्य में तल्लीन नर्तकियाँ उत्खचित है। राजतरंगिणी के वर्णन तथा अभिलेखों से सिद्ध है कि देवपूजा तथा यात्रा में संगीत मुख्य अंश था।[53] विदेशी यात्री अलबेरूनी के विवरण से पुष्टि होती है कि देवदासी प्रथा गुप्तकाल के बाद विकसित हुई।

मंदिर की दीवारों पर बनी प्रतिमाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि देवदासियों का नृत्य, वाद्य, गीत-संगीत में दक्ष करने हेतु संगीतज्ञ स्त्रियाँ एवं नृत्य में निपुण स्त्रियाँ हुआ करती थी। देवपूजा में संगीत का विशेष स्थान था। संभवतया यह शिक्षा इन्हें औपचारिक रूप से मन्दिरों अथवा अन्य सुनिश्चित स्थान पर दी जाती रही होगी। नृत्य, संगीत वाद्य इनके मुख्य विषय रहे होंगे। किसी औपचारिक शिक्षण संस्थानों से इनका

कोई सम्बन्ध नहीं रहा होगा। क्योंकि बाल उम्र में ही देवदासी बना दिया जाता था। अतः देवदासी वर्ग शिक्षा से वंचित रहा होगा।

**सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका -**

प्राचीनकाल में घर-परिवार तक ही महिलाओं का कार्यक्षेत्र था लेकिन आवश्यकता पड़ने पर विपरीत परिस्थितियों में वे घर की सीमा से बाहर आकर समाज की उन्नति के लिए महत्वपूर्ण कार्य करती थी। प्राचीनकाल के इतिहास में अनेक रानियों ने राज्य संचालन का कार्यभार संभाल कर अपूर्व योग्यता का परिचय दिया था।

नारियों के लिए प्राचीनकाल में गृहस्थाश्रम को समाज कल्याण का प्रमुख केन्द्र माना गया है इस युग की नारियाँ, गृहस्थी में रहकर ही समाज सेवा के कार्य करती थी।

प्राचीनकाल में सभी आश्रमवासियों का भरण-पोषण, भिक्षावृत्ति द्वारा समस्त प्राणियों के प्रति करूणा भाव, अतिथि सत्कार आदि ऐसे सामाजिक कार्य थे, जिनकी अपेक्षा प्रत्येक गृहिणी से की जाती थी। पूर्व मध्यकाल के अन्तिम-चरण में पर्दाप्रथा प्रारम्भ हो जाने के कारण सामान्य वर्ग की महिलाओं के लिए सामाजिक कार्यों में योगदान देना कम हो गया था, लेकिन राजघराने की स्त्रियाँ इस कार्य के लिए स्वतंत्र थी। कलचुरिवंश के भेड़ाघाट अभिलेख से ज्ञात है कि अल्हणादेवी ने शिवजी मन्दिर के साथ विद्याभवन निर्मित करवाया था तथा उद्यान को दो पंक्तियों में लगवाया था।[54] कई स्त्रियाँ जगत कल्याण की भावना से मनुष्यों के साथ-साथ पशुओं के जलावश्यकता की पूर्ति के लिए तालाब खुदवाने का कार्य करती थी। विग्रहराज की विधवा रानी लाहिनी देवी ने एक पुराने सूर्यमन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर एक वापि (तालाब) बनवाया था।[55]

**पारिवारिक पृष्ठभूमि में महिला -**

नारी के पुत्री, पत्नी, माता, बहिन सभी स्वरूप महत्वपूर्ण माने गये हैं। इस सृष्टि का प्रारम्भ स्त्री एवं पुरूष के पारस्परिक सम्बन्ध, आपसी मेल से माना गया है। इस आपसी सम्बन्ध को स्थायित्व देने एवं मर्यादित बनाने के लिए तथा समाज के विकास के लिए विचारकों ने विवाह जैसी संस्था का प्रारम्भ किया। विवाह की इस महत्वपूर्ण घटना से परिवार का प्रारम्भ हुआ, जिसमें नारी एक महत्वपूर्ण चरित्र है।

वेदों एवं पुराणों में स्त्री को पत्नी के रूप में सधर्मचारिणी बताया है, जिसके साथ गृहस्थ धर्म का पालन करने से महान फल की प्राप्ति होती है।[56] ब्रह्माण्ड पुराण में मातंग की पत्नी को सधर्मिणी की उपाधि दी गई है।[57]

वेदों एवं पुराणों में सपत्नीक याज्ञिक अनुष्ठान की परम्परा विद्यमान थी जिसमें पत्नी के बिना यह महत्वपूर्ण अनुष्ठान नहीं हो सकता था। ब्रह्माण्ड पुराण में नृपसागर ने सपत्नीक यज्ञीय स्नान सम्पन्न किया था।[58]

**दाम्पत्य जीवन में महिला भूमिका -**

विवाह का अर्थ संतान पैदा करना नहीं था, अपितु पारिवारिक सम्बन्धों की प्रेम एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार से घर को स्वर्ग बनाना था। पति-पत्नी के आदर्श प्रेम का उदाहरण भवभूति ने अपने ग्रंथ मालतीमाधव में रखा है।[59] पत्नी घर की मर्यादा, अर्थ, धर्म और काम की संचालिका मानी जाती थी।[60]

गुप्तकाल में आदर्श पत्नी को परिवार में पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। कात्यायन स्मृति में पत्नी के कर्त्तव्यों का जो विवेचन है वह कामसूत्र के विवेचन के अनुरूप है।[61] अभिज्ञान शाकुंतलम में काण्व ने शकुंतला को विदा करते समय जो परामर्श दिया है उससे भी उक्त कर्त्तव्यों की पुष्टि होती है।[62] अर्थात् गुप्तकाल में पत्नी से यह सब करने की आशा की जाती थी।

गुप्तकाल में पति के लिए पत्नी कितनी महत्वपूर्ण थी, यह आज के शब्दों से स्पष्ट है वह मेरी गृहिणी थी, मेरी परामर्शदात्री थी, और मेरी मित्र थी और ललित कलाओं में मेरी शिष्या थी।[63]

इस काल की महिलाएँ घर को पूर्णतया साफ रखती थी और फूलों से सजाती थी। घर के उद्यान में फल, सब्जियाँ व फूलों के पौधे लगाती थी। आवश्यक घरेलू वस्तुओं को पर्याप्त मात्रा में मंगवाकर रखती थी। वह स्वयं ही कृषिकार्य, पशुपालन आदि की देखभाल करती और कातना, बुनना जानती थी। वह वार्षिक आय-व्यय के अनुमानित आँकड़े तैयार करती और उन्हीं के अनुसार अपना खर्च करती। प्रतिदिन का अपना हिसाब लिखती थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में महिलाएँ घर के आर्थिक बजट का वार्षिक उपभोग रिपोर्ट तैयार करती थी जो उनके सांख्यिकी ज्ञान को प्रदर्शित करता है। घर का सफाई कार्य, व्यावसायिक कार्य, पौधे लगाना सामाजिक एवं पर्यावरण के प्रति आदर्श दायित्व का बोध करवाता है।

रामायण काल में सीता, श्रीराम के लिए गृहलक्ष्मी थी, वह घर का प्रत्येक कार्य स्वयं करती थी, साथ ही समाज में एक आदर्श पत्नी के रूप में उदाहरण प्रस्तुत किया।[64] सुशिक्षित तथा कुलीन परिवारों में पत्नी को सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त थी, अभिलेखों में इनका साक्ष्य है। रानियों को ''महारानी'' जैसी उपाधियों से विभूषित किया जाता था।[65] परिवार में पत्नी का सम्मान तो था किन्तु पत्नी के मातृपक्ष से सम्बन्धित परिवार को उचित सम्मान अथवा सम्मानपूर्वक व्यवहार नहीं किया जाता था। पूर्व मध्यकाल तक ऐसा उदाहरण (9वीं 10शती) में बिहार में हुसैनपुर काको नामक स्थान पर जनरल कंनिघम ने एक मूर्ति देखी जिसके निचले भाग में उत्कीर्ण है। इसमें वर्णित है कि मधूसुदन के पुत्र श्री रामनाग ने अपने श्वसुर, माता-पिता के लिए धार्मिक दान दिये थे। अन्यथा समाज में पत्नी के मातृपक्ष का नाम गाली के प्रयोग में लाया जाता रहा है।[66]

प्राचीन काल में दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के अटूट प्रेम के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। अटूट प्रेम के कारण पत्नियाँ, अपने पति को युद्ध में जाने से रोकती थी।[67] खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर के पिछली बालकनी तथा दाहिने बाह्य भाग की दीवार पर उत्कीर्ण दृश्य में पत्नी को अपने सशस्त्र पति को युद्ध में जाने से रोकते हुए दर्शाया गया है।[68] खजुराहो के मन्दिरों में कुछ दृश्य ऐसे हैं जिनमें रोती हुई पत्नियाँ अपने आँसू छिपाने का प्रयास कर रही हैं[69] और उनके पति सांत्वना दे रहे हैं तथा उन्हें चेहरों से हाथों को हटाने का प्रयास कर रहे हैं।[70]

सामान्य परिवारों की स्त्रियों का जीवन तुलनात्मक रूप से संकीर्ण था। पुराणों में स्त्री को शुद्र के समकक्ष रखते हुए निर्देशित किया गया है कि पत्नी, पति की सेवा करने से शुद्र के समान अनायास ही धनार्जन करती है।[71] स्मृतिकारों तथा नीतिकारों ने पति परमेश्वर की भावना जागृत की जिससे स्त्रियों का भावनात्मक रूप से शोषण किया। खजुराहो में ऐसे दृश्य है जिनमें रूष्ट एवं क्रोध में बावले पति अपनी पत्नियों को चौड़ी तलवार[72] या बर्छी[73] से मारने जा रहे हैं।

यद्यपि उपर्युक्त उद्धरणों से पत्नी की उन्नत स्थिति सिद्ध होती है किन्तु सामान्य जीवन जीने वालों की दशा अवनति को सिद्ध करती है।

दाम्पत्य जीवन के सुख का मूल आधार पत्नी को माना गया था। महारानी यशोमती राजा के प्राण, विश्वास, धर्म और सुख की भूमि थी।[74] पत्नी की सर्वगुण सम्पन्नता सुखी जीवन का आधार था। कर्णाट, लाट, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश की स्त्रियाँ दाम्पत्य जीवन को सुखद बनाने के लिए अपनी विशेषताओं के द्वारा पति का मनोरंजन करती थी।[75] पति के लिए पत्नी प्रमुख शक्ति थी। एदिलपुर अभिलेख की चन्द्रदेवी में अर्थ, धर्म एवं काम तीनों का संगम था तथा वह अपने पति लक्ष्मण सेन की मुख्य शक्ति थी।[76] दाम्पत्य जीवन के विविध पहलुओं जैसे पति-पत्नी एक दूसरे को प्रसन्न करने, रूठने-मनाने, आपसी झगड़ों के दृश्यों को बड़ी सजीवता के साथ कलाकारों ने खजुराहो में चित्रित किया है। दम्पत्ति प्रेम को आलिंगन मुद्रा द्वारा दर्शाया गया है। संग्रहालय में सुरक्षित एक दृश्य में पति अपनी पत्नी की कमर में हाथ डाले हुए जा रहे हैं।[77] देवगढ़ के गुप्तकालीन मंदिर के निचले बन्ध में एक दम्पत्ति को श्रृंगारिक मुद्रा में दर्शाया गया है। पति का बायां हाथ पत्नी के कंधे पर रखा है।[78] पत्नी की रूग्णावस्था में उसकी परिचर्या का भार पति के ऊपर रहता था वे पत्नी को प्रसन्न रखने का भी प्रयास करते थे। खजुराहो संग्रहालय में सुरक्षित एक दृश्य में एक व्यक्ति स्त्री को कमल का पुष्प भेंट कर रहा है, वह स्त्री मुखाकृति से रूष्ट दिखाई दे रही है। खजुराहो मूर्तियों की क्रोधपूर्ण मुखाकृतियों[79] तथा एक-दूसरे के विपरीत दिशा में मुँह फेर कर खड़े होने की मुद्रा[80] पति-पत्नी के आपसी झगड़ों का प्रतिनिधित्व करती है। पत्नी की रूष्टता दूर न होने पर पति अंजलि मुद्रा में हाथ जोड़कर पत्नी से क्षमा याचना तक कर लेते थे।[81] रूठी पत्नी को मनाने के लिए कभी-कभी उसके चरणों में पड़ जाते थे।[82]

उपर्युक्त विवरण महिलाओं की दाम्पत्य जीवन में सुदृढ़ स्थिति को प्रतिबिम्बित करता है। समाज में पत्नी का उच्च स्थान परिवार में रहा है। पारिवारिक घरेलू समस्याओं का भार केवल पति पर न होकर पत्नी पर भी होता था। खजुराहो में समीप बैठे हुए पति-पत्नी की भाव भंगिमाओं से प्रतीत होता है कि वे संभवतः किसी पारिवारिक समस्याआ पर वार्तालाप कर रहे हैं।[83]

पत्नी का सर्वश्रेष्ठ गुण संयम माना जाता था। इन्द्रियों पर संयम सर्वाधिक कठिन कार्य है, और इसमें पत्नी सफलीभूत होती थी। ऋषि वशिष्ठ की पत्नी अरून्धती ने पति के साथ रहकर अपनी इन्द्रियों को वश में कर स्वयं को लौह स्त्री सिद्ध किया था।[84] याज्ञवल्क्य ने पत्नी के संयम पर बहुत बल दिया है।[85]

स्त्रियों के संयम पर जोर देने के पीछे दो मुख्य धारणाएँ थी प्रथम - तत्कालीन सामाजिक नियम विश्रृंखलित हो रहे थे, और उसे व्यवस्थित करना आवश्यक था। पत्नी के संयम से पति को संयमित रहने की प्रेरणा दी गई, ताकि पति भोग विलास में लिप्त न होकर सामाजिक कर्त्तव्यों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करने लगे। दूसरा बाहरी आक्रमणों तथा युद्धों के कारण देश का आर्थिक संतुलन भी बिगड़ रहा था, अतः आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाये रखने के लिए परिवार को सीमित रखना भी आवश्यक होगा। इस युग के साहित्य एवं मूर्तिकला में कहीं भी अधिक संतानों को नहीं दिखाया गया है लेकिन फिर भी कई रानियों के कई संतानें थीं।

धर्मशास्त्रों में पत्नी के अधिकारों की विस्तृत विवेचना की है। पति-पत्नी समान अधिकारों का प्रयोग करते थे। मेघातिथि ने लिखा है कि पति-पत्नी केवल शरीर से भिन्न होते हैं, लेकिन अन्य कार्यों में वे पूर्ण रूप से सम्बद्ध रहते हैं।[86] पत्नी का अधिकार था कि वह पति का संरक्षण प्राप्त करे। खजुराहो के कई दृश्य सशस्त्र पति द्वारा पत्नी की सुरक्षा के द्योतक हैं।[87] जिसमें पति, पत्नी की सुरक्षा के लिए उसके साथ दौड़ रहा है और उसके साथ दो व्यक्ति संभवतः उनका पीछा कर रहे हैं। अतः इस दृश्य से यह बात सिद्ध होती है कि समाज में स्त्रियों को पुरूष की सुरक्षा की आवश्यकता थी। क्योंकि समाज में स्त्रियों के साथ अभद्र व्यवहार, छेड़छाड़, बलात्कार होते थे और स्त्रियाँ शारीरिक बल की कमी के कारण अपनी सुरक्षा करने में असमर्थ थी। अत्रि ने पत्नी की सुरक्षा पर निर्देशित किया है कि यदि कोई व्यक्ति चोरी से दूसरे की पत्नी के साथ बलात्कार करता है तो पत्नी त्याज्य नहीं है। रजस्वला होने के पश्चात् वह शुद्ध हो जाती है।[88] अत्रि की इस विचारधारा ने पत्नी के साथ होने वाले अन्याय से उसकी सुरक्षा की। दक्ष ने पत्नियों का नाम उस श्रेणी में रखा है, जिसका पालन पोषण करना व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है।[89]

धर्म के क्षेत्र में भी पति के समान ही अधिकार पत्नी को थे। स्त्रियाँ अपनी रूचि के अनुसार किसी भी धर्म की अनुयायी हो सकती थी, पति का धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं थी। कन्नौज शासक गोविंदचन्द्र गहड़वाल की पत्नी कुमार देवी पति के ब्राह्मण धर्म को अस्वीकार कर बौद्ध धर्मानुयायी हो गयी थी।[90]

वनाश्रमवासी पत्नी, पति के प्रति अपने कर्त्तव्य का पूर्ण रूप से निर्वाह करती थी। राजर्षि जीमूतवाहन के पिता जीतकेतु पर्णकुटी में निवास कर रहे थे, वहाँ उनकी धर्मचारिणी पत्नी उनकी सेवा करती थी।[91] ऋषि मुनि की पत्नियाँ धार्मिक कृत्य में पति का साथ देती थी। आबू पर्वत पर सम्पन्न किए गए धार्मिक कृत्य में वशिष्ठ ऋषि के साथ उनकी पत्नी अरून्धती भी थी। परमारवंशी शासक चामुण्डराय के अर्थुना अभिलेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है।[92]

परिवार तथा समाज में स्त्रियों का स्थान विशेष संतोषप्रद न होने पर भी यत्र-तत्र उनकी प्रशंसा में गाये गये गीतों के वर्णन हैं साथ ही देवियों से उनकी तुलना भी की गई है, परन्तु यह बात राजघरानों की पत्नियों के सम्बन्ध में ही विजयसेन की पत्नी विलासदेवी की तुलना लक्ष्मी तथा गौर से करते हुए उसे अन्तःपुर की स्त्रियों में शिरोरत्न कहा गया है।[93] कलचूरी शासक पृथ्वीदेव द्वितीय के रत्नपुर शिलालेख में माये की पत्नी रम्भा की तुलना शची, गौरी तथा पार्वती से की गई है तथा उसकी धर्मपरायणता के कारण सभी सम्बन्धी उसका सम्मान करते थे।

अतः पत्नियों ने अपने चरित्र एवं आदर्श के लिए प्रशंसनीय एवं उच्च कोटि की नैतिकता को अंगीकार किया। आदर्श पत्नी में शीलवती, अभुजंगगम्य एवं पर पुरूष दर्शन व्रतिनी आदि गुणों का होना आवश्यक था।

उत्तम पत्नी की कसौटी उसकी योग्यता थी जिस पर खरी उतरने पर वह पति प्रेम का भाजन बनती थी। अभिलेखों के अनुशीलन में प्रमुख रानियों के उल्लेखों से निष्कर्ष निकलता है कि जो रानी सर्वाधिक योग्य होती थी वह प्रमुख रानी (महारानी) के पद पर सुशोभित होती थी। सल्लक्षणवर्मन के अन्तःपुर में अनेक रानियों के होते हुए भी मालव्य देवी अपने विशेष गुणों के कारण महारानी के पद पर आसीन हो सकी थी।[94] पत्नी में प्रेम तथा दूसरों के हितों का ध्यान रखना आदि गुणों का होना आवश्यक होता था। नारायण पाल के बदल स्तम्भ लेख में चर्चित इच्छना में दोनों गुण थे। श्रेष्ठ गुणों वाली स्त्री सभी के

द्वारा प्रशंसनीय होती है, इसलिए गोपाल की पत्नी रम्भादेवी के गुणों की प्रशंसा प्रजा करती थी।[95]

वैवाहिक जीवन में पत्नी को कुल-भूषण मानकर वैदिक परिवार में उसे श्रेष्ठ स्थान दिया गया। आध्यात्मिक तथा नैतिक शक्ति से परिपूर्ण नारी को विश्वामित्र जैसे ऋषि ने मान्यता दी तथा पत्नी को 'गृह'(जायेदस्तम) संज्ञा से विभूषित किया। पत्नी के अभाव में मानव जीवन का निर्वाह असम्भव था। सृष्टि की रचना में भी सांख्य दर्शन की वधु प्रकृति तथा पुरूष का संयोग आवश्यक था तथा पति द्वारा सम्पन्न होने वाले धार्मिक कृत्यों में भी पत्नी की नितान्त आवश्यकता थी। जीवन में पत्नी की अति आवश्यकता होने के कारण पत्नी की मृत्यु हो जाने के बाद दूसरे विवाह का प्रावधान बना, किन्तु विधवा महिलाओं के लिए इसकी आवश्यकता नहीं समझी गई, क्योंकि उनके द्वारा धार्मिक कृत्यों को महत्वहीन समझा गया।

**ऋग्वेद** - परिवार में पत्नी के रूप में स्त्री रानी की तरह सम्मानित थी तथा पति के घर में, घर के बड़े लोगों पर राज भी करती थी। जीवन के प्रत्येक पहलू में पत्नी का विशेष महत्व था। यज्ञ का अधिकार पत्नी के साथ ही था। इसलिए संयुक्त रूप से पति-पत्नी यज्ञ करते थे। कई अवसरों पर स्त्रियाँ पृथक रूप से भी यज्ञ करती थी। प्राचीन काल में होने वाले कई कार्य पुरोहितों द्वारा होने लगे। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि पहले पत्नी द्वारा होने वाला हवि बनाने का कार्य बाद में अग्नि प्रज्वलित करने वाला पुरोहित करने लगा। बौद्धकाल के आने तक परिवार में उनके साथ दुर्व्यवहार होने लगा। अतः वधुओं ने सौलह वर्ष की आयु में ही घर त्यागकर भिक्षुणी होना स्वीकार किया। पूर्व मध्यकाल तक स्त्रियों की रजस्वला स्थिति में अपवित्र मानकर उन्हें सदैव के लिए अपवित्र मान लिया तथा कर्मकाण्ड की जटिलता बताकर उसे कई अधिकारों, क्रियाकलापों से वंचित कर दिया।

पारिवारिक जीवन में अभी भी उसे सम्मान योग्य ही समझा जाता था। महाभारत में पत्नी को पति की प्रसन्नता की कुंजी कहा गया है, क्योंकि परिवार में पुत्र, पुत्रियों, पुत्र वधुओं के घर परिपूर्ण होने पर भी व्यक्ति का जीवन पत्नी के बिना सूना होता है तथा गृहिणी विहीन घर को जंगल के समान बताया है। गृह व्यवस्था की स्वामिनी पत्नी हुआ करती थी, साथ ही सभी कार्यों में उसके विचार लिए जाते थे। जहाँ एक और दूसरी शती

ई.पू. में पत्नियों को अधिकारों से वंचित किया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर मनु के अनुसार ''संतोनोत्पादन के लिए वस्त्राभूषण से आदर सत्कार के योग्य गृह की शोभा रूपिणी ये स्त्रियाँ लक्ष्मी स्वरूप है।'' इतना ही नहीं मनु नारी-पुरूष में एकता भी मानते हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में भी पति-पत्नी के सम्बन्धों को मित्रवत माना गया। महाभारत ग्रंथ भी उनका समर्थन करता प्रतीत होता है।

वैदिक काल में बहुपत्नी प्रथा के उदाहरण अत्यन्त न्यून है। शासकीय वर्ग में इस प्रथा का प्रचलन था। लेकिन ऋग्वेद में उदाहरण मिलता है कि जिस प्रकार चारों ओर से शत्रु के आक्रमण होने से परेशानी होती है उसी प्रकार एक पति अपनी ईर्ष्यालु पत्नियों से स्वयं को परेशान पाता है। उत्तर वैदिक काल से महाकाव्य काल तक कुछ हद तक इस प्रथा को अपना लिया लेकिन स्त्रियों की समाज में हीन स्थिति तक पहुँचाने के लिए उत्तरदायी रही है, क्योंकि पुरूष बहुपत्नियों के साथ आनंद लेता रहा जबकि पत्नी के 'एक पतिव्रत' आदर्श ने उसे दासी बना दिया।

**प्राचीनकाल की स्त्रियों के जीवन में आनन्दोत्सव -**

स्त्रियों की निजी जीवन में अनेक प्रतिबन्ध लग चुके थे, किन्तु उनकी सर्वांगिण उन्नति का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। इनके मनोरंजन एवं प्रसन्नता के लिए पर्याप्त व्यवस्था की जाती थी। संस्कृत साहित्य में उद्यान क्रीड़ा, सलित क्रीड़ा एवं कंदुक क्रीड़ा का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। शासक एवं उच्च वर्ग के लोग अपने मनोविनोद के लिए क्रीड़ा-विहार की व्यवस्था करने लगे, जिनमें स्त्रियाँ भी भाग लेती थी।

मनोरंजन के लिए समारोह दो प्रकार के हुआ करते थे -

**(अ) सामाजिक समारोह -**

1. नाटक
2. उत्सव
3. गोष्ठी
4. धूतक्रीड़ा एवं सुरापान
5. शोभायात्राएँ

**(ब) धार्मिक समारोह -**

1. त्यौहार
2. मेले
3. बसन्तोत्सव
4. दीपमालिका
5. इन्द्रोत्सव

**नाटक -**

प्राचीनकाल में नाटक मनोरंजन का प्रमुख साधन था, अतः कन्याएँ अपने माता-पिता अथवा प्रेमियों के साथ एवं पत्नियाँ, पतियों के साथ इस समारोह में उपस्थित होती थी। पुराणों से ज्ञात होता है कि ललिता देवी का मनोविनोद नाटकों द्वारा होता था।[96] कई प्रसिद्ध संस्कृत नाटक, रत्नावली, नागानन्द, वेणीसंहार, माल्तीमाधव आदि के स्त्रीपात्र इस बात का प्रमाण है ये नाटक मात्र मनोरंजन का साधन ही न होकर स्त्रियों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का पूर्ण अवसर प्रदान करते थे। नाटकों में नृत्य द्वारा अभिव्यक्ति का भी स्वरूप है। रत्नावली नाटिका में चेटियों ने श्रृंगार विषयक द्विपदी गीत के अभिनय नृत्य प्रस्तुत किये थे।[97]

**उत्सव -**

स्वयंवर राजा या राजकुमार नगर प्रवेश जैसे उत्सवों में सम्पूर्ण समाज एकत्रित होता था तथा ऐसे अवसरों पर स्त्रियों का सामाजिक सम्पर्क होता था। स्त्रियाँ वस्त्र, आभूषणों से सुसज्जित होकर इन उत्सवों में भाग लेती तथा नृत्य, संगीत का आनन्द प्राप्त करती थी।[98] उत्सवों में उच्छृंखल तत्वों से सुरक्षा के लिए स्त्रियों के पृथक बैठने की परम्परा थी।[99]

**गोष्ठी -**

सामाजिक एवं धार्मिक विषयों पर परिचर्चा के लिए गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था, जिसमें स्त्रियों का प्रवेश वर्जित न था।[100] कृष्ण की पत्नियाँ बसंत ऋतु के अवसर पर सुन्दर सरोवर के किनारे गोष्ठी में लीन रहती थी।[101] गोष्ठियों में शास्त्रार्थ में पराजित पक्ष को विजेता पक्ष की शर्त पूर्ण करना पड़ता था। जैन हरिवंश के अनुसार याज्ञवल्क्य ने सुलभा नामक विदुषी को शास्त्रार्थ में पराजित कर पाणिग्रहण किया था।[102]

**धूतक्रीड़ा एवं सुरापान -**

सामाजिक अवसरों पर स्त्रियाँ भी धूतक्रीड़ा खेलती थी। कादम्बरी के महाश्वेता वर्णन में स्त्रियों को धूत क्रीड़ा में निपुण तथा पाशक विद्या रहस्य को स्वाधीन करने का निर्देश है। इसी ग्रंथ में सामाजिक अवसरों पर स्त्रियों के मद्यपान का भी वर्णन है। कथा सरित्सागर में बसंतोत्सव के वर्णन में राजा धर्मध्वज द्वारा आयोजित पान गोष्ठी का भी

वर्णन है, जिसमें स्त्रियों द्वारा ग्रहण की हुई सुरा के बचे हुए भाग को राजा ने बड़े प्रेम से पिया था। नैषध महाकाव्य (20/80) में उल्लेखित मधुगोष्ठी में नल और रनिवास की महिलाओं ने भाग लिया था। बसन्तोत्सव के अवसर पर मदिरा में मस्त कामनियाँ नर्तन भी करती थी।[103]

**शोभायात्रायें -**

पुरूषों के साथ स्त्रियाँ भी शोभायात्राओं में रूचि लेती थी। पुष्पमालाएँ, पूजा सामग्री लिए शिलापट्टों पर अंकन इस बात का प्रमाण है।

**उद्यान क्रीड़ा -**

नगर के समीप स्थित उद्यानों में स्त्रियाँ और बालिकाएँ अपनी सखियों के साथ[104] 'आँख मिचौनी', 'दौड़ पकड़' जैसी क्रीड़ाओं का वर्णन वात्स्यायन में किया गया है।[105] इन क्रीड़ाओं से बालिकाओं का शारीरिक व्यायाम एवं विकास होता था।

**सलिल क्रीड़ा -**

सलिल क्रीड़ा के समय स्त्रियों के सुनहरी पिचकारियाँ एवं केसरिया वस्त्र प्रमुख थे। स्त्रियाँ द्राक्षारस पीती थीं, सुगन्धित द्रव्य शरीर पर लगाती और फिर अपने पतियों के साथ जल में विहार करती थी।[106] चेदिवंश के बिलहरी शिलाभिलेख में रीवा नदी[107] में स्त्रियों के स्नान का वर्णन है। चेदिशासक कर्णदेव के बनारस ताम्रपत्र[108] में भी रानी के नदी स्नान का वर्णन है। उपरोक्त वर्णनों से प्रतीत होता है कि अधिकांश स्त्रियाँ तैरने में निपुण हुआ करती थी।

**दोलाकेलि (झूला झूलना) -**

स्त्रियों के मन बहलाने का सार्वजनिक साधन था। गाँव की बालाएँ वृक्ष में रस्सी डालकर झूले डालती थी। राजघरानों की स्त्रियों के झूले छोटी-छोटी घंटियों से सुसज्जित होते थे, जिनका प्रयोग दिन ढलने के साथ होता था।[109]

**अन्य मनोविनोद के साधन -**

बालिकाएँ, गुड्डियों का खेल, कथा कहानी एवं पशु-पक्षी विनोद प्रमुख है।

**रामायणकालीन नारियों की भूमिका[110] -**

रामायण काल में पति का त्याग करना, नारी के लिए अत्यन्त क्रूर कर्म बताया गया है, उसके लिए नेक धर्म, व्रत, उपवास, यज्ञ, तप, सत्कर्म को निरर्थक बताया है, यदि वह पति की सेवा नहीं करती है। उदाहरण स्वरूप कौशल्या द्वारा दशरथ की शोक संतप्त स्थिति में होने पर भी पुत्र के वनगमन शोक में डूबे होने पर, श्री राम ने उन्हें नारी के कर्त्तव्यों का बोध करवाया।

स्त्री के लिए पति वियोग के समान कोई कष्ट नहीं है तथा पति के बिना रेशमी वस्त्र, आभूषण, शरीर पर शोभायमान नहीं होते एवं नारी जीवन नरक के समान बताया गया है रामायण काल के महत्वपूर्ण पात्र सीता, तारा, सुलोचना आदि के चरित्र का सत्य प्रतिव्रता प्रतिबिम्ब उजागर होता है।

सीता के शील, सदाचार, सतीत्व से परिपूर्ण पतिव्रता धर्म का पालन करते हुए, रावण द्वारा प्रेम प्रदर्शन वाले शब्दों का बहिष्कार करते हुए अभिमानी रावण को यह अहसास करवाया कि यश, ऐश्वर्य, धर्म व शक्ति उन्हें प्रभावित नहीं कर सकती। जिस प्रकार सूर्य से सूर्य की प्रभा अलग नहीं की जा सकती, उसी प्रकार सीता ने स्वयं को श्री राम का अभिन्न अंग बताया एवं यह प्रसंग उनकी दृढ़चरित्रता एवं नारी के वास्तविक सौन्दर्य को उजागर करते हैं।

सीता से ली गई अग्नि परीक्षा से वह कितनी आहत हुई इसका अनुमान उनके इन शब्दों से लगाया जा सकता है कि यदि मेरे चरित्र पर संदेह था तो प्रथम बार ही हनुमान से यह संदेश भिजवा देते। मैं उन्हीं के सामने अपने प्राण त्याग देती, मैंने आपको संकट में डाला और आपको निरर्थक ही मेरे लिए युद्ध करना पड़ा। मेरे लिए लक्ष्मण लकड़ियाँ एकत्रित कर चिता सजा दो, मैं कलंकयुक्त जीवन जीना नहीं चाहती। सीता ने अयोध्या की पटरानी होने के बावजूद एवं दास-दासियों के होने पर भी दिन-रात पति की सेवा एवं गृहकार्य स्वयं किया करती थी। सीता के लिए पति ही देवता, बन्धु और पति ही गुरू जिनके लिए अपने प्राणों का त्याग करने के लिए हमेशा तत्पर रही।

**सती प्रथा और नारी -**

विधवा हो जाने पर स्त्री का पति की चिता के साथ अग्नि में प्रवेश करना सती होना कहलाता था। यह प्रथा डॉ. काणे के मतानुसार ईसा से कुछ शताब्दियों पूर्व ब्राह्मणवादी भारत में प्रचलित हुई थी।[111] ऐतिहासिक युग में इस प्रथा का प्रारम्भ माना जाता है। रामायण में कौशल्या द्वारा दशरथ के देहावसान के बाद सती होने की इच्छा का उल्लेख हुआ है। पूर्व मध्यकाल तक इस प्रथा ने समाज में अत्यन्त दृढ़ता प्राप्त कर ली थी। वास्तविकता यह थी कि वैधव्य दुःख से त्राण पाने का साधन सती होना था। पुत्री जन्म के साथ ही उेस पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह, पतिव्रता नारी रूप, संसार जगत पति में व्याप्त, पति के बिना नरक का जीवन आदि अवधारणाओं में निपुण कर दिया जाता था। मानसिक रूप से पुत्री को विवाह होने तक इन परिकल्पनों के लिए परिपक्व कर दिया जाता था, जिसका असर उसके मन-मस्तिष्क पर इस प्रकार हावी रहता था कि उसके पति मर जाने पर सती होने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प उसे नजर नहीं आता था। दक्ष स्मृति में कहा गया है कि जो विधवा स्त्री सती होगी उसे स्वर्ग में अनन्त सुख प्राप्त होगा।[112] यह भी विश्वास दिलाया जाने लगा कि सती होने के पश्चात् पत्नी का पति से पुनर्मिलन होता है।[113] अशिक्षित एवं अज्ञानी स्त्रियों ने स्मृतिकारों पर विश्वास करके सती होना सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त सती प्रथा प्रचलित होने का एक अन्य कारण यह था कि विधवाओं को कुछ आर्थिक अधिकार भी थे। पुत्रहीन विधवा को आजीवन भरण पोषण का भार उठाना अथवा सम्पत्ति में से भाग देना आवश्यक था। विधवा स्त्री को 'सती' होने के लिए प्रेरित करना जिससे परिवार के लोग उसके भार से मुक्त हो जाते थे।

**महिला व्यवसाय -**

वैदिक काल में मनुष्य अधिकतर युद्धों में व्यस्त रहते थे, अतः स्त्रियाँ कृषि कार्य करती थी। स्त्रियों के कुछ अन्य कार्य कपड़े बुनना, सिलना, रंगना, कशीदाकारी, टोकरी बनाना आदि थे। कुछ स्त्रियाँ धनुष और बाण भी बनाती थी। एक ऋषि की माता आटा पीसती थी।

**मौर्यकाल में वेश्यालयों के अध्यक्ष पद पर कर्त्तव्य एवं गणिकाओं की भूमिका -**

उर्मिला प्रकाश मिश्र ने इस संदर्भ में विस्तृत विवरण दिया है।[114] वेश्याओं की व्यवस्था के लिए नियुक्त अधिकारी वैश्या-कुल से सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध रूप यौवन सम्पन्न तथा गायन-वादन एवं नृत्य कला में निपुण स्त्री को एक हजार गण मासिक देकर गणिका के रूप में नियुक्त किया जाता था। गणिका के लिए नियत मासिक वेतन का आधा भाग उसके परिवार को तथा आधा भाग गणिका को दिया जाता था।

गणिका के कहीं और चले जाने पर अथवा देहावसान हो जाने पर उसके स्थान पर उसकी बहिन या पुत्री या गणिका की माता द्वारा प्रस्तावित किसी अन्य रूपवती स्त्री को गणिका के स्थान पर नियुक्त कर दिया जाता था। अन्य गणिका के नहीं मिलने पर, राजा द्वारा गणिका की सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले लिया जाता था।

वेश्याओं की तीन श्रेणियाँ होती थी, जिसके अनुसार ही उनका वेतनमान और उनके कर्त्तव्य तथा अधिकार होते हैं –

| श्रेणियाँ | वेतनमान | कर्तव्य/कार्य |
|---|---|---|
| कनिष्ठ-सौन्दर्य | प्रतिमास एक हजार पण | राजा का कार्य व इत्रदान उठाना |
| | सामान्य सजावट में | |
| मध्यम-सौन्दर्य | प्रतिमास दो हजार पण | राजा की पालकी के साथ रहना |
| | सजावट सामान्य से बढ़कर | |
| उत्तम सौन्दर्य | प्रतिमास तीन हजार पण | राजसिंहासन और रथ के पास रहना |
| | सजावट में उत्कृष्ट | |

गणिकाओं का सौन्दर्य ढल जाने पर उन्हें नयी गणिकाओं की देखरेख एवं प्रशिक्षित करने के लिए लगा दिया जाता था। राजवृत्ति से मुक्त होने की इच्छुक गणिकाएं राजा को कुछ पण का भुगतान करके मुक्त हो सकती थी। रूपजीवाओं (रूप से जीविका कमाने वाले वेश्याओं) को अपनी मासिक आय का 1/5 भाग राज्य कर के रूप में चुकाना पड़ता था।

निम्नलिखित व्यवसायों में लगे हुए व्यक्तियों की आजीविका का प्रबन्ध नगरों तथा गाँवों से आने वाली आय से किया जाता था।

गाना-बजाना, नाचना, नाटक करना, लिखना, चित्रकारी करना, वीणा, वेणु व मृदंग बजाना, दूसरों के मन के भावों को पढ़ लेना, सुगन्धित द्रव्यों का निर्माण करना, शरीर सजाना आदि कार्यों में निपुण तथा गणिकाओं, दासियों व नर्तकियों को कलाओं का ज्ञान देने वाले आचार्य।

मौर्यकालीन समाज में गणिकाओं की शिक्षा नृत्य, शरीर श्रृंगार, गाना-बजाना आदि विशेष कार्यों में इन्हें निपुण किया जाता था। इनकी जीविका इनके कार्यों से प्राप्त आय से चलती थी। समाज का कुछ समुदाय इन्हीं कार्यों में अपनी सुन्दर बालिकाओं को आमदनी का अच्छा स्त्रोत समझते थे, उन्हें इस प्रकार उपयोग में लेकर स्वयं के परिवार का पालन करते थे। ऐसा समुदाय सुन्दर बेटी जन्म पर खुशियाँ मनाता था।

विभिन्न समीक्षात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्रागैतिहासिक युग से उत्तर वैदिक युग तक नारी को आदर एवं सम्मान प्राप्त था तथा समाज में समान साझेदारी थी। वैदिक काल में नारियों की शिक्षा के समुचित प्रबन्ध थे। इनके उच्च शिक्षा एवं सहशिक्षा के अनेक प्रमाण प्राप्त हैं। महाकाव्य काल में नारी एवं पुरूष दोनों के कर्म क्षेत्र भिन्न थे। लेकिन दोनों एक-दूसरे के पूरक थे। स्मृतियों एवं धर्मसूत्र में उनकी स्थिति में गिरावट आयी तथा उपनयन संस्कार को विवाह संस्कार से संबद्ध कर दिया गया था।

धार्मिक क्षेत्र में यज्ञों को सम्पन्न कराने के साथ धार्मिक विषयों पर उनका ज्ञान विस्मयकारी था तथा श्राद्धकर्म के समय मंत्रोच्चारण एवं पिण्डदान कर सकती थी। प्राचीनकाल में सभी आश्रमवासियों का भरण-पोषण, भिक्षावृत्ति के प्रति करूणा भाव, अतिथि सत्कार जैसे कार्यों की अपेक्षा गृहिणी से की जाती थी। समाज में गणिकाओं, दासियों, नर्तकियों को विभिन्न कलाओं में निपुण किया जाता था। महिलाओं की दाम्पत्य जीवन में सुदृढ़ स्थिति थी तथा वे सामाजिक-धार्मिक आनन्दोत्सवों में भाग लिया करती थी।

स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक जीवन में महिलाएँ सक्रिय रूप से जुड़ी हुई थी। वे परिवार की मुख्य धूरी थी तथा सामाजिक गतिविधियों से उनका जुड़ाव था।

# Chapter-II

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**


1. एच.डी. साकलिया, **प्री हिस्टोरिक आर्ट इन इण्डिया**, 1978, पृ. 8
2. एच.डी. साकलिया, पूर्वोक्त, पृ. 29
3. एच.डी.साकलिया, पूर्वोक्त, पृ. 31
4. आर.सी. मजूमदार, **प्राचीन भारत**, 1982, पृ. 32
5. **ऋग्वेद** 10, 27, 2
6. भगवतशरण उपाध्याय, **वूमेन इन ऋग्वेद**, पृ. 188
7. **तैत्तरीय संहिता** 2, 3, 4, 1: **मैत्रायणी संहिता** 1, 10, 11
8. **ऋग्वेद** 1, 162, 11: 1, 71: 7, 26, 3: 10, 145, 3-4
9. **ऋग्वेद** 10, 42, 2: 10, 18, 8
10. **रामायण** 2, 20, 25
11. **रामायण** 4, 16, 12
12. **रामायण** 2, 9, 15-16
13. **महाभारत, अनुशासन पर्व**, 43, 5
14. **महाभारत, अनुशासन पर्व** 46, 14
15. **महाभारत, अनुशासन पर्व** 43, 19 21
16. **कौटिल्य का अर्थशास्त्र** - ''नीचत्वं परदेश वा प्रस्थतो राज किल्विषी प्राणा भिहन्ता पतितास्यास्थेक्लीवोपिता पतिः।
17. **कौटिल्य का अर्थशास्त्र** (4.10.1)
18. **मनुस्मृति**, 9, 3, ''पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने, रक्षान्तिस्याविरे पुत्रा न स्त्री स्वातत्यभर्हति''।
19. **व्यास स्मृति:** 2, 27 ''दासी वदिष्ट कार्येषु भार्या भर्तु: सदा भवेत्''।
20. **दक्ष स्मृति**, 4.1 पृ. 70 तथा व्यव. का, पृ. 522 पर उद्धत दक्ष।
21. **स्मृ.च., व्यव.** का., पृ. 523
22. **स्मृ.च., व्यव.** का., पृ. 524
23. **स्मृ.च., व्यव.** का., पृ. 523
24. **बृहस्पति**, 24.4, कृत्य. व्यव. का, पृष्ठ 608 पर भी उद्धत।
25. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, **'प्राचीन भारत में नारी'** पृष्ठ 98
26. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, **'प्राचीन भारत में नारी'** पृष्ठ 98
27. ए.एस. अल्तेकर, **पोजीशन ऑफ वीमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन**, पृ. 187

28. **शकुल्लुक**, 5.162, एवं सति पुन-र्भूत्वमपि प्रतिषिद्धम्।
29. **समय मातुका**, 2.45
30. **विक्रमांक देवचरित**, 14.29, पृ. 19
31. **कादम्बरी**, पृ. 45
32. **कामन्दकीय नीतिसार**; 7.44
33. **कथासरित् सागर**, खण्ड 1, पृ. 35
34. **कथासरित् सागर**, खण्ड 1, पृ. 199-200
35. **मेघातिथि**, 5.153, पृ. 558
36. **कुल्लुक**, 5.155
37. **स्मृ.च., व्यव.** का. पृ., 628
38. **यशस्तिलक**, उत्तरखण्ड, 4.189-191, पृ. 85-6
39. **समय मातुका**, 2.43 व 58
40. **मालतीमाधवम्**, प्रथम अंक, पृ. 18
41. **मालतीमाधवम्**, पाँचवा अंक, पृ. 22
42. **मालतीमाधवम्**, पाँचवा अंक, पृ. 22
43. **कर्पूर मंजरी**, पृ. 47
44. **कर्पूर मंजरी**, चतुर्थ अंक, पृ. 229
45. **कथा सरित्सागर**, खण्ड 1, पृ. 389
46. **देवी भागवतपुराण**, 5.17.15
47. **सिलेक्ट इंसक्रिप्शंस**, पृ. 16
48. **कादम्बरी**, सुत प्राप्त्यर्थ राज्य व्यवहार, पृ. 202
49. **कादम्बरी**, सुत प्राप्त्यर्थ राज्य व्यवहार, पृ. 200
50. **रघुवंश**, 4/49-50
51. **अभिज्ञान शाकुन्तलम्**, 5/12
52. **ए.इ., जिल्द** 1, पृ. 130, जिल्द 6, पृ. 199-202 का इ.इ. जिल्द 4, पृ. 150

    'नृत्यगीत वाद्येपेत संगीत'
53. **ए.इ., जिल्द** 11, पृ. 28
54. **ए.इ., जिल्द** 2, पृ. 13, पद्य 27-28 आर्के.सर्वे.ई., 9 पृ. 93
55. **ए.इ., जिल्द** 9, पृ. 10, पद्य 10-14 (पूर्णपाल का वसन्तगढ़ अभिलेख)
56. **प्रबोध चन्द्रोदय**, 3/21 स्त्री-मुखं तु सदा शुचि।
57. **हर्षचरित, तृतीय उच्छवास**, पृ. 160 धवल-द्विज-शचि-वदना।

58. **कथासरित्सागर**, 2/15
59. **इंसक्रिप्शंस ऑफ बंगाल**, 3 पृ. 73
60. **इंडि, एंटी, जिल्द** 15, पृ. 305
61. **कात्यायन** 4, 1, 1-55 और 4, 2, 1-38
62. **विष्णु** 25, 13-14 याज्ञ.1.75, 83 बृहस्पति 24,7, अभिज्ञान शाकुंतलम, अंक 4
63. **रघुवंश** 8, 67
64. **उत्तर रामचरित**, 1/38

    इयं गेहे लक्ष्मी रियम मृतवतिनिंयनयोः।
65. **इंसक्रिप्शंस ऑफ बंगाल**, भाग-3, पृष्ठ 63 'अस्मन्महा महादेवी'।
66. **आर्के. सर्वे. इंडि. एनु. रिपो, जिल्द** 16, पृ. 36
67. **हर्षचरित**, चतुर्थ उच्छवास, पृ. 200

    ''चक्रवाक-भार्येव पति प्रेम्वि'
68. **विश्वनाथ मंदिर**, मण्डप में एक ओर छोटी पंक्ति।
69. **विश्वनाथ मंदिर**, मण्डप का भीतरी प्रदक्षिणा।
70. **कंदरिया मंदिर**: भीतरी प्रदक्षिणा
71. **विष्णु पुराण**, 6/2/35
72. **लक्ष्मण मंदिर, बांयी बालकनी की प्रदक्षिणा**
73. **दूल्हादेव तथा लक्ष्मण मन्दिर, दाहिना बाहरी भाग**
74. **हर्षचरित**, चतुर्थ उच्छवास, पृ. 201

    प्राणानां प्रणयस्य विस्रम्भस्य धर्मस्य सुखस्य च भूमिरभूत्।
75. **कथा सरित्सागर**, भाग-2, अष्टलम्बक, 104-106
76. **इंसक्रिप्शंस ऑफ बंगाल**, 3 पृष्ठ 123
77. **संग्रहालय, आकृति** सं. 84
78. **मयों, आकें, सर्वे ऑफ इंडिया**, सं. 60, पृष्ठ 21
79. **विश्वनाथ मंदिर, दायां बाहरी भाग**
80. **कंदिरिया मन्दिर, बायां बाहरी भाग**
81. **विश्वनाथ मंदिर, भीतरी प्रदक्षिणा**
82. **नवसाहसांकचरित**, 15/45
83. **खजुराहो संग्रहालय**, सं. 300
84. **ई.ई. जिल्द 14, पृष्ठ 296**, पंक्ति-5 (परमार चामुण्ड राज का अर्थन अ.ले.)
85. **याज्ञवल्क्य स्मृति**, प्/83-87

86. **मनु पर टीका**, प्/32
87. **संग्रहालय**, आकृति सं. 86
88. **अत्रि**, 3/193-194 (20 स्मृतियाँ, पृष्ठ 384)
89. **दक्ष**, 2/36
90. **ए.ई. जिल्द**-9, पृष्ठ - 225 (कुमार देवी का सारनाथ का अ.ले.)
91. **नागानन्द**, 5/2

    जीमूतकेतु रूट जागसो सह स्वधर्म चारिण्या राजपुत्र्या वध्वा च पुश्र्युपास्यमानस्तिष्ठति।
92. **ए.ई., जिल्द**-14, पृष्ठ 296
93. **इंसक्रिप्शंस ऑफ बंगाल**, पृष्ठ 73

    अस्य प्रधान-महिषी-जगदीश्वरस्य शुद्धान्त मौलिमणिसस विलास देवो (10)
94. **सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस**, पृष्ठ-15
95. **आर्के सर्वे. ऑफ इंडि. रिपो**, 1871-72, भाग-3, पृष्ठ 113
96. **ब्रह्माण्ड पुराण**, 4/37/8
97. **रत्नावली**, 1/12 के आगे
98. **हर्षचरित**, चतुर्थ उच्छ्वास, पृष्ठ 215, 221
99. **महाभारत**, आदि पर्व, 134/15-18
100. **पौराणिक धर्म एवं समाज**, पृष्ठ 318
101. **मत्स्य पुराण**, 70/4
102. **जैन हरिवंश**, 21/129-139
103. **रत्नावली**, अंक 1 मधुमत्त कामिनी नृत्य
104. **दशकुमार चरित्र**, 5/2
105. **कामसूत्र**, 3/3
106. **शिशुपाल वध** 8/1-62
107. **ए.इ., जिल्द** 1, पृष्ठ 269, पद्य 27
108. **ए.इ., जिल्द** 2, पृष्ठ 299
109. **कादम्बरी**, प्/212
110. **सोती, विरेन्द्र चन्द्र, भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति**, पृष्ठ 8-9
111. **पी.वी.काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-प्रथम**, पृ. 348
112. **दक्ष स्मृति**, 4/18-19, **स्मृतिनागसमुच्चय**, (बीस स्मृतियां, पृ. 207), पृ. 30
113. **बी.एन.शर्मा, सोशल लाइफ इन नार्थ इण्डिया**, पृ. 20
114. **डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, प्राचीन भारत में नारी**, अध्याय 7, पृष्ठ 115-119

# अध्याय–तृतीय
# प्रारम्भिक काल से
# मौर्यकाल तक महिला शिक्षा

# तृतीय अध्याय

## प्रारम्भिक काल से मौर्यकाल तक महिला शिक्षा

**वैदिक काल में महिला शिक्षा -**

वैदिक काल में महिला शिक्षा पर भी विशेष बल दिया जाता था। ज्ञान और शिक्षा में वे किसी भी प्रकार से पुरूषों से कम नहीं थी। वेदों में नारी अपना गरिमापूर्ण स्थान रखती है। वेद की नारी - विदुषी, प्रकाश से परिपूर्ण, वीरांगना, वीरों की जननी, आदर्शमाता, संतान की प्रथम शिक्षिका, अध्यापिका, उपदेशिका, धनुर्विद्या में निष्णात, शिल्पविद्या, वैश्य गुणकर्म, कृषि, पशुपालन, व्यापार में योगदान करती पूज्य है। वेदों में नारी को शिक्षित करने के अनेक मंत्र हैं जो वैदिक कालीन महिला शिक्षा को प्रमाणित करते हैं।[1]

ऋग्वेद 6/44/18 के अनुसार स्वामी दयानन्द लिखते हैं राजा ऐसा यत्न करे जिससे सब बालक और कन्यायें ब्रह्मचर्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हो। सत्य, न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करे।

यजुर्वेद 11/36/, 6/14, 11/59 एवं ऋग्वेद 1/152/6 में नारी को शिक्षा का अधिकार दिया गया है।

जितनी कुमारी हैं, वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करें और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी विदुषियों की ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सभी को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें - ऋग्वेद 2/41/16

ऋग्वेद से अनेक ऋषिकाओं के विषय में जानकारी मिलती है[2], जिन्होंने अनेक मंत्रों और ऋचाओं की रचना की थी। काक्षीवती, सिफल, घोषा, अपाला, आत्रेयी, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि विदुषी नारियाँ इनमें अधिक प्रसिद्ध है। वैदिक काल में स्त्रियाँ उत्सवों एवं यज्ञों में भाग लेती थी तथा विदुषी महिलाएँ वेद मंत्रों का पाठ भी करती थीं।[3]

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका।

दीर्घायुस्तु मे पति र्जीवाति शरदः शतम।।

- अथर्व. 14/2/63

शिक्षा के महत्व को देखते हुए ही वेदों में स्त्री शिक्षा की पर्याप्त व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। वेदों में शिक्षा को आश्रम व्यवस्था एवं सौलह संस्कारों के साथ जोड़ा गया है। महिलाओं की औपचारिक शिक्षा उपनयन संस्कार के साथ आरंभ होकर समावर्तन संस्कार पर समाप्त होती थी। उपनयन संस्कार (जनेऊ धारण) शिक्षारम्भ का प्रतीक था। बालकों के समान बालिकाएँ भी मेखला धारण करती थी। बालिकाओं को वस्त्र बुनना, रथ चलाना, युद्ध करना आदि की भी शिक्षा दी जाती थी।[4] अथर्ववेद में सुन्दर तानों बानों से युक्त, वस्त्रों का वर्णन है, जिनको स्त्रियों ने तैयार किया -

ये अन्ता यावतीः सिचों य ओतवो यच तन्तवः।

वासोयत् पत्नी भिरूतं तत्रः स्योनमुप स्पृशात।।

- अथर्ववेद 14/2/51,
अथर्ववेद 14/1/45

चित्र 3.1: वैदिक कालीन नारी

वैदिक शिक्षा पद्धति एवं स्वतंत्र तथा समतामूलक समाज का ही प्रभाव था कि वैदिक काल में कई विदुषियों ने ऋचाओं की रचना की थी। वैदिक सूक्तों की रचना करने वाली महिलाओं की संख्या 26 है[5] , जो यह बताने के लिए पर्याप्त है कि वैदिक कालीन स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। ब्रह्मवादिनी ममता दीर्घतमा ऋषि की माता थी। ये महान

विदुषी और ब्रह्मज्ञान सम्पन्न थी। विदुषी महिलाओं ने मंत्र सृष्टा होकर ऋषिपद का गौरव प्राप्त किया था।

वैदिक कालीन स्त्री की विदुषिता होने का उदाहरण हमें उनके विद्वता भरे शास्त्रार्थ में दिखाई देता है। स्त्री एवं पुरूष के मध्य तर्क एवं संवाद प्रगतिशील समाज का सूचक माना जाता हैं प्राचीनकालीन भारतीय इतिहास का महिला के संदर्भ में विश्लेषण करें तो महिला की स्थिति, न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में सशक्त पाते हैं। स्त्रियाँ वेदाध्ययन करना, कविता बनाना और मंत्रों की रचना आदि कार्य करती थी। रणकुशल स्त्रियाँ जो कुशल रथचालक, दुर्धर्ष यौद्धा एवं सैन्य संचालन में सक्षम होती थी, युद्ध में जाती थी।

ऋग्वेद में एक स्थान पर युद्ध कौशल में प्रवीण मुदगलानी का उल्लेख है, जिन्होंने अपने रथ कौशल से शत्रु सेना को भागने पर विवश कर दिया -

उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत् सहस्त्रम्।
रथीरभून्मुदगलानी गविष्ठौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना।। - ऋग्वेद 10/102/2

मुदगलानी के समान ही एक युद्ध में पारंगत वीरांगना विश्पला का उल्लेख बार-बार ऋग्वेद में मिलता है, जिन्होंने हजारों यौद्धाओं द्वारा लड़े जा रहे युद्ध में भाग लिया था -

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्य
सहस्त्रमीलह आजावजिन्वतम। - ऋग्वेद 1/112/10

मात्र एक या दो ही स्त्रियाँ युद्ध में नहीं जाती थी बल्कि ऋग्वेद में एक ऐसी सेना का उल्लेख प्राप्त होता है जो पूरी सेना ही स्त्रियों की थी।[6]

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे
किं मा करन्नबला अस्य सेनाः। - ऋग्वेद 5/30/9

चित्र 3.2: युद्धभूमि में नारी

**उपनिषदकाल में महिला शिक्षा -**

उपनिषदों में भी अनेक विदुषी स्त्रियों के संदर्भ मिलते हैं, जिनमें गार्गी परम विदुषी महिला थी। गार्गी ने जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान महापुरूष को अपने गूढ़ प्रश्नों से मूक कर दिया था।[7] याज्ञवल्क्य की पत्नी भी अत्यन्त विदुषी और ब्रह्मवादिनी महिला थी। तद्युगीन स्त्रियाँ अनेक कार्यों में दक्ष हुआ करती थी। उस समय के माता पिता पंडिता (ज्ञानी) पुत्री की कामना से अनुष्ठान किया करते थे।

अथ य इच्छेत दुहिता मे पण्डिता जायते।

- बृहदारण्यकोपनिषद 1/4/17

गृह्यसूत्रों से विदित होता है कि उनका उपनयन के साथ-साथ समावर्तन संस्कार भी होता था। समावर्तन संस्कार ब्रह्मचर्य जीवन की समाप्ति के बाद सम्पन्न होता था। अतः सूत्रयुग में ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती थी। गार्गी वाचक्नवी, बडवा प्रातिथेयी, सुलभा मैत्रेयी कहोलं कौषीतकी...

- (आश्वलायन गृहयसूत्र 3/4/4 तथा शड्खायन गृहयसूत्र 4/10)

ऋषि तपण के समय गार्गी, वाचक्नवी, सुलभा, मैत्रेयी, बड़वा, प्रतिथेयी आदि ऋषिनारियों के भी नाम लेने का निर्देश किया गया था।[8] उस युग में दो प्रकार की

महिलाएँ थी - एक सद्योवधु और दूसरी ब्रह्मवादिनी।[9] सद्योवधु विवाह होने के पहले तक ब्रह्मचर्य व्रत का अनुसरण करती थी तथा ब्रह्मवादिनी जीवन पर्यन्त ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करती थी। अध्यापन का कार्य करने वाली स्त्रियाँ 'आचार्या और उपाध्याया' कही जाती थी।

**महाकाव्यकाल में महिला शिक्षा -**

नारी के शैक्षणिक विकास की दृष्टि से महाकाव्य काल को वैदिक काल की तुलना में पिछड़ा हुआ कहा जा सकता है। महाकाव्यों से भी स्त्री शिक्षा पर महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। कौशल्या और तारा 'मंत्रविद्' नारियाँ थी।[10] सीता नित्य संध्या पूजा करती[11] और अत्रेयी वेदान्त का अध्ययन करती थी। कैकयी अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा में निपुण थी। महाभारत में एक वृद्धा, तपस्विनी, ब्रह्मचारिणी का अष्टावक्र मुनि के साथ संवाद का वर्णन है। शाण्डिल्य की कन्या ब्रह्मचारिणी का तपोवन कुरूक्षेत्र में था। जनक की भिक्षुणी सुलोमा से दार्शनिक शास्त्र चर्चा हुई थी। रामायण और महाभारत के स्त्री पात्रों कौशल्या, कैकेयी, सीता, मन्दोदरी, शकुन्तला, कुंती, द्रोपदी, सुभद्रा, रूक्मिणी आदि के वैदुष्य के वर्णन मिलते हैं।[12]

**महाभारतकाल में महिला शिक्षा -**

महाभारत की नारी का कार्यक्षेत्र मुख्यतः घर था। सामाजिक क्षेत्र में उसकी गतिविधियाँ सीमित थी, वे अर्थोपार्जन के दायित्व से मुक्त थी। सैद्धान्तिक रूप में नैतिक जीवन के आदर्श अत्यन्त ऊँचे होते हुए भी सामाजिक व्यवहार में स्त्रियों का अस्तित्व सुरक्षित न था। शत्रुओं द्वारा स्त्रियों पर अत्याचार का भय तो कभी चोर; डाकुओं द्वारा अपहरण का भय बना रहता था। द्वारका से हस्तिनापुर लौटती हुई यादव-स्त्रियों का अपहरण मार्ग में दस्युओं ने किया था, जबकि धनुर्धर पार्थ साथ में थे। ऐसी सामाजिक स्थिति के कारण महिलाओं के सुरक्षात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए, विद्याभ्यास के लिए कन्याओं को आरण्यावस्थित अरक्षित आश्रमों में दीर्घावधि के लिए भेजने की अपेक्षा उन्हें घर पर ही यथासंभव शिक्षा देना अपेक्षाकृत अधिक उचित समझा जाता था। उनकी शिक्षा का स्वरूप अनौपचारिक था। इस प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा कन्या के बान्धवों द्वारा, घर आए मनीषियों द्वारा, गुरूजनों अथवा नियुक्त उपाध्याय द्वारा दी जाती थी। कतिपय स्त्रियाँ वेदोच्चारण वेदज्ञान प्राप्त कर लेती थी। स्त्रियों को अनेक मंत्र एवं

प्रार्थनाएँ कण्ठस्थ होने का उल्लेख महाभारत में मिलता है। विनता ने गरूड की विदाई के समय आशीर्वादात्मक स्वस्ति वाचन किया था। कर्ण के उत्सर्ग के समय अनेक देवताओं की प्रार्थना करते हुए कुन्ती ने कर्ण 'स्वस्ति' की कामना की थी।

स्वस्ति ते एत्वन्तरिक्षेम्यश्च पार्थिवेभ्यश्च पुत्रक

दिवेभ्यश्चैव भूवेभ्यस्तथा तोयचराश्चये।।[13]

शकुन्तला द्वारा उद्धृत 'आत्मा वै पुत्र नामासि' इस मंत्र का प्रयोग उपाकर्म एवं उपनयन संस्कार में होता है।[14] इस प्रकार हम देखते हैं कि औपचारिक वेदाध्ययनादि न करते हुए भी महाभारत के इन नारी पात्रों को वेदों की मार्मिक एवं उपयोगी ऋचाओं की साधारण जानकारी रहती थी। इसका संभवतः कारण आश्रमवासियों के परिवारों में स्त्रियाँ रहती थी। उत्तक से गुरूपत्नी के लिए ऋतुयाचना ऐसी ही स्त्रियों ने की थी।

'स वसंस्तत्रोपाध्यायस्त्रीभिः सहिताभिराह्योक्तः। उपाध्यायिनी ते ऋतुमती उपाध्यायश्च प्रोषितः।[15] शकुन्तला तो तपयस कन्या थी, जिसे पितृतुल्य आचार्य कण्व के सानिध्य में ज्ञानार्जन का अनवरत अवसर प्राप्त था।

इस काल में घर आए अतिथि-मनीषियों के प्रवचनों ने भी नारी-शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कुन्ती, कुन्ती भोज के यहाँ दुर्वासा ऋषि ने कुन्ती की आतिथ्य-परिचर्या से प्रसन्न होकर उसे 'अथर्वशिरस्' मंत्र उपचार सहित ग्रहण कराया था।[16] इसी वशीकरण मंत्र की सहायता से कुन्ती ने देवों का आह्वान करके धर्मराज आदि तीन देवतुल्य पुत्र प्राप्त किये। इसी मंत्र की शिक्षा पाण्डु की प्रार्थना पर कुन्ती ने माद्री को दी थी। माद्री ने अश्विनी कुमारों का ध्यान किया और तद्रूप नकुल तथा सहदेव पुत्र रूप में प्राप्त किये।[17]

साधारण कुटुम्बों में भी विद्वान-मनीषी अतिथियों का आवागमन होता रहता था। वे इतिहास पुराण तथा देश-देशान्तर की रोचक कथाएँ सुनाया करते थे। एकचक्रा नगरी में जहाँ पाण्डव छद्मवेश में ठहरे थे, एक ब्राह्मण ने कुन्ती को अनेक रोचक वृत्तान्त सुनाये थे।[18] आश्रमवासिनी शकुन्तला को एक अतिथि के साथ कण्व के वार्तालाप के द्वारा अपने जन्म-सम्बन्धी वृत्तान्त का ज्ञान हुआ था।

कथा कहानी सुनने में भी स्त्रियाँ विशेष रूचि रखती थी। कथा-श्रवण-श्रावण न केवल उनके मनोरंजन का साधन था, अपितु ज्ञान-वर्धन का एक माध्यम भी। बृहन्नला विराट के अन्तःपुर में कथा-कहानियाँ आदि सुनाकर अन्तःपुर के लोगों का मनोरंजन भी किया करती थी।[19]

**ललित कलाओं की शिक्षा -**

प्राचीन ग्रंथों में, विशेष रूप से 'शतपथ ब्राह्मण' में स्त्रियों के लिए ललित-कलाओं की शिक्षा का उल्लेख मिलता है। ललित कलाओं में नृत्य संगीत और वाद्य स्त्रियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते थे।[20] इन कलाओं का महाभारत की नारियों पर अच्छा प्रभाव भी दिखाई देता है। यहाँ तक कि नारियों का भाषण भी संगीत के समान मधुर था।[21] विराट भवन में बृहन्नला के रूप में अर्जुन का कार्य स्त्रियों को नृत्य, गीत तथा संगीत जैसी ललित-कलाओं की शिक्षा देना था -

गीत नृतं च वादित्रं विविधं तथा।

शिक्षायिष्याभ्यहं राजन्विराट भवने स्त्रियः।।[22]

उत्तरा ने इसी समय अर्जुन से संगीत, नृत्य आदि की शिक्षा प्राप्त की थी।[23] बृहन्नला की नियुक्ति से पूर्व मत्स्यराज ने उसके कला-नैपुण्य के अतिरिक्त उसके क्लीबत्व की भी परीक्षा करायी थी।[24] बृहन्नला एवं विराटपुत्री उत्तरा के सम्बन्ध पिता-पुत्री जैसे मधुर थे।[25] इसलिए अर्जुन ने कालान्तर में उसे अपनी पुत्रवधु बनाना ही उचित समझा। फिर भी बृहन्नला के क्लीबत्व की परीक्षा सम्बन्धी घटना से यह बात पुष्ट होती है कि कन्याओं के लिए पुरूष-शिक्षक की नियुक्ति समाज में सन्देह का कारण उपस्थित करती थी।[26]

महाभारत में राजदासियों के लिए 'चतुःषष्ठिविशारदा'[27] विशेषण का प्रयोग हुआ है। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि राजदासियाँ वात्स्यायन आदि द्वारा निर्दिष्ट चौंसठ कलाओं[28] से भिज्ञ और उनमें से अनेक उन सब कलाओं में पारंगत भी होती थी। इसी प्रकार पट पर अंकित चित्र[29] सुई और वायक (दर्जी)[30] तथा उत्तरा द्वारा कपड़ों से गुड़ियों को सजाने[31]आदि का उल्लेख किया गया है। इन सन्दर्भों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सिलाई, बुनाई, कड़ाई, खिलौने बनाना आदि ललित कलाएँ स्त्रियाँ

जानती थी और दूसरों को सिखाती भी थी। दासियों एवं गणिकाओं का एक ऐसा वर्ग था जो नृत्य, गीतादि ललित-कलाओं को जीविका के साधन के रूप में सीखता था। ऐसी ही दासियाँ अथवा गणिकाएँ राजप्रासादों में राज-परिवार का मनोरंजन करने तथा उन्हें सुलाने-जगाने के लिए नियुक्त की जाती थी।

**अनौपचारिक शिक्षा के गुण-दोष -**

महाभारत कालीन स्त्रियाँ प्राप्त करने के लिए किसी शिक्षण संस्थान में नहीं जाती थी, इसलिए उनकी शिक्षा को अनौपचारिक शिक्षा का दर्जा दिया गया है, इसका सबसे बड़ा गुण यह था कि कन्याएँ सिद्धान्तों से दूर रहकर व्यवहार द्वारा अपने कौशल तथा बुद्धि से उपयोगी बातें सीखती थी। इस प्राकृतिक एवं उपयुक्त वातावरण में दया, त्याग, सेवा, निष्ठा, धर्मपरायणता आदि सद्गुणों के अतिरिक्त भावी गार्हस्थ्य जीवन में आवश्यक अन्यान्य ललितकलाएँ भी सीखती थी। पौराणिक कथाएँ एवं इतिवृत (भूतकालिक घटनाओं का काल-क्रमानुसार लिखा हुआ विवरण अथवा ऐतिहासिक बातों का कहानी आदि के रूप में वर्णन) मौखिक रूप में एकाधिक बार सुने जाने के कारण स्त्रियों को प्रायः मुखाग्र (जो जबानी याद हो) रहते थे। जैसे कुन्ती, द्रोपदी, शकुन्तला आदि को अनेक उपाख्यान कण्ठस्थ थे। धर्मशास्त्रों के वचनों का ज्ञान तथा भिन्न वर्णाश्रमों के कर्त्तव्यों का परिचय कुन्ती[32], द्रोपदी[33], गान्धारी[34], सुभद्रा[35] आदि राजकुल की स्त्रियों को भली-भाँति था। इससे उन्हें एक गहन अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती थी। इसीलिए अवसर आने पर कुशाग्रमति नारियाँ धर्मज्ञों के वचनों का प्रमाण देकर अत्यन्त मनोज्ञ (प्रिय, सुंदर) रीति से अपना पक्ष प्रतिपादित करने में समर्थ थी। कुन्ती और द्रोपदी समय-समय पर अपने मन्तव्यों से पाण्डवों को अवगत कराती थी। अतः महाभारतकालीन अनौपचारिक शिक्षण जीवन सापेक्ष गतिविधि प्रेरित एवं साक्षात् व्यवहार पर आधारित था, जिसके कारण मानव तथा समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यन्त तर्कसंगत एवं व्यावहारिक था।

महाभारत में सुलभा को जीवनपर्यन्त वेदान्त का अध्ययन करते हुए दर्शित कराया गया है। द्रोपदी 'पण्डिता' एवं उत्तरा ने अर्जुन से संगीत और नृत्य की शिक्षा प्राप्त की थी।

**बौद्ध एवं जैनयुगीन महिला शिक्षा -**

परवर्तीकाल में नारी शिक्षा पर प्रतिबंध लगने लगा था, यद्यपि बौद्या परम्पराओं से विदित होता है कि स्त्रियाँ सुशिक्षित हुआ करती थी। संघमित्रा लंका जाकर बौद्ध शिक्षा के प्रचार में संलग्न हुई। सुभा, अनोपमा आदि स्त्रियाँ दर्शन में पारंगत थी। 'थेरीगाथा' में लगभग 50 भिक्षुणियों की कविताएँ संकलित हैं, जो उनकी प्रतिभा और ज्ञान को व्यक्त करती हैं। जैन परम्पराओं में उल्लेखित है कि जयन्ती, सहस्त्रानीक आदि महिलाएँ विदुषी थी। उपाध्याय की पत्नी को उपाध्यायानी तथा आचार्य की पत्नी को आचार्यानी कहा जाता था। अध्ययन करने वाली छात्राओं को 'अध्येत्री' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। पतंजलि ने 'औदमेध्या' नामक आचार्य का उल्लेख किया है। उससे पढ़ने वाले छात्र 'औदमेध' कहलाते थे। छात्रा-शालाओं में छात्राएँ शिक्षा ग्रहण करती थी।[36]

**स्मृतिकाल में महिला शिक्षा -**

यद्यपि मनु, याज्ञवल्क्य, यम आदि स्मृतिकारों ने स्त्रियों की शिक्षा पर प्रतिबंध लगा दिया तथा उनके उपनयन में वैदिक मंत्रों का उच्चारण बन्द कर दिया। बाद में उनका उपनयन भी बंद हो गया था। साधारण परिवारों में शिक्षा का प्रचार अवरूद्ध हो चुका था, किन्तु उच्च परिवारों और राजघरानों में शिक्षा-प्रचार पूर्ववत था।

**प्राचीन काल में भारत में सहशिक्षा -**

वैदिक युग में स्त्रियों एवं पुरूषों के लिए सहशिक्षा की व्यवस्था थी, जिसमें वे समान रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। स्त्रियों ने पुरूषों की तरह अनेक ऋचाओं की रचना भी की थी। उपनिषद युग में वे पुरूषों की तरह विद्वगोष्ठियों में बैठकर पुरूषों से शास्त्रार्थ किया करती थी। एक साथ वे शिक्षा ग्रहण करती थी और एक साथ वाद-विवाद में सम्मिलित होती थी। भवभूति ने सहशिक्षा का उल्लेख किया है। कामन्दकी ने भूरिवस और देवराट के साथ विद्या ग्रहण की थी। अत्रेयी ने वाल्मीकि आश्रम में लव और कुश के साथ शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ से शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त वह दण्डारण्य में अगस्त्य मुनि के आश्रम में वेदान्त दर्शन का अध्ययन करने चली गई थी।[37] सहशिक्षा का ऐसा उदाहरण महाभारत में भी मिलता है, जब अम्बा और शेखावत्य एक साथ शिक्षा ग्रहण

करते थे।[38] कालान्तर में जब स्त्री-शिक्षा कम होने लगी तब सहशिक्षा को भी आघात लगा। इसी प्रकार पुराणों में कहोद और सुजाता, रूहु और प्रेमदेवरा की कथाएँ वर्णित हैं। इनसे ज्ञात होता है कि कन्याएँ बालकों के साथ-साथ पाठशालाओं में पढ़ती थी, उनका विवाह युवती हो जाने पर होता था। परिणामतः कभी-कभी गान्धर्व विवाह भी हो जाते थे। ये समस्त प्रमाण इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि उस युग में स्त्रियाँ बिना पर्दे के पुरूषों के बीच रहकर ज्ञान की प्राप्ति कर सकती थी। गुरूकुलों में भी सहशिक्षा का प्रचार था। इस धारणा का समर्थन आश्वलायन गृह सूत्र में वर्णित समावर्तन संस्कार की विधि से भी मिलता है। इस विधि में स्नातक के अनुलेपन क्रिया के वर्णन में बालक एवं बालिका का समावर्तन संस्कार साथ-साथ सम्पन्न होता था। उस युग में स्त्री के ब्रह्मचर्याश्रम, वेदाध्ययन तथा समावर्तन संस्कार का औचित्य आश्वलायन के मतानुसार प्रमाणित हो जाता है।

**प्राचीनकाल में महिलाओं की उच्च शिक्षा -**

प्राचीनकाल में स्त्रियाँ उच्च से उच्च शिक्षा ग्रहण करती थी यद्यपि कुछ सूत्र ग्रंथों और स्मृतियों में स्त्री शिक्षा वर्जित कही गई है[39], और अपना शैक्षिक योगदान देकर अध्यापन कार्य भी करती थी। संस्कृत साहित्य में उपाध्याया एवं उपाध्यायानि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

उपेत्याधीते अस्याः सा उपाध्याया। - पातञ्जल महाभाष्य

उपाध्याय की पत्नी को आदरपूर्वक उपाध्यायानी कहा गया है, किन्तु उपाध्याया उन विदुषी नारियों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो अध्यापन का कार्य करती थी।[40] महिला शिक्षिकाओं का बोध कराने वाले एक अन्य शब्द की रचना करने की आवश्यकता पड़ना तभी संभव रहा होगा जबकि महिला शिक्षिकाएँ पर्याप्त संख्या में रही हों। पर्दा प्रथा नहीं होने के कारण चूंकि पर्दा प्रथा भारत में बारहवीं शताब्दी के बाद आयी, अतः स्त्रियों के लिए अध्यापन कार्य में किसी प्रकार के बंधन की संभावना भी न थी। उपाध्यायाएँ केवल कन्याओं को ही पढ़ाती रही हों अथवा बालक-बालिकाओं दोनों को। पाणिनि ने भी आचार्य एवं आचार्याणी के अन्तर को स्पष्ट किया है। आचार्याणी पद में आचार्य पद से स्त्रीलिंग में ''डीप'' प्रत्यय होकर ''आनुक'' का आगम होकर ''आचार्याणी'' पद निष्पन्न होता है, परन्तु अन्यत्र आचार्य पद से ''डाप'' प्रत्यय होकर ''आचार्या'' पद ही

निष्पन्न होगा। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन समय की शिक्षा पद्धति में अलग भी विद्यालय होते थे[41] तथा छात्रीशालाओं[42] का उल्लेख किया है। रामदास गौड़ ने लिखा है हर्ष के बाद सातवीं-आठवीं शती में भी स्त्रियों के अध्यापन कार्य का पता मिलता है, छात्राशालाओं एवं उपाध्यायाओं के सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्त नहीं होते, किन्तु स्थान की कमी होने के कारण अधिकांश कन्याएँ घर पर ही पढ़ती होंगी तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने का साहस न कर पाती होंगी। यद्यपि इस काल में मैत्रयी, गार्गी, विश्ववारा के समान उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएँ थी, किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि इस युग में स्त्री शिक्षा का पर्याप्त प्रचलन था अथवा स्त्री शिक्षा अपने संगठित रूप में विद्यमान थी। इस युग में स्त्रियों के लिए शिक्षा की कोई संगठित व्यवस्था नहीं थी। संभवतः जब समाज में योग्य उपाध्याएँ प्राप्त हो जाती होगी तब उन्हीं के संरक्षण में कन्याओं को भेजा जाता होगा।

चित्र 3.3: गार्गी

किन्तु शिक्षा एवं उच्च शिक्षा हेतु उपाध्यायें व आचार्य नहीं मिलने पर बाध्य होकर आचार्यों के पास पुत्रियों को अध्ययनार्थ भेजना पड़ता होगा। उस काल में गान्धर्व विवाह का प्रचलन नहीं था अतः सहशिक्षा में कन्याओं के अभिभावकों को कोई आपत्ति भी नहीं रही होगी। किन्तु परवर्ती काल में गान्धर्व विवाह से कन्याओं के नैतिक पतन की आशंका बढ़ने लगी। अतः लोग घर पर ही शिक्षक नियुक्त करके कन्याओं की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करने लगे। उच्च शिक्षा हेतु दूरस्थ आचार्यों के पास जाने वाली कन्याओं की संख्या भी अधिक नहीं रही होगी, क्योंकि जातकों में शिक्षा हेतु तक्षशिला

जाने वाली बालिकाओं का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। ईसा की चौथी शताब्दी तक लड़कों के लिए भी पाठशालाओं की व्यवस्था नहीं थी। हारीत ने व्यवस्था दी है कि कन्याओं की शिक्षा घर पर ही पिता, चाचा अथवा भाई द्वारा होनी चाहिए। इसी प्रकार मनु भी कन्याओं को घर से बाहर भेजन पुरूष शिक्षकों के संरक्षण एवं लड़कों के साथ अध्ययन करने के पक्ष में नहीं है। क्योंकि सह-शिक्षा से कन्याओं का कौमार्यत्व नष्ट होने की आशंका बढ़ जाती है। स्त्री शिक्षा का प्रथम संगठित प्रयास करने का श्रेय बौद्धों को प्राप्त है। बुद्ध ने संघ में नारियों के प्रवेश की अनुमति दे दी थी। बौद्धों ने विहारों में निवास करने वाली भिक्षुणियों के लिए शिक्षा की सन्तोषजनक व्यवस्था भी की थी। ब्रह्मवादियों के समान इनमें से बहुत सी नारियों ने धर्म और दर्शन ज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य का पालन किया। इनमें से कुछ सिंहल देश भी गयी तथा वहाँ बौद्ध धर्म की महान शिक्षिकाओं के रूप में उन्होंने विशेष प्रसिद्धी प्राप्त की। इन विहारों में ये नारियाँ सह-शिक्षा ही ग्रहण करती थी। किन्तु इन बौद्ध संघों में भी ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग नारी शिक्षा का पूर्ण ह्रास हो चुका था। एन.एल.गुप्ता के अनुसार उत्तर वैदिक काल में आश्रम दूर जंगलों में होते थे और स्त्रियों की सुरक्षा के कारण उन्हें जंगलों में स्थित विद्वानों के पास लोग नहीं भेजना चाहते थे। उस समय धीरे-धीरे परिवार के सदस्य जैसे पिता, भाई या अन्य कोई सम्बन्धी ही उनको घर में पढ़ाने लगे, इस प्रकार उनकी शिक्षा के स्तर में तेजी से कमी आई और वे अपने अधिकारों से भी वंचित हो गई।[43]

विभिन्न प्रमाणिक स्त्रोतों से हमें प्राचीन कालीन नारी शिक्षा का उल्लेख प्राप्त होता है। स्त्रियों को लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, वैदिक मंत्रों के साथ-साथ अध्यापिका, उपदेशिका, वीरांगना, धनुर्विद्या में निष्णात, शिल्प विद्या, वस्त्र बुनना आदि की शिक्षा प्राप्त करती थी। वैदिक काल में उपनयन संस्कार के साथ औपचारिक रूप से शिक्षा प्राप्त करती थी। बाद के कालों में शिक्षा अनौपचारिक रूप में परिवर्तित हो गई। महिलाओं के उच्च शिक्षित होने एवं सह शिक्षा प्राप्त करने के कुछ प्रमाण भी प्राप्त होते हैं।

# Chapter-III

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**


1. http://Vedictruth blog - दयानंद सरस्वती, ‘‘वेदों में नारी” **ऋग्वेद** 6/44/18, ऋग्वेद 2/41/16
2. बृहद्वेवता 24.84-86
3. अथर्ववेद 14/2/63
4. अथर्ववेद 14/2/51, अथर्ववेद 14/1/45
5. बृहदेवता, आचार्य शौनक (धर्मदेव विद्यालंकार, **भारतीय समाज शास्त्र**, पृष्ठ 202)
6. डॉ. शिवानी मिश्रा, **वैदिककालीन विदुषियाँ**, पृ. 162
7. **बृहदारण्यकोपनिषद** 3/6/1-4, 7-12
8. डॉ. कृष्ण कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 170
9. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, **प्राचीन भारत में नारी** (600-1200 ई.) 1987, पृष्ठ संख्या 2 पर उल्लेख
10. **वाल्मीकि रामायण**, सुन्दर काण्ड, 14.49
11. डॉ. अल्तेकर, **पोजिशन ऑफ वूमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन**, पृष्ठ-14
12. डॉ. कृष्ण कुमार पूर्वोक्त, पृष्ठ 284
13. आरण्यक 292-10-14
14. **श्रीमद्भगवद्गीता** शांकर भाष्य, पृ. 683
15. **आदि पर्व** 3-89
16. **आरण्यक** 289-20
17. **आदि पर्व** 115-15-17
18. **आदि पर्व** 153-5
19. **विराट पर्व** 2-23
20. डॉ. कृष्ण कुमार, **भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति**, पृष्ठ 169
21. **विराट पर्व** 17-14, 25-4-8,
    वीणेव मधुरालापा गान्धारं साधु मूर्च्छित मनः
    श्रुतिहरो ना दो मनो में मोहयतीव में स्त्री
22. **विराट पर्व** 2-24
23. **विराट पर्व** 22-16
24. **विराट पर्व** 10-11
25. **विराट पर्व** 34-116

26. महाभारत, विराट पर्व पृष्ठ 71-77
27. सभा पर्व, 61-9
28. **शुक्राचार्य के नीतिसार ग्रंथ** के चौथे अध्याय के तीसरे प्रकरण में उल्लेखित।
29. **द्रोण पर्व**, 159-40
30. **शान्ति पर्व**, 210-34
31. **विराट पर्व**, 64-34-35
32. **उद्योग पर्व**, 88-72-75
33. **आरण्यक**, 28-34
34. **उद्योग पर्व**, 127-14-15
35. **द्रोण पर्व**, 55-20 और आगे
36. डॉ. उर्मिला मिश्र ने अपनी पुस्तक **''प्राचीन भारत में नारी"** के पृष्ठ 3 पर यह उल्लेख किया है।
37. सोती विरेन्द्र चन्द्र, **भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति**, पृष्ठ सं. 11
38. डॉ. जयशंकर मिश्र, **'प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'**, पृष्ठ सं.418
39. डॉ. कृष्ण कुमार, **प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति**, पृष्ठ 271
40. डॉ. कृष्ण कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 170
41. डॉ. कृष्ण कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 170-171
42. छात्र्यादयः शालायाम।। **अष्टाध्यायी** 6.2.86।।
43. In the past-vedic period our hermitages were situated in the far flung forest areas, and such for security purpose the practice of sending women out to great scholars and to center, situated in the remote forests began to be looked upon with disfavoured. It was preferred that women should receive training at home from father, brother and members of kin groups, This limited access of women to learning also curlailed their religious rights and privilege. Women education through the eges, Page 20. N.L.Gupta, 2000, Concept Publishing Co.

# अध्याय–चतुर्थ
# मौर्योत्तर काल से पूर्व मध्यकाल तक महिला शिक्षा

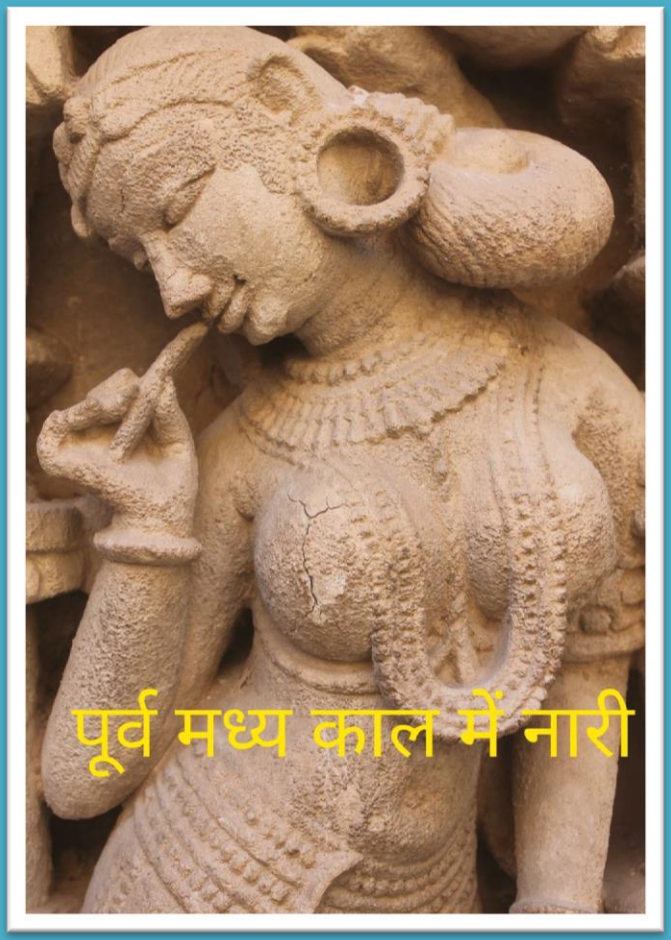

# चतुर्थ अध्याय

## मौर्योत्तर काल से पूर्व मध्यकाल तक महिला शिक्षा

**मौर्योत्तरकाल में महिला शिक्षा -**

इस काल में भारत में विकेन्द्रीकरण के फलस्वरूप शुंगवंश, कण्ववंश, सातवाहन वंश, इक्ष्वाकुवंश, चेदिवंश, वाकाटक वंश तथा बाहरी आक्रमण (बैक्ट्रियन (हिन्द यवन), सीथियन (शक), पर्थियन (पहलन), यू.ची (कुषाण वंश) का अस्तित्व रहा, इन्होंने महिला स्थिति की अपने-अपने तरीके से विवेचना की है। शुंगकाल में महिला शिक्षा की स्थिति सुरक्षित वातावरण की अनिवार्यता महसूस करवाती है। बालिकाएँ, बालकों के समान, समानता के शैक्षिक वातावरण में आदर-सम्मान के साथ शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारी है।

शुंगकाल में महिलाओं के लिए सख्त नियम बना दिये गए। इस काल में महर्षि मनु द्वारा रचित 'मनुस्मृति' अत्यन्त उत्कृष्ट कृति है। वेदों के बाद मनुस्मृति ही स्त्री को सर्वोच्च सम्मान और अधिकार देती है। भारत में होने वाले आक्रमणों ने सामाजिक रूप से स्त्री व्यवस्था पर कुठाराघात किया। सामाजिक रूप से स्त्री का पतन दिखलाई पड़ रहा था। नारी स्वतन्त्रता में कमी आने के कारण उनके शैक्षिक और आर्थिक अधिकारों में गिरावट आयी। वहीं धार्मिक रूप से स्त्री को देवी रूप में पूजा भी जा रहा था।

कुषाण काल में कुषाण वंश के प्राप्त सिक्कों पर देवियों की आकृति एवं कुषाण युगीन मूर्तिकला में नारी की प्रतिष्ठा देखने को मिलती है। सातवाहन काल में प्राप्त सीसे के सिक्कों पर राजा-रानी का सिंहासनारूढ़ दिखाना यह प्रतीक है कि स्त्रियों के राजनैतिक अधिकारों में प्रगति हुई। नागनिका का पूना ताम्रपत्र अभिलेख, माता बलश्री का नासिक अभिलेख से यह प्रकट होता है कि अभिलेख लिखवाने का कार्य स्त्रियाँ भी कर रही थी। इन अभिलेखों से महिलाओं के अभिलेख लिखवाने वाला कार्य महिलाओं की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण को इंगित करता है।

सातवाहन शासक अपने नाम के आगे स्त्रियोचित शब्दों का प्रयोग (संभवत अपनी माता का नाम पहले लाना) जैसे गौतमी पुत्र, शातकर्णी, वसिष्ठी पुत्र पुलुमावी एवं शातकर्णी की विभिन्न मुद्राऐं यह प्रकट करती हैं कि स्त्रियों की स्थिति पहले से अच्छी हो

गई थी, एवं उन्हें उनके राजनीतिक, धार्मिक अधिकार के साथ सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हुए थे।[1]

**स्मृतियों में महिला शिक्षा (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से-पाँचवी शताब्दी तक) -**

स्मृतियाँ प्राचीन भारतीय साहित्य के धार्मिक ग्रंथों में से एक है। उपनिषदों के समान स्मृतियां भी शिक्षा दर्शन से विवेचित है। स्मृति काल में नारी को भी पुरूष के समान शिक्षा प्राप्ति का पूर्ण अधिकार था। स्मृतिकाल विधि-विधानों का काल था। जो मनुष्य के लिए पूर्ण रूप से अनुशासित व नियमित था। आचार्य मनु आदर व मान्यता के क्रम में धन, सम्बन्ध, आयु, कर्म, विद्या इन पाँच को मान्यता देते हैं, जिसमें विद्या सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित है -

"वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी।
ऐतानिमान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरत्।।"

(मनुस्मृति 2/136)

मनु की दृष्टि में मोक्ष की प्राप्ति विद्या तथा तप के द्वारा ही संभव है-

"तपोविद्या च विप्रस्य नः श्रेयस्कर परम्
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययामृतमअश्नुते।।"

(मनुस्मृति 12/104)

शिक्षा का प्रारम्भिक संस्कार, उपनयन संस्कार स्त्रियों के लिए औपचारिक रीति ही बनकर रह गया था। बालिकाओं की विवाह उम्र कम करने के कारण विवाह को ही उनका उपनयन माना जाने लगा। स्त्रियों के पाणिग्रहण संस्कार में ही मंत्रोच्चारण का विधान करते है, अन्य संस्कारों में नहीं-

नास्तिस्त्रीणां क्रियामन्त्रैरिति धर्मेव्यवस्थितिः।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्चस्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः।।

(मनुस्मृति 9/18)

नारी के लिए विवाह की अल्पायु, अध्ययन के प्रति उदासीनता को इंगित करती है याज्ञवल्क्य स्त्रियों के सम्बन्ध में उदार माने जाते है लेकिन इन्होंने स्त्रियों के संस्कार को अमंत्रक ही बताया है। - (याज्ञवल्क्य स्मृति 1/3)

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी स्त्री शिक्षा का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है।[2] याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों के उपनयन का सर्वथा बहिष्कार किया है-

"तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रक"

(याज्ञवल्क्य 1/13)

उपर्युक्त कारणों से स्त्रियों के उपनयन संस्कार बंद हो गए। उपनयन के अभाव में स्त्रियाँ वैदिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकती थी। उनका कार्य क्षेत्र घर पर ही सिमट कर रह गया। वे गुरूकुलों में शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकती थी। मानव शरीर की भाँति समाज में नारी का वही स्थान है, जो शरीर में नाड़ी का। स्त्रियों को गृह विज्ञान के शिक्षार्थ बाहर जाने की आवश्यकता नहीं थी। घर के भीतर ही उन्हें ये शिक्षायें मिल जाया करती थीं। संभवत यही कारण मनु आदि स्मृतिकारों के द्वारा वैदिक शिक्षा के उपनयन पर प्रतिबंध होने की वजह रही होगी। यह प्रतिबंध कुछ दृष्टियों से समाज व उनके हित में ही था, यह किसी द्वेष भावना से नहीं था।

मनुस्मृति में कहा गया है कि बालिका, युवती अथवा वृद्धा को पिता, पति, पुत्र की सुरक्षा में रहते हुए प्रसन्न रहकर कार्य करना चाहिए। जिस समाज या परिवार में स्त्रियों का आदर-सम्मान होता है, वहाँ देवता अर्थात् दिव्य गुण और सुख-समृद्धि निवास करते हैं और जहाँ इनका आदर सम्मान नहीं होता, वहाँ अनादर करने वालों के सभी काम निष्फल हो जाते है।[3]

"पुत्रेण दुहिता समा"

- मनुस्मृति श्लोक 9/130

पुत्र-पुत्री एक समान है। मनु सबसे पहले संविधान निर्माता है। जिन्होंने पुत्र-पुत्री की समानता को घोषित करके उसे वैधानिक रूप दिया है-

- मनुस्मृति 5/149, 9/5-6

मनु नारी की असुरक्षित तथा अमर्यादित स्वतन्त्रता के पक्षधर नहीं हैं और उन बातों का समर्थन करते हैं जो परिणाम में हितकर है। इसलिए उन्होंने स्त्रियों को चेतावनी देते हुए सचेत किया है वे स्वयं को पिता, पति, पुत्र आदि की सुरक्षा से अलग न करें,। क्योंकि अकेले रहने से दोनों परिवारों की निन्दा होने की आशंका रहती है यहाँ इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं हैं कि मनु महिलाओं की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं। इसका अर्थ यह

है कि नारी की सर्व प्रथम आवश्यकता है-सुरक्षा। वह सुरक्षा उसे शासन कानून या परिवार से प्राप्त हो। नारद और पारासर जैसी स्मृतियाँ स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में मौन है, जबकि भृगुस्मृति तथा बद्धहारीति में शुद्रों तथा स्त्रियों के उपनयन व अध्ययन की व्यवस्था है।

बद्धहारिति के अनुसार सदाचारी, सत्यशील आदि गुणों से युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, व स्त्रियाँ, मंत्रों के पाठ की अधिकारी है-

"ब्राह्मणः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रस्तयेः।
तस्याधिकारिणः सर्वे सत्यशील गुणायदि"।।

(बुद्धहारीति 3/6)

भृगस्मृति का कथन हैं कि बालकों एवं कन्याओं का उपनयन संस्कार पाँच वर्ष की अवस्था में कराकर उन्हें वेदाभ्यास करना चाहिए।

(भृग स्मृति 3/40-43, 10/1-15)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बद्धहारीति तथा भृगुस्मृति आदि कुछ अल्प स्मृति ग्रंथों में ही स्त्री शिक्षा की व्यवस्था के प्रमाण है। वैदिक काल की तुलना में स्मृतिकाल में स्त्री शिक्षा का औपचारिक रूप अनौपचारिक रूप में परिवर्तित होता हुआ दिखाई देता है औपचारिक शिक्षा के ह्रास का कारण विदेशी आक्रमण से व्याप्त असुरक्षा जिससे कन्याओं का गुरूकुल जाना बंद हो गया और अल्पायु में विवाह किया जाने लगा।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारों वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया।।

(मनुस्मृति 2/67)

स्त्रियों का वैदिक संस्कार विवाह विधि ही है। स्त्रियों के लिए पति की सेवा ही गुरू का वास और घर का काम धन्धा ही नित्य का हवन होता है। गृहकार्यों को दक्षतापूर्वक, स्वच्छता एवं धन के व्यय का ध्यान रखते हुए करना चाहिये।

"बालया ना युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्रयेण कर्त्तव्यं किंचित्कार्य गृहेष्वापि।।"

(मनुस्मृति 5/147)

"पिता भर्त्रा सुतैर्वापिनेच्छेद्विरहं आत्मनः।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्योदुभे कुले।।"

(मनुस्मृति 5/149)

स्मृति ग्रंथों के अतिरिक्त कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी स्त्री शिक्षा के लिए नकारात्मक भाव है- विधवा, अंगहीन प्रोषितभर्तृका के लिए सूत कतवाने, घरेलू कार्यों में नियुक्त करने के लिए प्रजा को नियुक्त किया है।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र द्वितीय अधिकरण 23/2)

नारियों को साहित्य क्षेत्र में अध्ययन की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। अधिकांश साधारण परिवार की कन्यायें धन के अभाव में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकती थी। शिक्षा के अभाव में उनमें धर्म-अधर्म तथा ज्ञान का अभाव हो गया था। स्मृतिकार नारी शिक्षा के प्रश्न पर मौन है अतः यह कहा जा सकता है कि स्मृतिकाल में महिलाओं की अवैदिक शिक्षा अमंत्रक थी तथा विवाह संस्कार में ही वैदिक मंत्रों का विनियोग किया जाता था। अतः बालक-बालिकाओं की शिक्षा में विभिन्नता थी। यदि बालकों की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें श्रेष्ठ, सच्चरित्र और लौकिक जीवन में सफल बनाना था तो बालिकाओं की शिक्षा का उद्देश्य उन्हें उत्तम गृहिणी और श्रेष्ठ माता बनाना था। स्मृतिकाल में धार्मिक कृत्यों सामाजिक उत्सवों व समारोहों आदि में वे पुरूषों के साथ समान आसन ग्रहण करती थी।[4]

"तस्मादेता सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च।"

- (मनु. 3/59)

कुछ सूत्र ग्रंथों और स्मृतियों में स्त्री-शिक्षा यद्यपि वर्जित कही गई हैं तथापि स्त्रियां उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। 'बृहद्देवता' में स्त्री ऋषियों का उल्लेख है 'यमस्मृति' के अनुसार स्त्रियों को मौञजीबंधन, वेदाध्ययन और वेद-मंत्रों के उच्चारण का अधिकार है। गृहसूत्रों में प्रतिपादित है कि पति के साथ पत्नी भी यज्ञ करती है और वेद-मंत्रों का उच्चारण करती है। हेमाद्रि लिखते हैं कि अविवाहित कन्याओं को धर्म और

नीति का उपदेश करना चाहिये। विदुषी महिलाएँ ही पिता और पति के कुल का कल्याण कर सकती हैं।[5]

**गुप्तकाल में महिला शिक्षा-**

'गुप्तकाल की नारी' प्राचीन भारतीय स्त्रोतों के आधार पर उकेरा गया एक बिम्ब है। इस काल की नारी यथार्थ के ठोस धरातल पर अपने लक्ष्य के प्रति संघर्षरत जीवन को जीने योग्य बनाने में व्यस्त और सभ्यता के क्रमिक विकास से जुड़ी एक सक्रिय भागीदार थी। परिवार की धूरी बनकर स्नेह, ममता, सहयोग और सामंजस्य से उसने परिवार को एकजुट रखा।

इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास लेखन में 'नारी' के योगदान एवं उसकी स्थिति, सामाजिक जीवन में उसकी भूमिका, उसकी आर्थिक भागीदारी, उसके सांस्कृतिक कार्यों और अवदान को उपेक्षित छोड़ दिया। एक सामान्य नारी की अपने परिवेश में सार्थक भूमिका के ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम है कुछ शासिकाओं और विदुषियों का उल्लेख मात्र मिल जाता है।

प्राचीन धर्म शास्त्रों के अनुसार जब कन्याओं का छोटी आयु में विवाह होता था, वे शिक्षा के अभाव में ज्ञान शून्य थी, तब उनकी स्वतन्त्रता के हनन एवं शोषित करने के लिए अनेक अधिनियम पुरूष विधिवेत्ताओं ने बड़ी कुशलता से बनाए थे। शास्त्रों में पति-पत्नी के सम्बन्धों की चर्चा की जाती है, जिसमें विशेषतः पत्नी को ही कर्त्तव्यों के लिए उत्तरदायी माना गया है, नारी की स्थिति द्वितीय श्रेणी नागरिक बना देने के कारण उसको उचित वैधानिक अधिकार नहीं दिये गये थे।

राजनीतिक अस्थिरता, अराजकता एवं विदेशी आक्रमणों द्वारा समय-समय पर महिलाओं की स्थिति पर दुष्प्रभाव पड़ा। आरम्भ से ही उन्हें सामन्तवादी प्रवृत्तियों एवं परम्पराओं में बाँधकर रखा गया, किन्तु धार्मिकता और रीति रिवाजों को महिलाओं ने प्रतिदिन जीवन के संदर्भ में धारण किया। सामान्य महिलाओं ने समस्त विषम परिस्थितियों में भी जीवन को सार्थक स्वरूप प्रदान किया।

गुप्तकालीन इतिहास के स्रोत के रूप में मुद्राओं एवं मूर्तियों का विशेष स्थान है। प्राप्त पुरातत्व स्त्रोतों पर नारी की दर्शनीयता उनकी प्रत्यक्ष स्थिति पर प्रत्यक्ष प्रकाश

डालते है। पुरातत्व विभाग के विवरण, मुद्राशास्त्र की पुस्तकों से यह ज्ञान सुलभ हो गया है। भारतीय मुद्राशास्त्र समिति ने अनेक ग्रंथ लिखवाये हैं जिनमें से कुछ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने प्रकाशित किया है।[6]

नारी प्रतिमाओं से यह स्पष्ट होता हैं कि गुप्तकाल में नारी की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार हुआ था। नारी का जीवनस्तर पहले युग की अपेक्षा श्रेयस्कर था, और इसका योगदान विकास के प्रत्येक क्षेत्र में था। गुप्तकाल के बाद पूर्व मध्यकाल तक नारी की अवनति की अवस्था रही। अतः गुप्तकाल नारी समाज अपनी पूर्ण अस्मिता में मण्डित और गौरवपूर्ण स्थिति में था इस काल की विकसित स्थिति में नारी अपनी महती आवश्यकताओं के प्रति सचेत थी।

लौकिक मूर्तियों में जो दृश्य या प्रसंग है उनसे भी यह प्रदर्शित होता है नारी समाज ने अत्याधिक क्रांति की थी वरन् यह वास्तविकता उजागर होती है कि नारियों की अनेक विशिष्ट भूमिकायें थी। वह अपनी प्रत्येक भूमिका एवं अन्य क्षेत्रों में सराहनीय ऊँचाई पर थी। गुप्तकाल के अभिलेखों से ज्ञात होता हैं कि समृद्ध वर्ग हिन्दू एवं जैन नारियों ने मन्दिर, धर्मशाला और अनाथालय बनवाने में अपना योगदान दिया। कुमार देवी का नाम सिक्कों पर उत्कीर्ण किया गया, जिससे स्पष्ट हैं कि वह बराबर की स्वामिनी थी। प्रभावती वाकाटक नरेश के साथ एवं उनकी मृत्यु के बाद राज्यकार्य स्वयं देखती थी। उसके अभिलेख सिद्ध करते हैं कि वह एक कुशल प्रशासिका थी। सामान्य नारियों का जीवन भी संतोष जनक एवं इनसे प्रेरित रहा होगा।[7]

विद्योत्तमा, जो कालिदास की पत्नी थी, जो स्वयं विदुषी थी और कालिदास को ज्ञानार्जन में लगाने की प्रेरणा बनी थी। गुप्तकाल के साहित्य, कला और विज्ञान के विकास में देश की महिलाओं ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्रमिक नारी की भागीदारी उद्योगों एवं खेतिहर श्रमिकों के रूप में थी, मध्यम वर्ग की नारी का उद्भव नहीं था राजा, सामन्तगण, सेनापति तथा पुरोहित, सगे सम्बन्धी या उस प्रजाति के लोग उच्च वर्ग के थे। ऐसे वर्गों की स्त्रियां धार्मिक रूप से जागृत, शिक्षित एवं साहित्य कला के प्रति रूचिवान थी।

विद्यारम्भ संस्कार को अक्षरारम्भ, अक्षरलेखन, अक्षर स्वीकरण कहा जाता था। इस संस्कार को लिपि से जोड़ा गया था। इस संस्कार को चोल संस्कार के साथ किया

जाता था।[8] यह बालिका के पाँचवे वर्ष में किया जाता था और इसमें देवताओं और सरस्वती पूजन का विधान था। इससे जुड़ा उपनयन संस्कार था जो पहले कन्याओं के लिए वर्जित नहीं था। उपनयन का अर्थ है आचार्य अथवा गुरू के समीप जाना। यह विद्या चाहने वाले द्वारा वेद के नियम के अनुसार किया जाने वाला संस्कार था। विद्यार्जन की कामना करने वाले को (श्रुति) गायत्री मंत्र में दीक्षित किया जाता था[9] , इसे यज्ञोपवती भी कहते थे। बिना उपनयन के कोई भी द्विज नहीं बनता था। धीरे-धीरे यह संस्कार केवल धर्मविधि संस्कार रह गया और शिक्षा का स्थान गौण हो गया।[10] सूत्रकाल के उपरान्त कन्याओं के लिए उपनयन संस्कार समाप्त कर दिया गया। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में स्त्रियों को शूद्रकोटि में रखकर विद्यार्जन के अयोग्य रखा गया।[11] किन्तु आश्वलायन गृहायसूत्र में समावर्तन के संदर्भ में कन्याओं का उल्लेख है सूत्रकारों को ऐसी कन्याओं की जानकारी थी जो वेदाध्ययन करती थी और अध्ययन की समाप्ति पर जिनका समावर्तन संस्कार होता था। कन्याओं की कमर में मंजू की मेखला बांधी जाती थीं और वे गायत्री मंत्र का उच्चारण करती थी तथा वेदों के अध्ययन में प्रवृत्त होती थी। वह भी बालकों की भाँति किन्तु घर के अन्दर ही भीख माँगती थी, किन्तु न तो वह वतकल धारण करती थी न जटा या जूड़ा बनाती थी, मनु और विष्णु ने उनके लिए यह संस्कार वर्जित कर दिया।[12] इसके समाप्त होने से स्त्रियों की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचा एवं उनका महत्व कम समझा जाने लगा। सामान्य रूप से उच्च वर्ग में शिक्षा संस्कार चलता रहा, उसे धार्मिक मान्यता नहीं दी गई। विवाह का संस्कार ही कन्या के लिए उपनयन संस्कार मान लिया गया था, किन्तु स्त्रियां बिना उपनयन के ही शिक्षा ग्रहण करती थी। वे शिक्षिकाएँ भी होती थी। पतंजलि के महाभाष्य में भी अनेक स्थलों पर कन्याओं के विद्यार्जन करने का उल्लेख है। पतंजलि के अनुसार आदिशील के व्याकरण का अध्ययन करने वाली को आदिशला और काशकृतस्न की मीमांसा का अध्ययन करने वाली को काशकृत्सना कहते थे।[13] उपाध्यायी का अर्थ वह स्त्री थी जो शिक्षा देने का कार्य करती थी।[14] स्पष्टतः कन्याएँ उपनयन संस्कार के बिना ही शिक्षा प्राप्त करती थी। कन्याओं को संगीत, नृत्य, बुनाई की शिक्षा आवश्यक रूप से दी जाती थी। वह नादी, तृणव, पणय, मृद्गम एवं अन्य वाद्य बजाती थी।[15] मनु ने भी स्त्रियों के लिए भोजन बनाने, सिलाई आदि की शिक्षा का अनुमोदन किया था। स्वाभाविक रूप से माता-पिता के घर में कुछ तो कन्या सीखती ही थी और समय का सदुपयोग भी करती थी। कामसूत्र में जिन चौंसठ कलाओं का उल्लेख

है उसमें ललित कलाएँ, उपयोगी कलाएँ, औपनिषदिक ज्ञान, बुद्धिचातुर्य और क्रीड़ाकौतुक ओर मनोरंजन सम्मिलित थे।

गुप्त शासक स्वयं भी महिलाओं का सम्मान करते थे। कुमारदेवी को सिक्कों पर उत्कीर्ण देखकर समस्त राज्य के निवासी नारी समानता के सिद्धान्त का ज्ञान और अनुपालन करते थे। नारी स्वयं भी हीनता-बोध से मुक्त थी। गुप्तकालीन नारी स्वयं भी जागरूक थी एवं कर्म के प्रति उन्मुख थी। उसका श्रृंगार मात्र पुरूष के लिए नहीं उसकी अपनी सुरूचि के लिए था, उसकी सज्जा उसे शिथिल नहीं वरन् क्रियाशील बनाती थी, क्योंकि वह विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत थी। राजपरिवार की स्त्रियां तो अश्वचालन एवं शस्त्र विद्या भी जानती थी।

साहित्य एवं कला के प्रति नारी समाज जागरूक था। कला कौशल में उनकी समता करना कठिन था। कालिदास के संस्कृत नाटकों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता हैं कि नारियां समाज एवं परिवार में समाहर्ता थीं उनकी जीवन शैली परिष्कृत और दिनचर्या व्यवस्थित थी। सौन्दर्य के प्रति उनका प्रेम अपरिमित था। सामाजिक उत्थान में उनकी समान भागीदारी थी।

इन कलाओं की आवश्यकता विशेषतः उच्चवर्ग की कन्याओं के लिए आवश्यक समझी जाती थी, क्योंकि राजमहल में उनका वर्चस्व इन कलाओं पर निर्भर था। आवश्यकता पड़ने पर इन कलाओं के कारण कन्याएं स्वतन्त्र जीवन भी यापन करती थी। गायन, वादन और संगीत के साथ वे चित्रकला भी सीखती थी, साथ ही प्रसाधन और गृहसज्जा तथा अल्पना चौक डालना भी सीखाया जाता था। स्वादिष्ट व्यंजन बनाने की कला के साथ सिलाई, कढ़ाई, बुनाई जिसमें वस्त्रों के अतिरिक्त चटाई, टोकरी आदि बुनना भी था, कन्याओं को पारंगत बनाया जाता था। वशीकरण जादू एवं मंत्र-तंत्र भी वह सीखती थी। वाक्पटुता शास्त्र ज्ञान भी उनके लिए आवश्यक मान जाता था, अन्ताक्षरी, पहेली, समस्या का समाधान, भाषा, ज्ञान काव्य शास्त्र, पशु-पक्षी की बोली और पालन के साथ शतरंज, चौपड़, व्यायाम के साथ बुद्धि कौशल व बातचीत की सुसंस्कृत कला का भी ज्ञान कराया जाता था। इतनी शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य निश्चित रूप से स्त्रियों के जीवन को शोषणमुक्त और संतोषप्रद बनाना रहा होगा।[16]

गुप्तकालीन समाज ने नारी भी शरीर के भौतिक स्तर से ऊपर उठे, इसका अवसर गुप्तकालन समाज ने दिया, जिस समय चक्रवर्ती सम्राटों के शासनकाल में गुप्त समाज में सुरक्षा और समृद्धि का वातावरण था।

**गुप्तकाल एवं पूर्व मध्यकाल के मध्य नारी -**

गुप्तों के पश्चात् हर्ष के काल में भानुगुप्त के एरण अभिलेख में सती प्रथा की विभत्सता का पता चलता है। क्षत्रियों की स्त्रियों का जीवन, पुरूषों की अधीनता में चला गया था, स्त्रियों के विधवा होने पर स्त्रियों को सती होने के लिए बाध्य किया जाता था, इस कुप्रथा को स्त्रियों ने अपना जीवन मान लिया। शासक हर्षवर्धन की छोटी बहिन राज्य श्री, अपने पति ग्रहवर्मा की हत्या होने पर स्वयं कारागार से मुक्त होकर सती होने के लिए वन को चली गई थी। यह स्थिति राजपूत काल आते-आते भयंकर रूप में परिवर्तित हो गई। स्त्रियों के हृदय में इस प्रथा के लिए सम्मान का भाव उत्पन्न हो गया, जिसको वो अपने व्यक्तित्व को खो कर अपनाने लगी। इस युग में स्त्रियाँ निरन्तर अपने व्यक्तित्व का ह्रास कर रही थी।

मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के पश्चात् महिलाओं की स्थिति में गिरावट आती रही। स्त्रियों को उपभोग की वस्तु समझा जाने लगा। इस युग में वीरांगनाओं के युद्ध में भाग लेने के उदाहरण प्राप्त होते है। जैसे शवर का युद्ध मुहम्मद बिन कासिम से किसी शासिका (संभवत दाहिर की पत्नी रानीबाई) ने लड़ा था। ऐसे कुछ उदाहरण प्राचीन काल के इतिहास में मिलते हैं जो यह प्रदर्शित करते हैं कि सामान्य महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। प्रथाओं और सुरक्षा के अभाव में शिक्षा प्राप्ति की कल्पना करना निरर्थक सा प्रतीत होता है।

**पूर्व मध्यकाल में महिला शिक्षा**

पूर्व मध्यकाल के साहित्य से हमें पता लगता है कि पुत्री की स्थिति, परिवार में पुत्र के तुलना में गिर गयी थी। 'कथा सरित्सागर में लिखा हैं कि पुत्र सुख का प्रतीक है और पुत्री दुख का मूल है।'[17]

इस काल में बालिकाओं की उच्च शिक्षा धनी परिवारों तक सीमित थी। उन्हें संगीत, चित्रकला, नृत्य एवं साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। मंडन मिश्र की पत्नी भारती

अपने पांडित्य के लिए प्रसिद्ध थी संस्कृत सुभाषितावलियों से हमें ज्ञात होता है कि इस काव्य की कुछ स्त्रियाँ अपनी मनोहर काव्य शैली के लिए प्रसिद्ध थी जैसे कि शील भट्टारिका और गुजरात की देवी नाम की कवयित्री। राजशेखर ने विजयांका की तुलना सरस्वती से की है। राजशेखर वह पहले कवि आलोचक थे जिन्होंने कहा था कि स्त्री भी कवि हो सकती है, न केवल हो सकती है, बल्कि 'काव्यमीमांसा में राजशेखर ने जिन समकालीन स्त्री कवियों का जिक्र किया है' उनमें कर्णाट देश की विजयांका, लाटदेश की प्रभुदेवी, विकटनितंबा, शांकरी, पांचाली, शीला भट्टारिका और सुभद्रा है। काव्यमिमांसा में प्रसिद्ध कवि की मुग्ध कर देनी वाली कारीगरी है जहाँ साहित्य के सारे रस एक ही सरोवर में एकाकार है स्त्री कवियों का जिक्रभर ही नहीं बल्कि उनकी कला के बारे में भी पता चलता है। विजयांका को उन्होंने वैदर्भी रीति की रचना में कालिदास के बाद उत्तम बताया है। लाटदेश की प्रभुदेवी के बारे में राजशेखर लिखते हैं कि उन्होनें सुक्तियों, कामकेलि तथा कलाओं का काव्य में सन्निवेश कर अपने को अमर कर दिया। भारत वर्ष के सभी भू-भागों की स्त्री कवियों का वर्णन काव्य मिमांसा में उपलब्ध है। राजशेखर ने विकटनितंबा की रंजित वाणी की प्रशंसा की है।

शीलभट्टारिका के लिए कहा है कि वे पांचाली रीति से कविता करने वाली उत्तम कवि भी थी। सुभद्रा की रचना विवेकपूर्ण होती थी।[18] इस काल के स्मृतिकार साधारणतया यौनवनारम्भ से पूर्व विवाह करने के पक्ष में थे।

कम उम्र में विवाह होने के कारण उनकी शिक्षा में शिथिलता आ गई थी। इस काल के कोशों में कहीं भी अध्यापिकाओं का उल्लेख नहीं है। मेघातिथि लिखता है कि उसके समय में स्त्रियाँ संस्कृत नहीं जानती थी।[19] किन्तु राजशेखर से ज्ञात होता है कि अनेक राजकुमारियाँ, अभिजात-कुलों की कन्याएँ और वैश्याएँ इस काल में भी संस्कृत, काव्य और शास्त्रों में निपुण होती थी।[20] कल्हण ने अपने ग्रंथ 'सुक्ति-मुक्तावली' में राजशेखर के कुछ श्लोक उद्धृत किए हैं, जिनमें उसने शीलभट्टारिका, विकटनितंबा, विजयांका, प्रभुदेवी और सुभद्रा नाम की पाँच कवियत्रियों की प्रशंसा लिखी। राजशेखर की पत्नी अवंति सुंदरी स्वयं संस्कृत साहित्य में पारंगत थी। राजशेखर के नाटकों से हमें ज्ञात होता है कि राजसभा की स्त्रियाँ और रानियों की सेविकाएँ संस्कृत और प्राकृत में मनोहर श्लोकों की रचना कर सकती थी। उपमिति भव-प्रपंच-कथा में दी हुई कथाओं से

स्पष्ट है कि अनेक राजकुमारियाँ चित्रकला, संगीत और कविता करने में निपुण होती थी।[21]

इस काल में कन्याओं को साहित्य के अतिरिक्त संगीत, नृत्य और चित्रकला की शिक्षा दी जाती थी। मण्डन मिश्र की पत्नी भारती अपने पांडित्य के लिए प्रसिद्ध थी। संस्कृत सुभाषितावलियों से ज्ञात होता है कि इस काल की महिलाएँ अपनी मनोहर काव्य शैली के लिए प्रसिद्ध थी।

**राजपूत काल में महिला शिक्षा -**

सातवीं शताब्दी से पूर्व मध्यकाल के युग को राजपूत युग में सम्मिलित किया गया है। राजपूत काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में गिरावट आ गयी थी लेकिन उन्हें समाज में सम्मान और आदर प्राप्त था। राजपूत काल में बाहरी आक्रमणकारियों के अत्याचारों से सुरक्षा हेतु उन्हें घर से बाहर निकलने पर पाबंदी हो गई, इससे उनकी स्वतंत्रता का हनन हुआ। सबसे अधिक सामान्य महिलाओं की शिक्षा प्रभावित हुई।[22] बचपन में ही उनका विवाह किया जाने लगा। स्त्रियों की पुरूषों पर आश्रितता बढ़ गई थी। राजपूत मलिाओं ने आक्रमणकारियों के सामने आत्मसमर्पण के बजाए 'जौहर प्रथा' को अपनाया। महिलाएँ घर से बाहर पालकियों में जाती थी। उच्च वर्ग की कन्याओं को चित्रकला, संगीत, नृत्य के अलावा प्रशासनिक एवं सैनिक शिक्षा भी दी जाती थी। अलबेरूनी के विवरण से पता चलता है कि महिलाएँ शिक्षित होती थी। बालिकाएँ संस्कृत लिखना, पढ़ना तथा समझना जानती थी।[23] इस काल में महिलाओं का राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है।

उपर्युक्त काल में महिला शिक्षा स्थिति सुरक्षित वातावरण की अनिवार्यता महसूस करवाती है। बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा के दृष्टिकोण से उसके शैक्षिक एवं आर्थिक अधिकारों में गिरावट आयी।

# Chapter IV

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**


1. बी.एन.लूनिया (1966). **प्राचीन भारतीय संस्कृति** आगरा: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल.
2. डॉ. कमलेश भारद्वाज (1999). **प्राचीन भारत में समाज एवं राज्य**. अध्याय 6 पृष्ठ 83
3. **मनुस्मृति श्लोक** 3/56
4. अनन्ता जर्नल **"स्मृतिकाल में शिक्षा** डॉ. रीता सिंह, ओमकार मिश्र
5. डॉ. कृष्ण कुमार, **प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति**, द्वितीय संस्करण 2008.
6. डॉ. ए.एस.अल्तेकर **"गुप्तकालीन मुद्राएँ** प्रथम संस्करण 1954, बिहार- राष्ट्रभाषा परिषद, पृष्ठ 15-22
7. डॉ. श्री भगवान सिंह, **"गुप्तकालीन देव प्रतिमाएँ'** 1982, दिल्ली, पृष्ठ 22
8. कालिदास: रघुवंशम् (3, 28)
9. डॉ. पी.वी.काणे, **धर्म शास्त्र का इतिहास**, भाग 2, पृ. 266
10. डॉ. रामबली पाण्डेय- **'हिन्दू संस्कार'** 1949, वाराणसी, पृ. 162
11. **आपस्तम्ब धर्म सूत्र**, (2, 11, 29, 11-12)
12. **विष्णु स्मृति**, 22-32 तथा मनुस्मृति 2-66
13. **पतंजति, महाभाष्य** - (4-11-4)- (4-1-14)
14. **पतंजलि, महाभाष्य** - (3-3-21)
15. **काठक, महासूत्र** - (17-2)
16. डॉ. बी.एन.लुनिया (1966), **प्राचीन भारतीय संस्कृति**, पृ. 329
17. **कथा सरित्सागर**, 28, 6
18. **काव्य मिमांसा**, 10 पृ. 53
19. **मेघातिथि टीका** मनु. 2, 49
20. **काव्य मिमांसा**, 10, प्र. 53
21. **उपमिति**., पृ. 345, 453-59, 875-93
22. बी.एन.लूनिया, पूर्वोक्त, पृ.सं. 301
23. अलबेरूनी, **किताब उलहिन्द,** अनु. समाज, अलबेरूनीज इण्डिया, भाग-प्, पृ. 155

# अध्याय–पंचम
# प्राचीनकाल की प्रमुख विदुषी महिलाएँ

# पंचम अध्याय

# प्राचीनकाल की प्रमुख विदुषी महिलाएँ

**वैदिककालीन विदुषी महिलाएँ-**

वैदिककाल में स्त्रियाँ भी ऋषियों की भाँति वेद-मंत्रों की दृष्टा थीं। अतः उनके द्वारा साक्षात्कार की गई ऋचाओं को वैदिक साहित्य में समाहित करने के आधार पर स्त्रियों को ऋषिका की उपाधि से महिमा मंडित कर ऋषियों के समतुल्य माना गया है। आचार्य शौनक द्वारा बृहद्वेवता में 26 ऋषिकाओं[1] का वर्णन इस सम्बन्ध में किया गया है।

घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपालोपनिषन्निषत्।

ब्रह्मजाया, जुहूर्नाम, अगस्त्यस्य स्वाऽदितिः।।

इन्द्राणी वेन्द्रमाता  च, सरमा रोमशोर्वशी।

लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती।।

श्री र्लक्ष्मीः सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।

रात्री सूर्या च सावित्री, ब्रह्मवादिन्य ईरिताः।।

- बृहद्वेवता 24.84-86

बृहद्वेवता में वर्णित उपर्युक्त ऋषिकाओं[2]  का ऋचाओं को प्रस्तुत करने सम्बन्धी अवदान महत्वपूर्ण है।

वेद मंत्रों की प्रमुख द्रष्टा ऋषिकाओं के प्रमाण निम्नवत विवरण द्रष्टव्य हैः-

| क्र.सं. | नाम | ऋग्वेद मण्डल | सूक्त | मंत्र | विवरण[3] | अन्य विवरण |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | लोपामुद्रा | 1 | 179 | 1.6 | अगस्त्य ऋषि की पत्नी | अगस्त्य, वासिक के भाई थे |
| 2. | श्रद्धा | 10 | 151 | 1.5 | | |
| 3. | गोधा | 10 | 134 | 7 | | |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 4. | अपाला | 8 | 91 | 1.7 | राजा असंग की पत्नी | अत्रि की पुत्री |
| 5. | घोषा | 10 | 39,40 | 1.7 | ऋषि कक्षीवान की पुत्री | |
| 6. | विश्ववारा | 5 | 28 | 1.6 | महर्षि अत्रि के परिवार की ब्रह्मवादिनी | |

इन ऋषिकाओं के अत्तिरिक्त अन्य ऋषिकाओं के नाम भी आदरपूर्वक प्रयुक्त किए जाते हैं। श्रद्धेय वैदिक ऋषियों की श्रेणी में पारंगत इन ऋषिकाओं के नामों को भी परिगणित किया जाना वैदिक-युगीन स्त्रियों के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्व का विषय है। अनेक ऋषिकाओं के नाम वेदों के सूक्तों के ऊपर भी अंकित है। ये श्रद्धेय भारतीय स्त्रियाँ इस राष्ट्र की विशिष्ट विभूति हैं।

वैदिककाल की स्त्री को वेदों में पराशक्ति के रूप में वर्णित किया है। इस काल की स्त्रियों की स्थिति उनकी असाधारण विद्धता एवं भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी अप्रतिम योगदान के आधार पर अत्युच्च एवं अत्यधिक गौरवपूर्ण आँकी गई है। इसी कारण ऋग्वेद की दिव्यवाणी ने तो उन्हें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म की संज्ञा से अलंकृत कर दिया है- स्त्री हि ब्रह्म बभूविथ।

वेदों में स्त्री को 11 अनुकरणीय आदर्श-रूपी गुणों से अलंकृत किया गया है-

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वती महि विश्रुति।
एता ते अध्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्।।

-यजुर्वेद 8.43

(अध्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्म से विनाश को प्राप्त न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुण युक्त (हत्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशांसित विज्ञान वाली पत्नी (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं, तू (देवेभ्यः)

उत्तम गुणों के लिए (मा) मुझ को (सुकृतम) उत्तम उपदेश (ब्रतात) किया कर।

- यजुर्वेद-अध्याय 8 मंत्र 43

ऋग्वेद में नवविवाहित स्त्री को घर की सम्राज्ञी की प्रतिष्ठापूर्ण स्थिति प्रदान की गई है-

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।।

- ऋग्वेद 10.85.46

इस मंत्र से स्पष्ट हैं कि स्त्री को सम्राज्ञी की संज्ञा से अभिषिक्त किया है ये प्रमाण प्रकट करते हैं कि वैदिक युग में विभिन्न विषयों में भारतीय स्त्रियों का स्थान पुरूषों के समान स्तर का था। वास्तव में वैदिक संस्कृति का स्त्री के सम्बन्ध में दृष्टिकोण विचारोत्तेजक, उच्चस्तरीय तथा सर्वोपरि सम्माजनक है।

नववधु को सम्बोधित करके कहा गया है कि तुम अपने श्वसुर, सास, ननद, देवर की सम्राज्ञी हो। वैदिक युग में यह मंत्र परिवार में उनकी महत्ता को स्पष्टतः दर्शाता है।

सभ्यता के आदिम काल-वैदिक युग में भारतीय सभ्यता अपने विकास की दृष्टि से चरम पर थी। उस समय पुत्र-पुत्री दोनों का उपनयन कर गुरूकुल भेजा जाता था। कन्याएँ वेदाध्ययन, यज्ञकार्य के साथ ही कपड़े बुनना, रथ चलाना, युद्ध विद्या, शस्त्र चलाना आदि में भी प्रवीण होती थी, अपनी शिक्षा समाप्ति के साथ वह गृहस्थ आश्रम या ब्रह्मज्ञान प्राप्ति में प्रवेश का निर्णय लेती थी। वेदों में जैसे पुरूष ऋषियों की बुद्धि को प्रकाशित किया वैसे ही महिला ऋषिकाओं की प्रज्ञा को भी आलोकित किया है। जिसका परिणाम है कि अकेले ऋग्वेद में 26 ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट अथवा रचित वेद मंत्र प्राप्त होते हैं।

वेदों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, जिनकी संख्या चार है, जो विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ है। प्रत्येक वेद में मंत्रों के ऋषि, देवता तथा छंद का निर्देश मिलता है-

- मंत्रों के द्रष्टा अथवा स्तुति कर्ता- ऋषि[4]
- मंत्रों के समूह को सूक्त, स्तोतव्य देव को देवता[5]
- अजरों के विविध परिणामों को छन्दरस कहा जाता है।[6]

निरूक्ति के आधार पर ऋषि और कवि में भेद नही प्रतीत होता है-

- ऋषि = ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः।[7]
- कवि = कविः क्रान्तदर्शनों भवति।[8]

निरूक्तियों के आधार पर ऋषि तथा कवि दोनों में मूलतः एक सामान्य गुण "दर्शन" की अपेक्षा ध्वनित होती है। ये ऋषि या कवि की दर्शन शक्ति जितने नवीन विचारों का दर्शन करने वाली थी, वह उतना ही महान् कवि माना गया। वेद स्वयं भी इन ऋषियों को कवि की संज्ञा देता है[9] परवर्ती ब्राह्मण ग्रंथकारों ने भी जिसका समर्थन किया है।[10] इन प्रमाणों के आधार पर ऋषि तथा कवि दोनों को मूलतः समानकर्मा कहा जा सकता है।

वैदिक काल के पश्चात् ऋषि शब्द का सामान्य अर्थ सांसारिकता से अलग हटकर संन्यास लेकर वन में निवास करने वाले व्यक्ति से लिया जाता है जबकि वैदिक-कालीन ऋषिगण सामाजिक परिवेश में रहते हुए गृहस्थ के रूप में जीवन व्यतीत करते थे। अपने यज्ञादि से देवताओं को प्रसन्न कर उनसे विविध कामनाओं की पूर्ति की प्रार्थना करते थे।[11]

शौनक के अनुसार ऋषिकाओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है

| देवताओं की स्तुति करने वाली ऋषिकाएँ | देवताओं से वार्तालाप करने वाली ऋषिकाएँ | आत्मा की भावना का गायन करने वाली ऋषिकाएँ |
|---|---|---|
| घोषा, गोधा, विश्वारा, अपाला, जुहू, इन्द्राणी, अगस्त्यस्वसा, अदिति | इन्द्र, माताएँ, सरमा,रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नदियाँ, यमी, शाश्वती, इन्द्राणी | लाक्षा श्री, सार्पराज्ञी, वाक, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्रि, सूर्यासावित्री |

नवकः प्रथम स्त्वासां वर्गस्तुष्टाव देवताः।
ऋषि भिर्देवताभिश्च समूदे मध्य मोगणः।
आत्मनो भाववृत्तानि जगौ वर्गस्तथोत्तमः।
उत्तमस्य तु वर्गस्य यर्ऋषिः सैव देवता।।[12]

- बृहदेवता, 85-86

**घोषाः-**

वैदिककाल में पुरूष व नारी, दोनों आजीवन अविवाहित रह सकते थे किन्तु अविवाहित रहने का मुख्य कारण शारीरिक विकलांगता या रोग था। घोषा ने तब तक विवाह नहीं किया जब तक उसका चर्म रोग ठीक नहीं हो गया। ऋषिका घोषा कक्षीवान् ऋषि की पुत्री थी,[13] तथा उनके पितामह ऋषि दीर्घतमा थे। घोषा को कोढ़ रोग हो गया था, लेकिन चर्म रोग के लिए इन्होंने वेद और आयुर्वेद का गहन अध्ययन किया और ये कोढ़ी होते हुए भी विदुषी और ब्रह्मवादिनी बन गई। घोषा ने त्वचा रोग से निजात पाने के लिए अश्विनी कुमारों की स्तुति की। अश्विनी कुमारों ने घोषा की स्तुति से प्रसन्न होकर उसे त्वचा रोग से मुक्त कर दिया।[14] कान्तिमयी त्वचा के साथ वह अपने काल की विश्व सुन्दरी भी बनी। वेद में घोषा के पति अर्जुन का नामोल्लेख हुआ है।[15]

घोषा अश्विनी कुमारों का स्तवन करते हुए कहती है कि इनका आगमन सुखदायी होता है। अश्विनी-कुमार श्रेष्ठ कर्मों के कर्त्ता है[16], उन्होंने पिता के घर में वृद्ध होती घोषा को पति प्रदान किया,[17] च्यवन ऋषि को पुनः युवा किया, तुग्र के पुत्र की जल में डूबने से रक्षा की,[18] कुशल चिकित्सक[19] तथा क्लेशों को दूर करने वाले[20] विश्पला की युद्ध में कटी टाँग के स्थान पर लोहे की टाँग लगाई।[21] मरणासन्न रेभ को गुफा से निकाल कर उसकी रक्षा की। सप्त बन्धनों में बाँधकर तप्त अग्निकुण्ड में डाले गये अत्रि के लिए अग्नि कुण्ड को शीतल किया,[22] शयु नामक वृद्धा गौ को पुनः पयस्विनी बना दिया, तेंदुए के मुख से वर्तिका पक्षी को निकाल कर उसकी रक्षा की। समस्त कल्याणों के दाता,[23] अन्नप्रदाता, अश्विनी- कुमारों की घोषा उपासना करती है।[24] मेघों को विदीर्ण करने वाले अश्विनी युगल के कारण ही घोषा सौभाग्यशालिनी हुई। अपनी पत्नी से प्रेम करने वाले तथा उसकी विद्या आदि का यथोचित आदर करने वाले जन की स्त्री ही सुख प्राप्त करती है।[25] अतः जो व्यक्ति प्रेम करने वाला हो उसे ही स्त्री पति के रूप में प्राप्त करें तथा पति प्रिया बने।[26] अश्विनी के वर्णन के सन्दर्भ में ऋषिका द्वारा दी गई उपमाएँ विषय की स्पष्टता के साथ पिता-पुत्र, पति-पत्नी, स्त्री, देवर आदि पारिवारिक सम्बंधों तथा अन्य सामाजिक विषयों पर भी प्रकाश डालती है। इस प्रकार घोषा के मंत्र काव्य की दृष्टि से वेद की अमरनिधि हैं। लौकिक संस्कृत साहित्य में यदि महाकवि कालिदास को "उपमा कालिदासस्य" की उक्ति से प्रशंसित किया जाता है, तो निश्चय ही उपमा वेदे घोषायां" के

कथन से ऋषिका घोषा को भी सम्मानित किया जा सकता है। इनके सूक्तों से पांचाली रीति का दर्शन होता है।

1. चोदयतं सूनताः पिन्वतं धिय उत्पुरंधीरी रयतं तदुश्मसि।
2. युवं च्यवानं सनयं तथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्ष थुः।
3. रथं यान्तं कुह कोह वां नरा प्रति घुमन्तं सुविताया भूषति।
4. युवं ह कृशं युतमश्विना शयुं युव विधन्तं विधवा मरूष्यथः।

प्रस्तुत सूक्त में अश्विनी-युगल के द्वारा विश्पला को लोहे की टांग लगाने का वर्णन है, जो वैदिक काल की शल्य चिकित्सा विज्ञान के अत्यन्त विकसित रूप को बताती है। इन मंत्रों से उस समय के चिकित्सकों द्वारा वृद्धों को युवा बनाने, गर्भवती स्त्रियों को आरामदायक प्रसव कराने और वृद्ध गायों को पुनः गर्भवती बनाने का उल्लेख किया गया है। अतः घोषा द्वारा दृष्ट ये सूक्त वैदिक काल में आध्यात्मिक ज्ञान के अतिरिक्त आयुर्विज्ञान आदि के क्षेत्र में समुत्कर्ष का संकेत करते हैं।

**विश्ववारा-**

ऋग्वेदिक ऋषिकाओं में विश्ववारा ने अग्निदेव की स्तुति की है। ऋषि अत्रि की पुत्री होने के कारण इन्हें आत्रेयी विश्ववारा कहा जाता है।[27] विश्ववारा अग्निदेव के दीप्तस्वरूप तथा प्रातःकालीन उषा के वर्णन के साथ स्तुति आरम्भ करती है।[28] अग्निदेवता, यजमानों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं।[29] दाम्पत्य का सम्बन्ध दृढ़ करते हैं।[30] अग्निदेव अपने प्रकाश से प्रकाशित यज्ञों को अपने तेज से भास्वर बनाते हैं।[31] विश्ववारा अग्नि से विविध देवताओं के लिए हविपदार्थों को ले जाने हेतु बनाने का आग्रह करती है, तथा समस्त ऋत्विजों को उस होता अग्नि की सेवा करने का आदेश देती है।[32]

यज्ञ में हवि पदार्थ को अग्नि से प्रज्ज्वलित किया जाता है। पुरोऽशादि सामग्री तथा घृत-संयुक्त हवि देवों को प्रदान किए जाने के कारण, ऋषिका उषा को घृताची विशेषण से अभिहित करती है। ऋषिका ने अग्निदेव के लिए 'वृषभ'[33] शब्द का प्रयोग किया है। ऋत्विज अपनी कामनाओं की पूर्ति के निर्मित्त अपने इष्ट देव के लिए हवि प्रदान करता है तथा वे देव प्रसन्न होकर उसकी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। परन्तु अग्नि

हवि पदार्थ देवों तक पहुँचाता है अतः मध्यस्थता का कार्य करने के कारण अग्नि को ही कामनाओं को पूर्ण करने वाला कहा गया है। सायण भी इसका अर्थ कामनाओं को पूर्ण करने वाला कहते हैं।[34] संजास्पत्यम सुयममा[35] अर्थात अग्नि दाम्पत्य को दृढ़ यज्ञकार्य पति-पत्नि दोनों के द्वारा ही संभव है। पत्नी अभाव में बृहस्पति भी यज्ञ-कार्य से वंचित रहे थे।[36] अग्नि देव यज्ञ के प्राण है,[37] यहाँ तक कि यज्ञ स्वरूप ही हैं। विवाह में अग्नि को ही साक्षी मानकर पति-पत्नि दाम्पत्य बंधन में बंधते हैं। अतः अग्नि से दाम्पत्य जीवन को अधिक सुदृढ़ बनाने की कामना की जाती है।

ऋषिका ने अग्नि को सूर्य रूप में भी माना है। उषाः काल के पश्चात् सूर्य का आगमन होता है तथा उसी काल में ऋत्विज यज्ञ करते हैं। सूर्य तथा अग्नि दोनों ही उषा का अनुगमन करने के कारण दोनों को तुल्य माना गया है। वेद में अन्यत्र भी अग्नि को सूर्य रूप कहा गया है।[38] विश्ववारा ने अग्नि को उदकों का स्वामी भी कहा है। जिस प्रकार सूर्य मेघों को वर्षा के लिए प्रेरित कर धन-धान्य की वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार अग्नि यजमान को मनोवांछित फलों को देकर हवि प्रदान करने में समर्थ बनाते हैं।

विश्ववारा ने सूक्त के प्रत्येक मंत्र में अग्नि की दीप्तिमत्ता का वर्णन किया है श्री अरविन्द ने अग्नि की इसी दीप्ति को उसकी दिव्य शक्ति कहा है, जो लोकों का निर्माण करती है, यही वह शक्ति है जो सर्वदा पूर्ण ज्ञान के साथ क्रिया करती है। समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत[39] - यहाँ अग्नि तथा सूर्य को समान विशेषण से युक्त कहा गया है अग्नि की ज्वालाएँ उर्ध्व गमन करती है और ज्वालाएँ अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से प्रकाशित करती है। सूर्य पूर्व दिशा से निकल अन्तरिक्ष में संचरण करते हैं तथा अपनी किरणों से अन्तरिक्ष लोक को प्रकाशित करते हैं यह विशेषण दोनों (अग्नि तथा सूर्य) के प्रति होने से समासोक्ति अलंकार का सौन्दर्य उत्पन्न करने वाला है। इस सूक्त में विश्ववारा ने देव स्तवन के साथ ही यज्ञ में स्त्रियों के समानाधिकार को भी प्रकट किया है, जो परम्परा से आज भी स्त्रियों को यथावत् प्राप्त है।

**सिकता-निवावरी-**

ऋग्वेद के नवम् मण्डल के 86 वें सूक्त के 11 से 20 मंत्रों की द्रष्ट्री सिकता-निवावरी हैं[40] इन्होंने इन मंत्रों का दर्शन गृहत्समद, शौनक आदि ऋषियों के साथ किया है[41] ऋषिका युगल ने सोम के वास्तविक रूप के साथ ही उसके दिव्य रूप को भी

प्रकाशित किया है। गतिशील तथा शक्ति प्रदाता सोम याज्ञिक अवसरों पर देवों को प्रदान किया जाता है।[42]

सोम को पक्षी की गति से तीव्र, देवों को अत्यन्त प्रिय, इन्द्र को सुख, शक्ति देने वाला बताया गया है। इसको अधिक मधुर बनाने के लिए गाय का दूध मिलाया जाता है।[43] ऋषिका सोम के अभिषवन, उसकी गति, कामनाओं, सुख प्रदातृत्व, प्रकाशकत्व इन वैशिष्ट्यिों पर विशेष कर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। ऋषिका युगल के द्वारा सोम से आनन्द प्राप्ति की कामना उनकी दार्शनिक दृष्टि को प्रकट करती है। सोम रस रूप है, उपनिषदों में "रसो वैः सः" कहकर रस को ब्रह्म से अभिन्न माना गया है। ब्रह्म के रूप की कल्पना में सत् चित् तथा आनन्द से तीन तत्व माने गए है। सोम आनन्दमय है, अतः आनन्द प्रदाता भी है। किसी वस्तु (पदार्थ) को धारण करने वाले व्यक्ति से ही उस वस्तु (पदार्थ) की कामना की जाती है, इससे सोम के ब्रह्म रूप का भी ज्ञान होता है।

**अदिति-**

अदिति दाक्षायणी ने ऋषि वामदेव के साथ इन्द्र की स्तुति की है।[44] अदिति इन्द्र के सर्वकल्याणकारी, दुष्कर कार्य वृत्रहनन कार्य से अत्यधिक प्रभावित तथा श्रद्धावनत है। वह इन्द्र के द्वारा किए गए वृत्र वध[45] का वर्णन करती है, पर स्वयं आशंका से युक्त होकर प्रश्न करती है कि इस कार्य के लिए कहीं इन्द्र को पाप का भागी तो नहीं होना पड़ेगा, बाद में आश्वस्त भाव से कहती है कि इन्द्र का कार्य (वृत्रहनन) लोक हित के लिए था, अतः निश्चय ही इन्द्र को हत्या का पाप नहीं लगेगा।[46]

"स्नेहः पापाशड्"[47] इस सूक्ति के आधार पर अदिति का अपने प्रशंसनीय देवता के प्रति शंकालु होना स्वाभाविक ही है। साथ ही उसकी हितैषिता ने इन्द्र के वृत्रहनन के कार्य को लोककल्याणकारी सिद्ध करके इन्द्र के चरित्र को उज्जवल और महान् बना दिया है। वृत्र जलप्रवाह को रोक कर लेटा हुआ था। इन्द्र ने उसका वध करके जल की धाराओं को मुक्त कर दिया।[48] इन्द्र का तात्पर्य सूर्य से भी लिया जाता है[49] जैसे जल निःसरण का जो कार्य इन्द्र करते है, वहीं सूर्य भी करते है। सूर्य अपनी उष्णता से भाप बनाकर उससे बने बादलों को वर्षा के लिए प्रेरित करते हैं। अतः इन्द्र तथा सूर्य इस कर्म-साम्य के आधार पर अभिन्न माने गए हैं।

**अपाला-**

ऋषिका अपाला अत्रि ऋषि की पुत्री थी।[50] उसके विवाह के बाद त्वचा रोग हो गया था, यह सफेद दाग या ल्यूकोडर्मा था। जिसमें त्वचा सफेद रंग की हो जाती है और धीरे-धीरे यह बढ़ता चला जाता है। संभवत इसी रोग के कारण विवाहित होते हुए भी वह अपने पिता के घर में रहती थी। ऋषिका अपाला ने अपने मंत्रों में स्वयं से सम्बन्धित इन बातों का उल्लेख किया है और प्रमुखता से इन्द्र की कृपा का वर्णन किया है, जिसके कारण रोग मुक्त हुई और उसके पिता को गंजेपन से छुटकारा मिला।

ऋषिका अपाला को इन्द्र के शौर्य तथा पराक्रम का ज्ञान था, अतः इन्द्र के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। ऋषिका ने इन्द्र देवता की स्तुति की। इन्द्र की स्तुति में दृष्ट यह सूक्त कथा-रूप में है। कभी अपाला ने सोम को प्राप्त उसे इन्द्र के निर्मित्त सवन करने का निश्चय किया।[51] अपाला ने सोमपान के लिए इन्द्र का आह्वान किया।[52] इन्द्र ने सोमपान से संतुष्ट होकर अपाला से वर माँगने को कहा।[53] अपाला ने अपने पिता के गंजे सिर को रोमयुक्त करने, बंजर खेतों को उर्वरा करने एवं स्वयं के त्वचा रोग को दूर करने की प्रार्थना देव इन्द्र से की। इस प्रकार अपाला की त्वचा सूर्य के समान कान्तिमयी हो गयी। अपाला को इन्द्र ने रोगमुक्त किया। अपाला की यह कथा शाट्यायन ब्राह्मण तथा बृह्देवता में भी मिलती है।

परन्तु वहाँ इस कथा की कुछ घटनाएँ ऋग्वेद की कथा से भिन्न है। शाट्यायन तथा बृह्देवता-दोनों के द्वारा अपाला के मुख से सोमपान करना वर्णित हैं।[54] बृह्देवता में इन्द्र का अपाला पर आसक्त होना, अपाला के द्वारा सोम का स्वप्न किया जाना, इन्द्र के द्वारा अपाला के घर में अपूप तथा सक्तु खाने के पश्चात् सोमपान करना कहा गया है।[55] इसके साथ ही इन्द्र के द्वारा तीन बार खींची गई अपाला की त्वचा का क्रमशः शल्यक, गोधा तथा कृकलास बनना वर्णित है।[56] ऋषिका अपाला द्वारा रचित मंत्रों में इन्द्र के द्वारा अपाला की त्वचा का तीन बार खींचा जाना वर्णित है, कि कैसे त्वचा की तीन परतों को निकाल देने पर अपाला रोगमुक्त कमनीय त्वचा से युक्त हो गई।

अपाला द्वारा दिये गये वर्णन में त्वचा का बहुत गहरा तथ्य छिपा हुआ है। जो आज के आधुनिक विज्ञान में पता चलता है कि त्वचा कई परतों से मिलकर बनती है। महर्षि चरक ने मनुष्य की त्वचा को छः परतों से युक्त कहा है।[57] अपाला द्वारा किये गऐ

वर्णन में सफेद दाग (लयूकोडर्मा) के उपचार लिए त्वचा की ऊपर की तीन परतों को हटाने का प्रावधान है। जिसके द्वारा रोगी इस व्याधि से मुक्त हो जाया करते होंगे। आज भी ल्यूकोडर्मा का यह तथ्य चिकित्साविदों को एक दिशा प्रदान करने में सहायक हो सकता है।

**इन्द्राणी-**

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 86 वें सूक्त में तीन ऋषियों- इन्द्र, वृषाकपि तथा इन्द्राणी के मध्य होने वाला वार्तालाप है।[58] इस सूक्त के 2, 3, 4, 5, 6, 9, 12, 15,16, 17, 18 मंत्रों की द्रष्ट्री इन्द्राणी है।[59] अवशिष्ट मंत्रों का दर्शन इन्द्र तथा वृषाकपि ने सम्मिलित रूप से किया है। इन्द्राणी को इन्द्र-पत्नी कहा गया है।[60]

इन्द्राणी कहती हैं कि वह सभी नारियों में श्रेष्ठ तथा पति के लिए आनन्ददायिनी है।[61] यह वृषाकपि मुझे पुत्रहीन मानकर मेरे साथ व्यवहार करता है जबकि मैं पुत्रवती हूँ तथा मरूद्गण मेरे सहायक हैं।[62] यज्ञों में मुझे उचित स्थान प्रदान किया है।[63] इन्द्राणी इन्द्र से अनुरोध करती है कि तुम मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करो। जिस सोम का मैं तुम्हारे लिए सेवन करूं, वह कल्याणकारी हो।[64] हे! इन्द्र[65] तुम मेरे पास रहो।

वेद में इन्द्र, सूर्य को उत्पन्न करने वाला अर्थात् सूर्य का जनक कहा गया है।[66] अतः इन्द्र के पुत्र रूप में वृषाकपि के नाम से सूर्य का ही वर्णन किया गया है। सूर्योदय के पश्चात् यजमान यज्ञ में आहुति देते है, अतः सूर्योदय के बाद देवगण (इन्द्रादि) याज्ञिक आहुतियों का उपभोग करने जाते है। सूर्य सृष्टि का परम आवश्यक तत्व है। महाभारत में वृषाकपि प्रजापति को कहा गया है।[67] वृषाकपि में 'वृष' धर्म को तथा 'कपि' वराह या श्रेष्ठ है। इन्द्राणी भी इन्द्र को वृषाकपि का अनुगमन करने वाला कहती है। अतः वृषाकपि की दार्शनिक दृष्टि से एक संज्ञा प्रजापति भी मानी जा सकती है। लोकमान्य तिलक ने इस सूक्त को सूर्य की गति[68] का ज्ञान कराने के कारण महत्वपूर्ण माना है।[69] वे वृषाकपि से तात्पर्य मृगशिरा नक्षत्र से लेते है। उनके अनुसार मृगशिरा नक्षत्र नवीन वर्ष का आरम्भ करता है। जब मृगशिरा नक्षत्र सूर्य की ओर जाता है तब देवायन का प्रारम्भ होता है और जब यह रात्रि के प्रारम्भ की तरफ आता है, तब देवायन की समाप्ति होती है।[70] देवों से सम्बद्ध यज्ञादि क्रियाएँ देवायन में ही की जाती हैं। परवर्ती युग में इसी देवायन को उत्तरायण के नाम से जाना गया है और देवों के निर्मित्त सम्पादित क्रियाएँ इसी समय में

करने का निर्देश दिया गया है।[71] तिलक द्वारा किये गये इस अर्थ से ऋषिका के नक्षत्रिक ज्ञान की गंभीरता विदित होती है। इससे मन्त्रोक्त इन्द्राणी द्वारा इन्द्र को वृषाकपि का अनुगमन करने से रोकने का आशय हुआ कि दक्षिणायन का मृग शिरा नक्षत्र (वृषाकपि) देवों के निर्मित्त हवि पदार्थ को दूषित करता है अर्थात वह काल देव कर्मों को करने योग्य नहीं होता। इन्दाणी द्वारा दृष्ट इस सूक्त में अलंकारों की प्रचुरता है यथा- "अवीरामिव"[72] में उत्प्रेक्षालंकार प्रयुक्त हुआ है। "वृषभो न तिग्मश्रृंगो तियूथेषु शेरूवत"[73] में इन्द्र को वृषभ से उपमित किया गया है। "न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाश्रुतरा भुवत"[74] में तकार, सकार वर्णों की आवृत्ति से अनुप्रास जनित शब्द सौन्दर्य है। इस प्रकार इन्द्राणी द्वारा दृष्ट मंत्र उत्तम काव्य रूप है।

**शाश्वती-**

ऋषिका शश्वती ने अष्टम मण्डल के प्रथम सूक्त के 34वें मंत्र का दर्शन किया है।[75] शाश्वती ऋषि अंगिरस की पुत्री थी। ऋषिका का पति असंग, किसी कारण से नपुंसक हो गया था, तब ऋषिका ने पति के पुरूषत्व प्राप्ति के लिए घोर तपस्या की, जिसके फलस्वरूप असंग को पुनः पुरूषत्व की प्राप्ति हुई।[76] शाश्वती ने घोर तपस्या से अपने पति के रोग को दूर किया। दयानन्द सरस्वती के अनुसार इसका दार्शनिक अर्थ है कि जिस प्रकार जंघा स्वयं शरीर को आश्रय देते हुए भी अपनी स्थिति के लिए शरीर का आश्रय ग्रहण करती है, उसी प्रकार अंगादि अवयवों से रहित आत्मा अपनी स्थिति के लिए अंगादि देह का आश्रय ग्रहण करती है। स्वामी दयानन्द ने असंग को आत्मा तथा शाश्वती को उस आत्मा का साक्षात्कार करने वाली बुद्धि कहा है।[77] वैदिक युग में गृहस्थ का चरम उद्देश्य संतान प्राप्ति था शाश्वती भी इस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहती थी। शाश्वती का मानना था कि गृहस्थ धर्म के पालन से उत्पन्न पुत्र पति-पत्नी दोनों के लिए कल्याणकारी होता है।

**दक्षिणा-**

दक्षिणा आत्मरूप का वर्णन करने वाली ऋषिका है। अपने चरित का गान किए जाने के कारण दृष्ट सूक्तों की देवता भी है। इन्हीं में दक्षिणा ने दिव्य नामक आंगिरस ऋषि के साथ दशम मण्डल के 107 वें सूक्त का दर्शन किया है[78] ऋषिका ने अपने सूक्तों में दक्षिणा एवं दक्षिणा दाता दोनों की प्रशंसा की है।[79] ऋषिका ने यज्ञकर्म को 'महाकर्म'

माना है। इस कर्म को करने के लिए यजमानों एवं ब्राह्मण ऋत्विजों का सहयोग लेना पड़ता है। ऋत्विज तथा यजमान का सम्मिलित कर्म यज्ञ को पूर्ण करता है। यज्ञकर्म की दक्षिणा ऋत्विजों को देकर ही यज्ञ को यजमान द्वारा सफल बनाया जा सकता है। जिससे यजमान को यज्ञातिशय (फल प्राप्ति) हो।[80] यज्ञकर्म सूर्यादय के साथ ही आरम्भ कर देना चाहिए एवं दक्षिणा को देने वाले उच्च स्थानों को प्राप्त करते हैं।[81] दक्षिणा दाता के कर्मों को देवगण पूर्ण करते हैं।[82] दक्षिणा से अभिष्ट-सिद्धि होती है,[83] दक्षिणा दुष्प्रवृत्तियों से रक्षा करती है।[84] दानी व्यक्ति मनोवांछित फल की प्राप्ति करता है। ऋषिका दक्षिणा ने दक्षिणा के चार रूप बताये है। अश्वदान, हिरण्यदान, वस्त्र दान तथा गोदान, इन चारों दक्षिणाओं का फल भी भिन्न-भिन्न होता है। अश्वदान करने वाले को सूर्यलोक, स्वर्णदाता को अमृत्व, वस्त्र दाता सोम से शक्ति व गोदाता दृष्प्रवृत्तियों से रक्षा को प्राप्त करता है।[85] शतपथ ब्राह्मण भी ऋषिका के मत का समर्थन करता है।[86] जो यजमान, ऋत्विज् के कर्मफल रूप में दक्षिणा प्रदान नहीं करता है, वह अत्यन्त पाप का भागी बनता है।[87] यजमान को पापभागी से बचने के लिए ही ऋषिका यजमान को बार-बार दक्षिणा करने के लिए प्रेरित करती है[88] ऋषिका द्वारा जन्य-जनक भाव सम्बन्ध सर्वथा उचित तथा विषय स्पष्टता में सहायक बताया है। यहाँ दक्षिणा-जन्य व यज्ञ-जनक का संदर्भ है। दक्षिणा आदरपूर्वक किये गये कार्य का पारिश्रमिक है। इससे कार्य सम्पादक व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता तथा कार्य के प्रति समादर व्यक्त होता है। ऋषिका ने इस सूक्त द्वारा यह स्पष्ट किया है कि आदर्श समाज में कर्म तथा कर्म करने वाला दोनों ही पूज्य होते हैं।

**रोमशा -**

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 126वें सूक्त में ऋषिका रोमशा ने मंत्र दर्शन किया है।[89] रोमशा ऋषि बृहस्पति की पुत्री थी, जिनका विवाह राजा भावयव्य के साथ हुआ था। इस सूक्त के प्रथम पाँच मंत्रों में ऋषिगण भावयव्य के शूरवीर कार्यों तथा दानशीलता की प्रशंसा करते हैं। 6वें मंत्र में राजा भावयव्य अपनी पत्नी रोमशा की प्रशंसा करते हुए उनको ऐश्वर्यों तथा गुणों से युक्त बताते हैं साथ ही उनसे पति-पत्नी सम्बन्ध की अनुमति माँगते हैं। तब ऋषिका रोमशा अपने पति राजा भावयव्य से कहती है[90] कि आप

निःसंकोच मेरा आलिंगन कर सकते हैं, क्योंकि गंधार देश की भेड़ के समान मेरा शरीर रोमों से युक्त है अर्थात् मैं शारीरिक रूप से परिपक्व हूँ।[91]

इन मंत्रों से तत्कालिक समाज की कई बातों का पता चलता है। पहला चाहे वह कितना भी प्रभावशाली पुरूष हो, पत्नी के साथ संयोग के लिए पत्नी की सहमति आवश्यक थी।[92] दूसरा यह है कि उस समय में बाल विवाह की प्रथा नहीं थी। युवती के परिपक्व होने पर उसका विवाह होता था।

**शची -**

ऋषिका शची ने दशम मण्डल के 159 वें सुक्त में आत्म स्तुति परक मंत्रों का दर्शन किया है।[93] आत्म स्वरूप वर्णन के कारण इस सूक्त का देवता शची है।[94] देवता भिन्नता के कारण शची का सूक्त इन्द्राणी के सूक्त से भिन्न है। शची तथा इन्द्राणी दोनों इन्द्रपत्नी के पर्याय है।[95] विषय की दृष्टि से भी यह सूक्त 145 वें सूक्त की निरन्तरता में कहा गया प्रतीत होता है। उस सूक्त में इन्द्राणी सपत्नियों को दूर करने के लिए सपत्नी बाध नाम औषधि का प्रयोग करती है।[96] इस सूक्त में शची स्वयं को सपत्नियों का तिरस्कार करने वाली पति की प्रिया कहती है। विल्सन शची को कार्य का प्रतीक मानते हैं। उनके अनुसार इस सूक्त में इन्द्र के कार्यों को रूपायित किया गया है।[97] जबकि अन्य सभी विद्वानों ने पुलोमजा शची को ऋषिका कहा है।[98] ऋषिका कहती हैं कि उदित हुए सौभाग्य सूर्य को जानती हुई, सपत्नियों का विशेष रूप से तिरस्कार करने वाली शची अपने पति इन्द्र को प्राप्त होती है।[99]

इन्द्र क्रोध में भी उनसे प्रिय वचन बोलते हैं, इन्द्र को सदा विजयी बनाने के लिए स्तोताओं से हवि को प्रदान करने का आग्रह करती है।[100] इस सूक्त में शची एक संतुष्ट शक्तिमती महिला के रूप में अपना वर्णन करती है। शची अपने पति की विजय, उन्नति चाहती है सपत्नियों का तिरस्कार, अपने पति से अत्यन्त प्रेम एवं राजनीति सम्बन्धी ज्ञान को बताता है।

**गोधा -**

ऋषिका गोधा ने दशम मण्डल के 137वें सूक्त के 6टे मंत्र के अर्धांश तथा 7 वें सम्पूर्ण मंत्र से इन्द्रदेव का स्तवन किया है[101] पूर्वार्द्ध (अर्धांश) ऋषि मान्धाता द्वारा दृष्ट

है।[102] इन्द्र की स्तुति करने वाली अधिकतर ऋषिकाएँ उनके शौर्य से सर्वाधिक प्रभावित हैं। गोधा भी इन्द्र के पराक्रम की प्रशंसिका है, वह पराक्रमी इन्द्र द्वारा शत्रुनाश किए जाने की प्रशंसा करती है। इन्द्र शत्रुओं का उसी प्रकार से अनायास ही उच्छेद कर देते हैं, जिस प्रकार कोई बकरा वृक्ष की लता को अपने आगे के एक पैर से अनायास ही खींच कर उखाड़ देता है।[103] अतः ऐसे शूरवीर इन्द्र के विपरीत कोई कर्म नहीं करना चाहिए। किसी के द्वारा कोई भी ऐसा कार्य नहीं किया जाए जिससे इन्द्र क्रुद्ध हों।[104]

गोधा ने इन्द्र के पराक्रम को प्रकट करने के लिए छाग का दृष्टान्त दिया है। ऋषिका इन्द्र को मंगलमयी माता के गर्भ से उत्पन्न कहती है। वेदों में इन्द्र की माता के विषय में बहुत विवाद है। ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर गौ को इन्द्र की माता कहा गया है।[105] "इन्द्रमातर" भी इन्द्र की माताएँ मानी जाती हैं।[106] अथर्ववेद इन्द्र की माता "एकाष्टका" को बताता है।[107]

द्वितीय मंत्र में ऋषिका के द्वारा इन्द्र के लिए प्रयुक्त 'मघवन' विशेषण से इन्द्र की ऐश्वर्यशालिता व्यक्त हो रही है। मंत्र में "जनित्र्यजीजनत् भदा जनित्र्यजीजनत" में एक ही पद और उसके अर्थ की आवृत्ति होने से लाटानुप्रास है। "पूर्वेण मधवन्पदाजो वयां यथा" में दृष्टान्त अलंकार है। इससे ऋषिका गोधा के मंत्रों में उत्कृष्ट काव्य-शोभा के दर्शन होते है।

**श्रद्धा-**

आत्मरूप का वर्णन करने वाली ऋषिकाओं की परम्परा में ही श्रद्धा कामायनी हैं।[108] ऋषिका का मानना हैं कि श्रद्धा से ही अग्नि प्रज्जवलित होती है, श्रद्धा से ही उसमें हवि डाली जाती है। श्रद्धा ही समस्त ऐश्वर्यों को देने वाली हैं।[109] हवन करवाने वाले यजमान द्वारा श्रद्धा से ही हव्य सामग्री प्रदान करने पर कल्याण होता है।[110] देवों द्वारा दानवों का संहार श्रद्धा अर्थात मनः निश्चय से ही हुआ था।[111] ऋत्विज् प्रातः मध्याह्न तथा सायं- तीनों कालों में श्रद्धा देवी की उपासना करते हुए श्रद्धावान बनें।[112] श्रद्धा से तात्पर्य प्रबल इच्छा, प्रेरणा जो किसी भी कार्य का मूल है। श्रद्धा का तीनों कालों में आह्वान करने से व्यक्ति अपने कर्मों के प्रति सजग व श्रद्धालु बना रहता है।[113]

श्रद्धा का दार्शनिक विवेचन यह है कि श्रद्धा पुरूष (ब्रह्म) की शक्तिरूपा प्रकृति है, जिसके संयोग (प्रेरणा) को प्राप्त करके ही, सृष्टि रचना का आरम्भ व विकास होता है। भारतीय संस्कृति में इस सूक्त का इतना अधिक महत्व है कि जातकर्म संस्कार में बालक को प्रथम बार माता का स्तनपान कराते समय मेधा जनन कृत्य में श्रद्धा सूक्त का पाठ किया जाता है, जिससे उसे जीवन पोषक दूध की तरह जीवन धारक श्रद्धा को ग्रहण करने की शिक्षा दी जाती है। परवर्ती विद्धानों ने "श्रद्धावान् लभते ज्ञानान्" ज्ञान प्राप्ति के लिए, श्रद्धा को महत्वपूर्ण माना है। किसी भी प्रकार के ज्ञान को धारण करने में वही व्यक्ति समर्थ हो सकता है, जिसमें उस ज्ञान को प्राप्त करने की लगन तथा हृदय में आदर का भाव हो। ऋषिका ने अमूर्त्त भाव श्रद्धा को मानवीकरण कर विषय में स्पष्टता, सरसता व मोहकता उत्पन्न कर दी है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सूक्त में सर्वत्र माधुर्य तथा पांचाली रीति का दर्शन होता है।

**सार्पराज्ञी-**

ऋषिका सार्पराज्ञी ने सूर्यदेव का स्तवन किया है। बृहदेवताकार ने सार्पराज्ञी को आत्मा की भाववृत्ति का वर्णन करने वाली ऋषिकाओं के वर्ग में रखा है[114] सार्पराज्ञी द्वारा दृष्ट यह सूक्त चारों वेदों में अलग-अलग देवताओं के निर्मित कहा गया प्राप्त होता है। ऋग्वेद में इस सूक्त के देवता आत्मा अथवा सूर्य है, यजुर्वेद में अग्नि, सामवेद में आत्मा व सूर्य तथा अथर्ववेद में सूर्य देवता है। इन मंत्रों में प्रातःकालीन देवों अग्नि, सूर्य तथा उषा का निर्देश किया गया है।

ऋषिका कहती हैं कि सूर्य मातृस्वरूपा पूर्व दिशा को प्राप्त करके (प्रकाशित कर) अन्तरिक्ष की ओर जा रहे हैं।[115] जैसे कोई बालक माता के गर्भ से जन्म लेकर उसके निर्देश से पिता के पास जाता है, उसी प्रकार सूर्य पूर्व दिशा में उदित होकर उससे प्रेरित पिता रूप अन्तरिक्ष की ओर जाता है। ऋषिका उन सूर्य की स्तुति करती है जिनके प्रकाश से तीस धाम प्रकाशित होते हैं।[116]

तृतीय मंत्र में "त्रिशद्धाम" पद का प्रयोग हुआ है। सायण ने इसका अर्थ दिन तथा रात्रि के 30 मुहूर्त किये हैं[117] दिन के 15 मुहूर्त में तो कोई शंका नहीं है परन्तु रात्रि के 15 मुहूर्तो को भी सूर्य से प्रकाशित बताया गया है, क्योंकि रात्रि का प्रकाशक चन्द्रमा भी सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है।

सूर्य सत्य तथा ज्ञान का प्रतीक भी है। इसकी किरणें सत्य रूप से निकला प्रकाश है। ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति तथा सूर्य को अभिन्न कहा गया है इस सूक्त का ज्ञान अर्थ लेने पर ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ध्यान योग सत्य तथा ज्ञान से जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त होता है। इस पृथिवी लोक को छोड़कर द्युलोक को प्राप्त करता है। सूर्य को प्राण रूप भी कहा गया है[118]। सूर्य की दीप्ति शरीर में प्राण तथा अपान के मध्य विचरण करती है। यह प्राणादि सूर्य की दीप्ति से ही विराजमान रहते हैं।[119] प्रथम मंत्र में प्रयुक्त 'गो' शब्द वेद में अनेक अर्थों का वाचक है। गो शब्द को/ गम धातु से निष्पन्न माना जाता है। गो शब्द की गतिशीलता के कारण ही पृथ्वी रश्मि, वाक् स्तोता, अन्न, गो (पशुविशेष) आदित्य, चर्म आदि गो शब्द के अर्थ हैं।[120] चूंकि सूर्य भी गमनशील है, अतः इसे भी गो कहा गया है।[121]

इस प्रकार ऋषिका सार्पराज्ञी द्वारा दृष्ट यह सूक्त सूर्य को 'गो' ज्ञान, प्राण, सत्य के अर्थों से सम्बोधित करता है। ये मंत्र तैत्तिरीय संहिता में अग्निहोत्र के सन्दर्भ में पुनराधान के अन्तर्गत कहे गए हैं।[122]

**सरमा-**

सवांदपरक सूक्तों की श्रृंखला में ऋषिका सरमा तथा पणिगणों के परस्पर संवाद का वर्णन करने वाला ऋग्वेद के दशम मण्डल का 108 वाँ सूक्त है।[123] इस सूक्त के 11 मंत्रों में से मंत्र संख्या 2, 4, 6, 8, 10, 11 की द्रष्ट्री ऋषिका सरमा है[124] अवशिष्ट मंत्रों का दर्शन पणि गण ने किया है। निरूक्तकार सृ गतौ धातु से "अमच" प्रत्यय करने पर बने इस शब्द को गमन किया के कारण सरमा अर्थात "गतिमती" मानते हैं।[125] निरूक्त के कुछ विद्धान सरमा को माध्यमिकी वाणी मानते हैं।[126]

ग्रिफिथ ने सरमा को देवताओं या इन्द्र की दूती कहा है।[127] श्री अरविन्द ऋषिका को चमकीले सुन्दर पैरों वाली देवी मानते हैं, जिसकी ओर पणि गण आकृष्ट हुए थे। इन विद्वानों के विचारों से यह स्पष्ट हैं कि सरमा के गतिशीलता के गुण के कारण सरमा नाम पड़ा। सायण तथा वेंकटमाधव दोनों सरमा को ऋषिका मानते हैं, क्योंकि ऋषि शब्द का अर्थ हैं 'ऋषियौ मंत्र दृष्टारः' अर्थात जिन्होंने मंत्रों का दर्शन किया, वे ऋषि कहे गए। मंत्रों का दर्शन मात्र ध्यान की अवस्था में ही संभव है और उस अवस्था को मनुष्य ही प्राप्त कर सकता है अतः सरमा को परम ज्ञान में निष्णात प्रज्ञा वाली ऋषिका कहना ही उचित तथा

तर्क संगत है यहाँ सरमा को देवशुनी कहना सर्वथा अनुचित है। इस संदर्भ में कहा गया हैं सायण ने सरमा-पणि संवाद का प्रसंग अपने भाष्य में दिया है। जिसमें इन्द्र की गुरू बृहस्पति को गायों को बल नामक असुर के भटो-पाणियों ने अपनी गुफा में छिपा दिया। इन्द्र के गायों की खोज के लिए सरमा को भेजा। सरमा दुर्गम मार्ग पर कई बाधाओं को पारकर बृहस्पति की आशीर्वाद से पणि गण के पास पहुँचती है। पणिगण और सरमा के मध्य इन्द्र और बृहस्पति के पराक्रम को लेकर संवाद होता है सरमा पणिगण से गायों को मुक्त करने के लिए कहती है और बिना किसी प्रलोभन में आए अपना पक्ष रखती है। इस सूक्त में सरमा द्वारा बृहस्पति की गायों का पता लगाकर उनको छुड़ाने का प्रयत्न का वर्णन है। वेद में बृहस्पति को प्रकाश से सम्बद्ध किया गया है। बृहस्पति को सात रश्मियों से युक्त माना गया है।[128] सूर्य को रश्मियों को भी 'गो' कहा गया है।, अतः यहाँ पणिगण द्वारा गायों को छिपाना संभवतःसूर्य को छिपने की ऋग्वैदिक कथा की ओर संकेत करता है। ऋषिका यमी ने भी "गोपयन्ति सूर्यम"[129] द्धारा ये कहा गया है। ग्रिफिथ भी गायों का तात्पर्य प्रकाश की किरणें ही लेते है।

श्री अरविन्द के अनुसार ऋषिका सरमा ज्ञान शक्ति है, जो अज्ञानांधकार में निगूढ़ ज्ञान का हमें साक्षात्कार कराती है।[130] द्वितीय मंत्र में रसा शब्द का शब्दार्थ रस (जल) को धारण करने वाली नदी किया गया है।[131] इस रसा अर्थात नदी अर्थात विध्न के रूप में रसास्वाद[132] उपस्थित होता है, उसको पार करके ही वह अज्ञान का नाश कर ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति करने में सफल होता है। इस सूक्त में वैदिक ऋषियों के दार्शनिक गूढ़ अर्थो को कथा रूप की काव्यात्मक वृत्ति के दर्शन तो होते ही है साथ ही इन्द्र के प्रति सरमा की अटूट श्रद्धा का सौन्दर्य भी अनुभूत होता है। साहित्य मर्मज्ञों ने तो इन सूक्तों की संवादशैली को देखते हुए उन्हें भविष्य में विकसित हुई नाट्य विद्या का बीज माना है।

वेद, अनेक गंभीर अनेकार्थक मंत्रों और सूक्तों के कारण ही वेदों को ज्ञान के भण्डार कहा जाता है। वेदों में इतना दर्शन, चिन्तन हैं कि नित्य नूतन अर्थों की प्राप्ति हो सकती है। इस महनीय कर्म में उस प्राचीन युग की भारतीय महिलाओं का भी महान् योगदान रहा है।

**लोपामुद्रा-**

विदर्भराज की पुत्री लोपामुद्रा जिसे स्नेहवश 'कौशीतकी' या 'वरमुद्रा' भी कहते हैं। जो अत्यंत कोमल, महलों की पालिता है, सुख-सौभाग्य और आनंद उसकी प्रतिच्छाया की तरह उसके साथ रहते हैं। लोपामुद्रा पर तपोवन का कठिन जीवन वन्य प्रदेश का सूनापन और निरन्तर पंचाग्नियों के बीच की तप साधना की कठोर दिनचर्या को ऋषि अगस्त्य जैसे दिव्य पुरूष पति रूप में वरण करते हुए उत्तरदायित्व कैसे संभाल सकेगी। विदर्भ राज अपनी पुत्री लोपामुद्रा के लिए द्वंद्वग्रस्त चित्त, और भययुक्त थे।

पिता की व्याकुलता देखकर लोपामुद्रा ने कहा की पिताश्री और माताश्री, मेरी बात सुनें। मुझे आप दोनों का अपार स्नेह मिला है, मैं महलों में ललित-पालित हुई हूँ, लेकिन ऋषिवर की इच्छा का हमें आदर करना चाहिए। ऋषिवर अगस्त्य दिव्य पुरूष हैं, तपस्वी है, गृहस्थ जीवन चाहते हैं, मैं गृहस्थ जीवन की चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए तत्पर हूँ। मैं स्त्री हूँ, दुर्बल नहीं हूँ, अपूर्ण को पूर्ण करने का बल मुझमें है। ऋषि अगस्त्य के लम्बे कठोर तप के पश्चात् लोपामुद्रा ने मानव जीवन की पूर्णता भोग और मोक्ष के संतुलन में बतायी। मुझे भोग, सुख भौतिक उन्नति भी चाहिए। मैं जीवन को एकांगी भाव से नीरस होकर नहीं बिताना चाहती। मेरा लालन-पालन राजमहलों में हुआ है, वहाँ भाँति-भाँति के वस्त्राभूषणों में समलंकृत होने का मेरा अभ्यास रहा है। आपकी आज्ञा मानकर मैंने वल्कल और काषाय वस्त्रों में कठोर तप किया है और अब मेरी बात मानकर उद्योग करें, स्वर्णाभूषण, धन-संपत्ति एकत्र करें, उसे पाने की चेष्टा करें। मैं काषाय वस्त्रों में समागम नहीं चाहूँगी। जब हम काम में प्रवृत्त हों, तब तद्नुकूल वातावरण का भी निर्माण होना आवश्यक है। तप के पवित्र वस्त्रों में काम क्रिया शोभा नहीं देती। तपस्वी की भूमिका के अतिरिक्त हमारी सांसारिक भूमिका भी तो है, जो हमें भौतिक रूप से पूरी करनी चाहिए। ऋषि अगस्त्य भौतिक कामना पूर्ति के लिए निकल पड़े।

उन्होंने सोचा, धर्म के साथ-साथ अर्थ, काम भी तो मोक्ष के साथ जुड़े हुए पुरूषार्थ हैं। अतः लोपामुद्रा ने चार पुरूषार्थ में अर्थ और काम का महत्व बताते हुए भोग (शारीरिक सुख) का आनन्द प्राप्त करना बताया। भोग के लिए एक उचित भौतिक वातावरण जिसमें समागम हो सके, उसकी महत्ता बतायी।

आषाढ़ के प्रथम दिन उषाकाल से पूर्व काले मेघों ने सम्पूर्ण वन प्रदेश को आच्छादित कर लिया। तपोवन में ऋषिकन्याएँ और बालक सभी पूजन के लिए पुष्प चयन कर रहे थे कि घनघोर वर्षा आरम्भ हो गई। ऋषिगण तपोवन के मध्य बनी यज्ञ-वेदिका के पास यज्ञ हेतु आ जुटे। आज ऋषिका लोपामुद्रा द्वारा वेद शिक्षा और वेदपाठ का अवसर था। ब्रह्मचारीगण! आज मैं तुम्हें उन मंत्रों का सूत्रज्ञान दूँगी, जिनके द्रष्टा महर्षि अगस्त्य है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल की व्याख्या, करते हुए कहा कि मरूत हमें शक्ति, प्रेम, यश, अन्न, वस्त्र, उत्तम बुद्धि, सामर्थ्यवान, नेतृत्व कर्ता, वीर एवं प्रजा के संरक्षक से युक्त बनाए। लोपामुद्रा ने अपने अनुभव से कहा कि "मैंने भी मंत्र दर्शन किए हैं।" अनेक वर्षों तक निरंतर कार्य करने के कारण स्त्री बुढ़ापा आने पर थक जाती है उस समय यह बुढ़ापा उसकी समस्त सुंदरता और कांति को हर लेता है उस समय उसमें प्रजनन शक्ति नहीं रह जाती, अतः स्त्री-पुरूषों को चाहिए, कि वे युवावस्था में ही संतान प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें।

ऋषिका लोपामुद्रा ने अपने शिष्यों से वैदिक वाड्.मय के संबंध में चर्चा की। वेदों को त्रयी कहा गया- ऋक, साम और यजुः। चौथा वेद् अथर्ववेद इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि उसमें वेदत्रयी के अनेक अंश उल्लिखित हैं तथा लोक व्यवहार, जैसे वशीकरण, मारण, मोहन, उच्चाटन जैसे मंत्रों और कीलित विद्याओं का समावेश किया गया है। यजुर्वेद को छोड़कर अन्य मंत्रों का गायन होता रहा है, सामवेद सर्वाधिक गेय है। यज्ञों के विधि विधान के वाड्.मय ब्राह्मण ग्रंथ कहलाए। घोषा, लोपामुद्रा की ही शिष्या थी। अतः घोषा ने प्रश्न किया, "क्या स्त्रियाँ भी वेदवादिनी हो सकती है? क्या वे ऋषिका बनकर मंत्रद्रष्टा कहला सकती है?"

लोपामुद्रा ने कहा 'अवश्य घोषा!' भारतीय संस्कृति ने पुरूष और स्त्रियों को समान अधिकार दिए हैं स्त्रियाँ पूर्णतः स्वतंत्र हैं वे गृहस्थ होकर भी ऋषिकाएँ बन सकती है। उनका प्रत्येक कर्म एक तपोधर्म है। यहाँ तक कि संतान उत्पन्न करना भी जीवन का परम यज्ञ और अपार कष्ट सहन द्वारा महान् तप ही तो है। घोषा! वैदिक ऋचाओं में मंत्र के तीन प्रकार थे- ज्ञानार्थक, विचारार्थक और सत्कारार्थक। मंत्र से ईश्वर के आदेश का ज्ञान होता है, यह देव विशेष के सत्कार का भी आयोजन करता है। मूल रूप से वेद ईश्वरीय ज्ञान ही प्रदान करते हैं। ऋग्वेद के ऋक का अर्थ है प्रार्थना, यजु का अर्थ हैं यज्ञ

का विधान, साम का अर्थ है शांति और मंगलगान। अथर्व में लौकिकता के प्रयोग है। यह वैदिक विभाजन भगवान व्यास ने किया है। प्रत्येक वेद के वाड्.मय के चार भाग हैं- संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद संहिता में वैदिक स्तुतियाँ हैं, ब्राह्मण में मंत्रों की व्याख्या और प्रवचन है, आरण्यक में वानप्रस्थियों के लिए अरण्यों के विधि-विधान हैं, उपनिषदों में दार्शनिक व्याख्याएँ उपस्थित हुई हैं। ब्रह्मचारिणी काक्षिवती, गोधा प्रश्न पूछने के लिए अत्यंत उत्सुक थी, काक्षिवती उपनिषदों के विषय में लोपामुद्रा से जानना चाहती थी लोपा ने सभी को उपनिषदों से पूर्व वेदांग की संक्षिप्त जानकारी दी। वेदों के गायन और अभ्यास में कोई त्रुटि नहीं हो। जटा-पाठ, घन-पाठ आदि के द्वारा वे अपनी शुद्धता और एकरूपता बनाए रखे। जिस प्रकार शरीर के अंग होते है उसी प्रकार वेद के छः अंग वेदांग है। वेदों की आँख ज्योतिष विद्या, कान निरूक्त है, नाक शिक्षा है, मुख व्याकरण है, हाथ कल्प है तथा पाँव छंद है। छंद और शिक्षा से उचित वातावरण और पठन का ज्ञान होता है। वेदों में छंदों की प्रधानता है इसलिए वे गेय है। ये छंद, भाषा को लालित्य प्रदान करते हैं। लोपा अपनी शिष्या गोधा और काक्षिवती एवं अन्य शिष्यों को कहती है कि हम तुम सब में समृद्धि का बीज बोएँगे, क्योंकि मुझे प्रतीत हो रहा है कि तुम सब में वैदिक ऋषि और ऋषिका बनने के बीज छिपे हुए हैं, तुम्हारी रूचि मुझे इस सत्य का संकेत कर रही है।

लोपा मुद्रा प्रथम मण्डल के 179 वें सूक्त के प्रथम तथा द्वितीय मंत्रों की दृष्टि रही है।[133] ऋषिका के द्वारा अपने पति अगस्त्य के प्रति अपने हृदय के रति भाव को प्रकट करने के कारण इस सूक्त के देवता रति है।[134]

**शिखंडिनी-काश्यपी -**

शिखंडिनी काश्यपी ऋषि कश्यप की पुत्रियाँ थी। ऋग्वेद के भाष्यकार सायण ने इनको अप्सराएँ कहा है। इन दोनों ने काण्ड पर्वत पर नारद ऋषियों के साथ सोम देवता की स्तुति की है।[135] ऋषिकाएँ ऋत्विजों से प्रार्थना करती है कि वे सोम को दृश्य सामग्री से युक्त करें।[136] क्योंकि सोम देवों तथा मनुष्यों को अतिशय शक्ति प्रदान करता है।[137] जिस प्रकार से प्रकाश उचित मार्ग का ज्ञान कराता है, उसी प्रकार सोम तेजोयुक्त सत्कार्यों के प्रति स्तोता को प्रेरित करके[138], दुष्कर्मों से हटाये, ऐसी कामना ऋषिकाएँ, करती है।[139] अन्य सभी ऋषिकाओं ने सोम का सम्बन्ध इन्द्र से जोड़ा है परन्तु शिखंडिनी-काश्यपी

ऋषिकाओं ने सोम को इन्द्र के साथ ही मित्र तथा वरूण के लिए भी आनन्द प्रदान करने वाला कहा है।[140] ऋषिकाओं द्वारा सोम के लिए प्रयुक्त ''देवाव्यम'' शब्द अधिक महत्व का है। सायणाचार्य ने इसका अर्थ किया है – देवानांरक्षक[141] अर्थात् देवताओं का रक्षक। इन्द्र सोम से और अधिक शक्ति प्राप्त कर देवों के द्रोही, रोहिण, नमुचि, वृत्र आदि राक्षसों का वध करके देवों की रक्षा करते हैं। इन कार्यों को करने की शक्ति इन्द्र द्वारा सोम से प्राप्त किये जाने के कारण सोम को ही देवताओं का रक्षक कहा गया है। ऋषिकाएँ सिकता निवावरी ने सोम के सवन में जल मिलाने का विधान किया था, जिससे सोम के गुणों में कमी नहीं आती है।[142] जबकि ऋषिकाएँ शिखंडिनी व काश्यपी उसमें दुग्ध मिलाने को कहती है। उनके अनुसार दुग्ध से सोम अधिक मीठा हो जाता है। इससे अपने आराध्य के गुणों के उत्कर्ष के प्रति उनकी सतर्कता भी ज्ञात होती है। इन्द्र द्वारा राक्षसों के प्रहार से तात्पर्य यहाँ वस्तुतः रोग हैं, जो सोम औषधि के पान से दूर हो जाते हैं। ऋषिकाएँ सोम के ब्रह्ममय रूप से भी प्रभावित है। वे सोम से अन्धकार के नाश की प्रार्थना करती है। सोम सत् तथा अंधकार असत् का प्रतीक है। सत् की उपस्थिति में असत् का स्वयमेव नाश हो जाता है। वे सोम को माता-पिता द्वारा प्रेमपूर्वक सज्जित किए जाने वाले शिशु से उपमित करती हैं तथा उसमें जल के मिलाने को गाय से बछड़े को मिलाने की उपमा देती है। वे सोम को पापों से हटाकर सत्कार्यों के प्रति प्रेरित करने वाले सन्मित्र के समान बताती है। जो सोम अपने दार्शनिक रूप से अज्ञान का नाश कर स्तोता को परमज्ञान का दर्शन कराता है।

ऋषिकाओं ने प्रथम तथा द्वितीय उपमानों के रूप में कोमल कल्पनाएँ काव्य के रूप में प्रदर्शित कर यह सिद्ध कर दिया कि एक स्त्री द्वारा ही यह संभव है कि वेद के ज्ञान जैसे गंभीर विषय को भी वत्सलता से सिक्त कर सरल व हृदय ग्राह्य बना देती है।

## मन्त्र के महत्त्व को समझने वाली नारियाँ[143] -

### (1) मनोरमा की माता -

अथर्ववेद-संहिता में "वेदमाता" की स्तुति करते हुए कहा गया है[144] कि यह वेदमाता द्विजों को पवित्र करने वाली एक श्रेष्ठ वर देने वाली है। वेदमाता से यह भी प्रार्थना की गई है कि वह स्तुति-गायक को आयु, प्राण, सन्तान, पशु, कीर्ति, धन, ज्ञान, बल आदि प्रदान करे।

वेदमाता कौन है? इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये हमारा ध्यान ऋग्वेद के पंचम मण्डल के 61वें सूक्त में वर्णित राजा "रथवीति"[145] की ओर जाता है। इस राजर्षि की पत्नी ने अपनी पुत्री का विवाह ऐसे व्यक्ति से करने की अभिलाषा व्यक्त की है, जो मन्त्रदर्शन के कारण महर्षि की उपाधि से विभूषित हो। रथवीति की पत्नी रात्रि अपनी पुत्री मनोरमा को वेदमाता के रूप में देखना चाहती है।

कथानक इस प्रकार है - राजा रथवीति ने एक बार एक बड़े यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें उस समय के ख्यातिप्राप्त ब्रह्मर्षि अर्जनाना को यज्ञ-कार्य सम्पन्न कराने का भार सौंपा गया। महर्षि ने यज्ञ की समाप्ति के शाप के भय से राजा ने तो महर्षि अर्चनाना का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया; परन्तु उनकी पत्नी ने इस प्रस्ताव को मानने से मना कर दिया। निषेध के पीछे सबसे बड़ा कारण था कि वह अपनी पुत्री का पाणिग्रहण-संस्कार अपनी वंश-परम्परा के अनुसार किसी मन्त्रद्रष्टा से ही करना चाहती थी। श्यावाश्व में इस योग्यता का अभाव था। अपनी इस आवश्यक योग्यता का भान ऋषिपुत्र को हुआ और उन्होंने ऋग्वेद के पंचम मण्डल के सूक्त संख्या 52-61 में मरूतों की स्तुति की और उनकी कृपा से उन्हें ऋषित्व की प्राप्ति हो गई।

आवश्यक योग्यता-प्राप्ति के अनन्तर मनोरमा की माता ने अपने पतिदेव के साथ श्यावाश्व को अपनी पुत्री का हाथ अर्पित करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की। इस वृतान्त से स्पष्ट होता है कि उस समय सर्वसाधारण समाज की दृष्टि में भी मन्त्र-द्रष्टाओं का कितना बड़ा महत्त्व था। वैवाहिक कार्य में पिता की ही नहीं, माता की भी स्वीकृति आवश्यक थी। मनोरमा को माँ की भाँति वैदिक-संहिताकाल की प्रत्येक नारी अपनी पुत्री को किसी मन्त्रद्रष्टा पुरूष को सौंपकर उसे वेदमाता के रूप में देखने को संकल्पित थी।

**(2) सुकन्या -**

वैदिक-मन्त्रों के महत्त्व को अपनी पैनी दृष्टि से झाँकने वाली, राजर्षि शर्याति की पुत्री सुकन्या का त्यागमय जीवन निःसन्देह अनुपम एवं अद्वितीय है। माता-पिता के नैराश्य को दूर करते हुए सुकन्या ने अपने सौन्दर्यपूर्ण तारूणय को अन्ध-वृद्ध महर्षि च्यवन के चरणों में अर्पित कर दिया।

सुकन्या के त्याग की कथा इस प्रकार है - मन्त्रद्रष्टा महर्षि च्यवन का आश्रम पुष्कर-क्षेत्र माना गया है। महर्षि भृगु के वंशज च्यवन की उत्पत्ति का इतिहास बड़ा ही करूणोत्पाक है। समुद्र के समीपस्थ भृगु-आश्रम, नर्मदा नदी की उस कल-कल ध्वनि से गुंजायमान रहता था, जिसमें अपने प्रियतम सागर को आलिंगन करने की आतुरता दृष्टिगोचर होती थी। तपश्चर्या के प्रभाव से सर्वत्र सुख-शान्ति का साम्राज्य था। भृगु की पत्नी "पुलोमा" का पुंसवन-संस्कार होने वाला था, एतदर्थ महर्षि अभिषेकार्थ कहीं गये थे। इसी बीच पुलोम नामक एक राक्षस आश्रम में आया और उसने आश्रम में बैठी उस कमनीय कलेवरा तरूणी का अपहरण कर लिया। राक्षस के भय से गभराक्रान्त भृगु की पत्नी का गर्भस्त्राव हो गया और इस गर्भच्युतता के कारण ही "च्यवन" नाम पड़ गया। च्यवन की माता ने इस गर्भस्त्राव पर इतना अश्रुपात किया कि उनकी अश्रुधारा के कारण "बधुसर" नामक एक नदी का प्रादुर्भाव हो गया।

अपने जन्म के साथ ही च्यवन ने अपने तेज से उस दैत्य को भस्मीभूत कर दिया, जो उसकी माता का अपहरण करके लाया था। समय पाकर च्यवन ऋषि अपने अध्यात्म-चिन्तन में इतने निमग्न हो गये कि उनके शरीर के चारों ओर वल्मीक के ढेर जम गये। अपनी इस निर्जीवता में भी सजीवता का सन्देश देने वाले च्यवन का चक्षुपटल खुला हुआ था।

इस समाधिस्थ अवस्था में ही एक दिन च्यवन के आश्रम में पश्चिमी आर्यावर्त के सम्राट् शर्याति मृगया हेतु सदल-बल पहुँचे। राजर्षि की एकमात्र पुत्री सुकन्या भी साथ थी। भ्रम और कौतूहल के वशीभूत होकर कुछ अबोध लोगों ने समाधिस्थ ऋषि का तिरस्कार करते हुए उनकी चमकती हुई आँखों में कांटे चुभो दिये। फलतः नेत्रों से रक्तस्त्राव हुआ और महर्षि क्रोधित हो उठे। राजर्षि ने आश्रम में जाकर इस अपराध के लिये क्षमा माँगी; परन्तु क्षमा का मूल्य था च्यवन के साथ सुकन्या का पाणिग्रहण-संस्कार। महर्षि के इस कठोर दण्ड से राजा और रानी का हृदय विचलित हो उठा; परन्तु वैदिक-मन्त्रों के प्रभाव को समझने वाली उस सती सुकन्या ने तत्काल स्वीकार कर लिया और अपने वृद्ध-अन्ध पति की सेवा से आश्रम की पवित्रता को बढ़ाने लगी।

सुकन्या की इस पवित्र पतिपरायणता को अश्विनीकुमारों ने परखा, जिसमें सुकन्या सफल हुई और उसने उन्हें उत्तर दिया, "वह सम्राट् शर्याति की इकलौती पुत्री हैं

और महर्षि च्यवन की पत्नी हैं। पति की सेवा करना ही उसका एकमात्र धर्म है"। इतना ही नहीं, सुकन्या ने सारे संस्कार को सुनाते हुए कहा - "दाम्पत्य-सम्बन्ध, स्नेह-प्रेमपाश में बाँधने वाला एक अच्छेद्य बन्धन है, जिसे मृत्यु भी नहीं तोड़ सकती"।

इस प्रकार सुकन्या ने अपने तारूण्यपूर्ण जीवन के तर्कों से देवद्वय को मौन कर दिया। अश्विनीकुमारों ने भी प्रसन्न होकर महर्षि च्यवन के साथ पुष्कर-क्षेत्र (सरोवर) में गोता लगाया और च्यवन के वार्द्धक्यपूर्ण गात्र को कान्जनमयी काया में परिणत कर दिया।[146] इस सम्पूर्ण वृतान्त के पीछे सुकन्या की वैदिकी निष्ठा ही कारण रही है। उपकार करने वाले अश्विनीकुमारों को सोमपान कराया गया। इन्द्र ने भी सम्पूर्ण देववृन्द के साथ इस दम्पत्ति के प्रभाव को देखा और नतमस्तक हो गये।

**नारी के विभिन्न प्रमाणिक रूप[147] -**

**नारी और प्रशासन -**

स्वराज्य को स्थायित्व प्रदान करने हेतु राजा (शासक) की सहायता हेतु दो जन-संगठनों का निर्देश ऋक्संहिता (समिति-1/95/8; सभा-8/4/9) में मिलता है, जिसमें प्रथम का नाम "समिति" तथा दूसरे का नाम "सभा" कहा गया है। "समिति" में सम्मिलित होना राजा के लिये अनिवार्य था।[148] समिति में सामान्य जन भाग लेते थे और राजा का निर्वाचन करते थे; किन्तु "सभा" में केवल ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध ही भाग लेते थे।

**विधान-निर्मात्री -**

अथर्वसंहिता में "सभा" और "समिति" को प्रजापति की पुत्रियों की संज्ञा दी गई है।[149] अथर्वसंहिता (7/12/2) में "सभा" को "नरिष्टा" कहकर भी पुकारा गया है, जिसका निर्णय ही विवादास्पद विषयों में सायणाचार्य के अनुसार अन्तिम माना जाता था।[150] स्त्रीलिंग-वाची "समिति" और "सभा" शब्दों का चाहे जो भी रूपक हो, इतना तो स्पष्ट है कि विधान की आद्याशक्ति की तरह राष्ट्रीय प्राशासनिक कार्यों में भी नारी का महत्वपूर्ण स्थान संहिता-युग में था।

सामाजिक जीवन में प्रवेश करते समय वधू के प्रति ऋक्संहिता दशम-मण्डल के 85वें सूक्त में प्रयुक्त "साम्राज्ञी" शब्द सार्थक है। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई "गृह" माना गया है, जिसे समाशास्त्र के विद्वान नागरिक की प्रथम पाठशाला कहकर पुकारते हैं।

यह सही है, जो अपने घर की छोटी-मोटी समस्याओं के समाधान में सफल हो जाता है, उसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में भी सफलता मिलने लगती है। सम्भवतः प्रजापति की समिति और सभा नामक पुत्रियों ने अपने समय में गृह और विदेश-विभाग का इतना सुन्दर संचालन किया हो, जिसके फलस्वरूप आने वाले युग-पुरूषों ने राजनीतिक (प्रशासनिक) इन दो संगठनों का नाम ही इन नारियों के नाम पर निर्धारित कर दिया हो।

**न्यायकर्त्री के रूप में -**

यजुःसंहिता के दशम अध्याय के प्रथम चार मन्त्रों में राज्याभिषेक, पाँचवे मन्त्र में सिंहासनारोहण तथा राजा की तेजस्विता का वर्णन है। छब्बीसवें और सत्ताइसवें मन्त्रों की देवता "राजपत्नी" (आसन्दी) हैं इन मन्त्रों के मनन से प्रतीत होता है कि इस समय राजाओं की पत्नियाँ दूसरों को न्याय एवं राजनीति की शिक्षा देती थीं और चक्रवर्ती राजा की तरह ही स्त्री-समाज की समस्याओं पर अपना निर्णय प्रदान करती थीं[151] ऋक्संहिता में भी नारी द्वारा किये गये न्याय से राज-प्रबन्ध की सुस्थिरता का प्रतिपादन किया गया है।[152]

यजुःसंहिता के द्वादश अध्याय के 65वें मन्त्र में सत्याचरण वाली नारी निऋंकि (दमनकारिणी) से प्रार्थना की गई है कि वह न्यायाधीश बनकर उचित निर्णय द्वारा दण्डनीय व्यक्ति को दण्ड देकर निरपराधियों को बन्धन से मुक्त कराये। बन्धन-मुक्त कराने वाली ऐसी सुव्यवस्थाशालिनी नारी को अभिनन्दनीय एवं वन्दनीय कहा गया है। यजुःसंहिता में नारी को "घोरा" कहकर उसमें न्याय द्वारा दुष्टदलन के सामर्थ्य की पुष्टि की गई है।[153]

**योद्धा के रूप में -**

वैदिक-संहिताओं के वर्ण्य-विषयों से स्पष्ट है कि उस समय नारी नर की तरह ही विविध विद्याओं की विधाओं से परिचित थी। एक ओर नारी ब्रह्मवादिनी बनकर आध्यात्मिक चेतना से देश-जाति का हितसाधन करती थी, तो दूसरी ओर सद्योवाह के रूप में गृहस्थी-संचालन में अपने पति का पूरा सहयोग। पर्दाप्रथा के अभाव के कारण

युद्ध की स्थिति में नारी अपने पति के साथ समरांगण में जाती थी, आवश्यकता पड़ने पर रथ-संचालन से लेकर युद्ध संचालन तक सभी कार्य करती थी।

ऋक्संहिता के अनुसार दैत्यराज "नमुचि" ने "बभ्रु" ऋषि की गौओं का अपहरण कर लिया। ऋर्षि के आह्वान पर देवराज इन्द्र जब "नमुचि" से युद्ध करने के लिये आये, तो उन्होंने युद्धस्थल पर एक बहुत बड़ी सेना को देखा, जिसमें अधिकांश नारियाँ थीं। युद्धेच्छु दो नारियों को इन्द्र ने बन्दी बना लिया और स्वयं दैत्य से युद्ध करने को चल दिये[154] ऋक्संहिता के दशम-मण्डल के 102वें सूक्त में स्पष्ट संकेत है कि महर्षि मुद्गल के गो-धन का अपहरण होने पर उनकी पत्नी मुद्गलानी ने रथारोहण किया।[155] रथारोहण के अनन्तर युद्ध-घोषणा के साथ ही साथ सम्पूर्ण सेना मृद्गलानी के पीछे चल पड़ी।[156] यह मुद्गलानी के साहस का ही फल था कि अन्त में ऋषि का खोया हुआ गो-धन वापस मिल गया।

ऋक्संहिता के प्रथम-मण्डल का 32वाँ सूक्त इसका साक्षी है कि युद्ध के मैदान में स्त्रियाँ भी जाती थीं। इन्द्र के वज्र-प्रहार से वृत्रासुर के शरीर को क्षत-विक्षत देखकर उसकी माता "दनु", जो अपने बेटे के साथ युद्धस्थल में गई थी, व्याकुल होकर वृत्रासुर के शरीर पर लेट जाती है, जिससे उसके प्राणों की रक्षा हो सके। विश्वला नामक नारी अपने पति के साथ युद्धस्थल में गई थी। उसने अपने पति के रथ का संचालन किया था और युद्ध में लड़ते समय उसकी टांग टूट गई थी, जिसकी बाद में देव-वैद्य अश्विनी-कुमारों ने ठीक कर दिया।

**दौत्य-कर्म-कर्त्री -**

विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका आदि में सहभागी होती हुई संहिता-कालीन परामर्शदात्री नारी दौत्य-कर्म में भी निपुण थी। इसकी पुष्टि इन्द्र की सन्देश-वाहिका "सरमा" के कार्य-कलापों से होती है, जब वह ऋक्संहिता के दशम-मण्डल के 108वें सूक्त के अनुसार धन के लालची पणियों को त्रास देती हुई अपने प्रभु इन्द्र के बल और ऐश्वर्य का बड़ी ही कुशलता के साथ वर्णन करती है। सरमा-पणि-संवाद निःसन्देह तत्कालीन नारियों के प्रखर-बुद्धि का परिचायक है।

देखा जाये तो ऋक्संहिता के दशम-मण्डल का 95वाँ सूक्त (उर्वशी-पुरूरवा-संवाद) भी दौत्यकर्म की ओर एक संकेत है, जिसमें "उर्वशी" अपने पति राजा "पुरूरवा" को चेतावनी देती है कि यदि तुम इसी प्रकार नारी-सौन्दर्य के पीछे दौड़ते रहोगे, तो तुम्हारा राज-पाट शीघ्र ही चौपट हो जायेगा। इसी सन्दर्भ में "उर्वशी" ने "स्त्रैणानि सख्यानि न वै सन्ति" का प्रयोग किया है।

"एता सालावृकाणां हृदयानि" अर्थात् इन गुप्तचरी करने वाली नारियों का हृदय भेड़िये के हृदय के समान छली होता है। भेड़िये की उपमा से अच्छे शासक को यह चेतावनी दी गई है कि वह सतर्कता से अपने राज्य का संचालन करे। नारी के नामोल्लेखन का तात्पर्य यहाँ स्पष्ट है कि उस समय दौत्यकर्म में नारी को विशेष रूप से लगाया जाता था।

**ज्योतिर्विद् -**

देश-जाति के अभ्युत्थान हेतु किये जाने वाले कार्यों में सु-अवसर हेतु लग्नादि का ज्ञान आवश्यक होता है। सम्भवतः इसीलिये सद्गृहस्थ नारी के लिये संहिताकाल में ज्योतिष-शास्त्र की अनिवार्यता की ओर संकेत करते हुए यजुःसंहिता में उसका महत्व कहा गया है।[157] इससे स्पष्ट है कि उस समय प्रशासनिक कार्यों में कालविद् नारी का महत्वपूर्ण स्थान था।

**भूगर्भविद् -**

वेद-विद्या की ज्ञाता नारी की उस समय भूगर्भ-शास्त्र में भी रूचि थी और उससे आशा की जाती थी कि वह अपने विशेष ज्ञान से खनिज-पदार्थों का पता लगाकर राष्ट्र की समृद्धि में योगदान करें। यही कारण है कि ऋक्संहिता (6/61/3 तथा 7/31/2) के सूक्तों में नारी को भूगर्भ-शास्त्र की वेत्ता होने की सलाह दी गई है।[158]

**प्रशिक्षिका -**

यजुःसंहिता के उन्नीसवें अध्याय के 50वें मन्त्र में नारी के लिये "अश्वाजनी" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है - घोड़ों को प्रशिक्षण देने वाली महिला। आर्यजन अपने विरोधियों से लड़ते समय अश्वों का प्रयोग विशेष रूप से करते थे, इसकी पुष्टि भी "आश्वाजनी" शब्द से होती है।

**उत्तर वैदिक कालीन विदुषियाँ -**

ऋग्वैदिककाल में स्त्रियों की शिक्षा की स्थिति उच्च स्तर पर थी। ब्राह्मण काल में भी यहीं स्थिति बनी रही परन्तु आरण्यक व उपनिषद काल में इसकी स्थिति में परिवर्तन आया, बाद के युगों में स्त्री की सामाजिक स्थिति में गिरावट आने लगी। ब्राह्मण काल में स्त्री का आदरपूर्ण स्थान था, स्त्री को सावित्री[159] ऐतरेय ब्राह्मण में पत्नी को गार्हपत्य अग्नि के समान शुद्ध तथा पवित्र कहा गया।[160] पत्नी के बिना पति यज्ञ का अधिकारी[161] नहीं था, वह उसके प्रत्येक कार्य में उसकी सहायिका होती थी। नारी को शिक्षा के क्षेत्र में पुरूषों के समान ही समान अधिकार थे। वे अपने प्रमुख कार्य के रूप में साम मंत्रों का गान करती थीं।[162] स्त्रियों की वेदाध्ययन के प्रति तीव्रोत्कण्ठा तथा प्रवृत्ति थी। ब्राह्मण काल में पत्नी, पति के शरीर का आधा भाग मानी जाती थी।[163] इस प्रकार के वैदुष्यपूर्ण तथा समानता के वातावरण में निश्चय ही समाज में बहुत सी विदुषियाँ थी। शांख्यायन ब्राह्मण में पथ्या स्वस्ति नामक एक विदुषी का उल्लेख मिलता है, जो शिक्षा के लिए उत्तर भारत गई थी तथा अपनी विद्धता के कारण जिसने सरस्वती की उपाधि प्राप्त की थी।[164] विदुषी गार्गी, सुलभा तथा वड़वा प्रातिथेयी को आश्वलायन गृह्य सूत्र तथा कौषीतकि गृह्य सूत्र[165] के ऋषि-तर्पण प्रकरण में सादर स्मरण किया गया है। वहाँ सुमन्तु, जैमिनी आदि आचार्यों के साथ इन विदुषियों के तर्पण की व्यवस्था दी गई है। महाभाष्यकार पतंजलि भी "सौलभानि"[166] कहकर सुलभा का परिचय देते है। सुलभा रचित एक ब्राह्मण का उल्लेख भी प्राप्त होता है, जिसका नाम सौलभ ब्राह्मण था और जो कदाचित ऋग्वेद सम्बन्धी था।

वैदिक काल में महिलाओं को अपनी प्रबलता का परिचय विभिन्न सूक्तों की रचना करके दिया है। ये वैदिक सूक्त परिष्कृत प्रखर बुद्धि वाली महिलाओं की एक पूरी परम्परा की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। वे विभिन्न विषयों की पण्डिता होती थी तथा शास्त्रार्थ करने की क्षमता रखती थी।" इन वैदिक नारियों को ब्रह्मवादिनी कहा जाता था।

**मैत्रेयी-**

मैत्रेयी ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी थी। ऋषि याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं- कात्यायनी तथा मैत्रेयी। इनमें कात्यायनी सांसारिक प्रवृत्ति की थी। याज्ञवल्कय की द्वितीय पत्नी मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी, उसके अन्दर जिज्ञासा थी कि ऐसा कौनसा ज्ञान है,

जिससे परम तत्व की प्राप्ति होती है। जब याज्ञवल्क्य संन्यास ग्रहण करने लगे तब उन्होंने मैत्रेयी को बुलाकर आगामी जीवनयापन के लिए, सम्पत्ति को बाँटने के लिए कहा।[167] सांसारिक भोगों से विरक्त तथा ब्रह्मज्ञान के प्रति उन्मुख होने के कारण मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया- "यदि पृथ्वी का पूर्ण वैभव भी मुझे प्राप्त हो जाए तो क्या मुझे अमृतत्व की प्राप्ति हो जाएगी।"[168] याज्ञवल्क्य के द्वारा निषेधात्मक उत्तर देने पर, उसने विरक्त भाव से कहा कि मैं इस वैभव का क्या करूँगी। मैं उस साधना को जानना चाहती हूँ जिससे अमरत्व की प्राप्ति हो।[169]

मैत्रेयी के ब्रह्मज्ञान के प्रति उत्कट अभिलाषा को देखकर याज्ञवल्क्य ने अत्यन्त प्रसन्न हो अपनी प्रिया को अमृत्व प्राप्ति का उपाय बताया। याज्ञवल्क्य ने कहा 'पंचभूतों से उत्पन्न शरीर जब नष्ट हो जाता है तब संज्ञा नहीं रहती है।[170] याज्ञवल्क्य के इस कथन को मैत्रेयी की तार्किक बुद्धि ने स्वीकार नहीं किया, उसने स्पष्ट कहा कि आपके ज्ञान के कथन कि, शरीर में कोई संज्ञा नहीं रहती ने मुझे सन्देह में डाल दिया है।[171] मैत्रेयी के अनुसार शरीर के नाश के बाद भी आत्मा, ब्रह्म में शेष रहती है और ब्रह्म को विज्ञानघन तथा अक्षर कहा गया है, अतः उसकी संज्ञा नहीं रहती इस प्रकार का विरोधी कथन तो भ्रम उत्पन्न करने वाला है। मैत्रेयी के इस युक्तियुक्त उत्तर से याज्ञवल्क्य को उनकी प्रबल ज्ञान पिपासा ज्ञात हो गई और उन्हें उपदेश देना ही पड़ा। याज्ञवल्क्य ने उनका यह कथन मात्र महत्भूतों की स्थिति को बताने वाला है। परम् सत् वह आत्मा तो निश्चय ही अविनाशी है।[172]

ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी अपने पति याज्ञवल्क्य से उस तत्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहती थी, जो सांसारिक भोगों के सदृश क्षणिक न होकर स्थायी हो। उसे आत्मा, ब्रह्म और सांसारिकता की नश्वरता का ज्ञान था तभी इन तत्वों के रूप को अलग-अलग स्पष्ट रूप से कहने को बाध्य करती है। मैत्रेयी के द्वारा किये गये ब्रह्म ज्ञान सम्बन्धी प्रश्न के कारण ही याज्ञवल्क्य द्वारा प्रदान किया गया तत्व ज्ञान का उपदेश जनसामान्य के लिए सुलभ हो सका है। मैत्रेयी का याज्ञवल्क्य से किया गया प्रश्न ''यन्नुमा इयं भगोः सर्वा पृथ्वी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति?''

**गार्गी -**

वैदिक काल में एक महान प्राकृतिक दार्शनिका, वेदों की प्रसिद्ध व्याख्याता और ब्रह्म विद्या के ज्ञान के साथ ब्रह्मवादी के नाम से जानी जाती है। बृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी का नाम प्रमुख है। गंग वंश के ऋषि (800-500 ई. पूर्व) वचक्नु की पुत्री गार्गी का नाम वाचकन्वी था। गार्गी ने युवा उम्र में वैदिक ग्रंथों में गहरी रूचि प्रकट की और वह दर्शन के क्षेत्र में कुशल थी।[173] गर्ग गौत्र में उत्पन्न होने के कारण वे गार्गी नाम से प्रसिद्ध है। गार्गी का पूरा नाम गार्गी वाचक्नवी, बृहदारण्यकोपनिषद (3.6 और 3.8) में मिलता है।

परम ज्ञानी गार्गी पितृ-परम्परा से ही विविध शास्त्रों के ज्ञान से सम्पन्न थी। इनको राजा जनक के सदृश ज्ञानी ने पण्डितों की उस सभा में आमंत्रित किया था, जिसमें वह यह जानना चाहते थे, कि विद्वज्जनों में कौन सर्वश्रेष्ठ है। इसी आशय से राजा जनक ने उस सभा में घोषणा की थी कि, आप सबमें जो सर्वश्रेष्ठ हो वह इन गौओं (स्वर्ण जटित सींगों वाली) को ले जाए।[174] जनक के ऐसा कहने पर याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों से गौओं को ले चलने को कहा। इस पर राजा जनक के होता अश्वल उनको रोकते हुए बोले कि, विद्वज्जनों के प्रश्नों का उत्तर संतोषप्रद देने के उपरान्त ही आप इन गायों को ले जा सकते हैं।[175] याज्ञवल्क्य ने प्रश्नों का उत्तर देना स्वीकार कर लिया। इन्हीं प्रश्नकर्ताओं में तेजस्विनी महिला गार्गी भी थी। आरम्भ में गार्गी चुप रहीं परन्तु प्रेरित किए जाने पर उन्होंने भी याज्ञवल्क्य से दो बार प्रश्न किए।

गार्गी ने समस्त स्थूल जगत को व्याप्त करने वाले तत्व के विषय में याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछते हुए प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उसने कहा, ‘‘याज्ञवल्क्य’’। यह समस्त पृथ्वी जल से ओत-प्रोत है, परन्तु यह जल किससे ओत-प्रोत है? देवलोक से। देवलोक किससे ओत-प्रोत है? इन्द्रलोक से। इन्द्रलोक किससे ओत-प्रोत है? प्रजापति लोक से। प्रजापति लोक किससे ओत-प्रोत है? ब्रह्मलोक से और ब्रह्मलोक किससे ओत-प्रोत है? गार्गी के इस प्रश्न पर याज्ञवल्क्य ने उन्हें रोक दिया।[176] प्रश्नों का यह क्रम व्यापकतम् तत्व की ओर बढ़ रहा था, जो शब्दों का नहीं अनुभूति का विषय है। याज्ञवल्क्य द्वारा उत्तर न दिए जाने पर गार्गी उनका मन्तव्य समझ गई और निःशब्द उत्तर से सन्तुष्ट हो गई। किन्तु कई प्रश्नों के उत्तर जानने की जिज्ञासा तृप्त किये बिना ज्ञानवत्ता को स्वीकार नहीं कर सकती थी।

अतः कुछ समय बाद गार्गी ने उपस्थित विद्वानों से पुनः दो प्रश्न करने की अनुमति माँगी। ब्राह्मणों द्वारा अनुमति दिए जाने पर, उसने अपने प्रश्नों की गहनता तथा विषय काठिन्य के प्रति याज्ञवल्क्य को सचेत करते हुए, कहा कि जिस प्रकार कोई वीर प्रत्यंचाहीन धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर शत्रुओं को अत्यन्त पीड़ा देने वाले शरों को हाथ में लेकर खड़ा होता है, उसी प्रकार मैं इन दो प्रश्नों को लेकर उपस्थित हूँ। इन प्रश्नों के सही उत्तर देने के साथ ही ब्रह्म सम्बन्धी वाद में तुमसे कोई भी नहीं जीत सकेगा।[177] गार्गी ने याज्ञवल्क्य से तत्व ज्ञान का प्रथम प्रश्न किया - जो द्युलोक से ऊपर है, जो पृथिवी से नीचे है, जो द्युलोक तथा पृथिवी लोक के मध्य में है और स्वयं भी द्युलोक तथा पृथिवी लोक है, जिसे भूत, वर्तमान तथा भविष्य कहते हैं, वह किससे ओत-प्रोत है?[178] याज्ञवल्क्य ने गार्गी द्वारा बताई गई विशेषज्ञताओं से युक्त तत्व को आकाश बताया है।[179] इस उत्तर से गार्गी संतुष्ट हो गई। याज्ञवल्क्य द्वारा द्वितीय प्रश्न पूछने की स्वीकृति लेकर प्रश्न किया ''जब सब कुछ आकाश से ओत-प्रोत है, तो आकाश किससे ओतप्रोत है?[180] याज्ञवल्क्य ने गार्गी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आकाश को अपने में व्याप्त रखने वाले ''अक्षर ब्रह्म'' का गार्गी के लिए विस्तार से व्याख्यान किया।[181] याज्ञवल्क्य द्वारा दिए अक्षर ब्रह्म के व्याख्यान से संतुष्ट होकर गार्गी ने विद्वत सभा को अपना निर्णय सुनाते हुए कहा -

**''ब्रह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदस्मान्नमस्का रेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्मा कमिमं कश्चिद् ब्रह्मोदं जेतेति। ततो ह वाचक्नुव्युपरराम।''**[182]

अर्थात् यह याज्ञवल्क्य उपस्थित सभी विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्म के सम्बन्ध में ज्ञान और तर्क में आप में से कोई भी इन्हें हरा नहीं सकता। गार्गी द्वारा किये गये प्रश्नों से उनकी दार्शनिक जिज्ञासा, विद्वता, विस्तीर्णता विदित होती है।

याज्ञवल्क्य द्वारा दिए गए उन उत्तरों से गार्गी बहुत प्रसन्न हुई; उन्होंने याज्ञवल्क्य की श्रेष्ठता का निर्णय जनक की उस विराट विद्वत-सभा में निर्भय होकर सुनाया। अन्त में गार्गी याज्ञवल्क्य के लिए कहती है कि उन्हें प्रश्नों का उत्तर याज्ञवल्क्य ने दे दिया तो अन्य कोई ब्रह्म ज्ञान में याज्ञवल्क्य को परास्त नहीं कर सकता। गार्गी का प्रश्नों के उत्तरों से सन्तुष्ट होना यह बताता है कि गार्गी पूर्वतः ब्रह्म ज्ञान सम्पन्ना थी। परीक्षक परीक्षार्थी से श्रेष्ठ होता है, उन्हीं के द्वारा विद्वत् सभा में याज्ञवल्क्य की श्रेष्ठता प्रमाणित की गई, जिससे वे तद्युगीन विद्वत्समाज में परम ज्ञानी सिद्ध होती है।

**गन्धर्व गृहीता -**

गन्धर्व गृहीता ऐसी विदुषी है, जिनका यज्ञ विधान के सम्बन्ध में दिया गया मत ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है। यज्ञ के दो प्रकार बताए गए हैं नित्य और नैमित्तिक। अग्निहोत्र, नित्य यज्ञ है, जो प्रतिदिन किया जाता है। बह्वृच तथा छान्दोग्य शाखा वाले सूर्योदय के पूर्व यज्ञ (अग्निहोत्र) की व्यवस्था देते हैं। अतः वे ''अनुदित होमिन'' है। तैत्तिरीय और मैत्रायणी शाखा के अनुयायी सूर्योदय के पश्चात् यज्ञ करने को उचित मानने के कारण उचित-होमिन कहे जाते हैं। सूर्य उदित होने के पश्चात् ही अग्निहोत्र करना चाहिए, उदित होमियों के इस कथन के समर्थन में विदुषी गन्धर्वगृहीता ने अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से अपना मत प्रस्तुत किया है। गन्धर्व गृहीता का नामोल्लेख है, वहाँ पंतञजल काप्य की पत्नी तथ पुत्री दोनों को गन्धर्व गृहीता कहा गया है, जिनके पास पूरे देश से विद्यार्थी विद्याध्ययन करने आते थे तथा काप्य ने स्वयं जिनसे ज्ञान प्राप्त किया था।[183] सायण ने षड्-गुरू-शिष्य में उल्लेखित गन्धर्व गृहीता के वृत्तान्त को अपने भाष्य में उद्धृत किया है। उनके अनुसार विदुषी गन्धर्व गृहीता सर्वलोक में गमन में सक्षम, सूर्योदय होने पर अनुष्ठान कर यज्ञ के फल को प्राप्त करने वाली थी।

गन्धर्व गृहीता के अनुसार सूर्य के उदित होने पर अग्निहोत्र करना ही शास्त्र-सम्मत है। जो अध्वर्यु इस अग्निहोत्र को सूर्यास्त के पश्चात् करता है और पुनः सूर्य के उदित होने के पहले ही करता है, वह इस होय द्वय को एक दिन में करता है। इसके विपरीत इसी अग्निहोत्र को यदि अध्वर्यु सूर्यास्त के बाद सांयकाल करता है तथा दूसरे दिन सूर्योदय के बाद करता है, तब वह दोनों दिन अग्निहोत्र करता है। इस कारण सूर्योदय के पश्चात् अग्निहोत्र करना चाहिए।[184] उनके अनुसार सूर्योदय के पहले होम करने वाला चौबीस वर्षों में गायत्री लोक को प्राप्त करता है और सूर्योदय के बाद अग्निहोत्र करने वाला उसी गायत्री लोक को बारह वर्षों में ही प्राप्त कर लेता है, जो सूर्योदय के बाद अग्निहोत्र करता है, उसका अनुष्ठान दो कालों में होता है। अतः वह एक संवत्सर में ही दो संवत्सरों के फल को प्राप्त कर लेता है।[185] तथा उसका अनुष्ठान दिन में सूर्य के तेज से युक्त तथा रात्रि में अग्नि के तेज से युक्त होता है, अतः सूर्य के उदित होने पर अग्निहोत्र करना चाहिये।[186]

गन्धर्व गृहीता द्वारा उदित होम के पक्ष में दिए गए दोनों तर्क उनकी तार्किक शक्ति तथा गहन याज्ञिक ज्ञान को प्रकट करते हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण[187] तथा कौषीतकि ब्राह्मण[188] भी गन्धर्वगृहीता के द्वारा बताए गए उदित होम का ही समर्थन करते हैं।

**अरून्धती -**

एक मात्र ऐसी विदुषी है जिन्होंने अपने ज्ञान के बल पर सप्तर्षि मंडल में ऋषि पत्नी के रूप में गौरवशाली स्थान पाया। महर्षि मेघातिथि के यज्ञ में ये बचपन से ही भाग लेती थी और यज्ञ के बाद वेदों के बातों पर तर्क-वितर्क किया करती थी।

**वाक् -**

अभृण ऋषि की पुत्री थी। इन्होंने अन्न पर अनुसंधान करके अपने युग में उन्नत खेती के लिए वेदों के आधार पर नए-नए बीजों को खेती के लिए किसानों को उपलब्ध करवाए गये।

**रामायण काल की विदुषियाँ -**

उत्तर वैदिक युग ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष के बाद तक प्रायः माना जाता है। उस काल में भी भारतीय स्त्रियों की स्थिति के विषय में ये उल्लेख है कि वैदिककालीन आदर्शमय वैदिक परम्पराएँ पर्याप्त परिणाम में यथावत प्रयुक्त होती रहीं। वे वैदिक प्रतिमान जो नित्य एवं अनादि है, मान्य रहे। अतः रामायण काल में स्त्रियों की स्थिति स्थिर प्रायः रही।

रामायण काल में स्त्रियों की स्थिति के लिए निम्न श्लोक द्रष्टव्य है -

**कौशल्या -**

सा क्षौमवसना नित्यं दृष्टा व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमंगला।।
- वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 20.5

''राम की माता कौशल्या रेशमी वस्त्र पहनकर अग्निहोत्र के अनुष्ठान में तत्पर रहती थी जिसमें वह स्वयं मंत्रों का पाठ किया करती थी।[189]'' वे इस ''स्वस्ति यज्ञ को इसलिए करती थी ताकि उन्हें सौभाग्य एवं ऐश्वर्यवान पुत्र मिल सके।''[190]

कौशल्या का सर्वप्रथम उल्लेख वाल्मीकि रामायण में पुत्र-प्रेम की आकांक्षिणी के रूप में मिलता है। वाल्मीकि की परम्परा में रचित काव्यों और नाटकों में कौशल्या सर्वत्र अग्रमहिषी के रूप में ही चित्रित है। कौशल्या रामायण की एक प्रमुख पात्र है। वे कौशल प्रदेश (छत्तीसगढ़) की राजकुमारी तथा अयोध्या के राजा दशरथ की पत्नी थी। कौशल्या को राम की माता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।[191] रामायण में कौशल्या को क्षीणकाया, खिन्नमना, उपवासपरायणा, क्षमाशीला, त्यागशीला, सौम्य, विनीत, गंभीर, प्रशांत, विशालहृदया तथा पति-सेवा-परायणा आदर्श महिला के रूप में चित्रित किया गया है। अपने पुत्र के वनवास पर वे अपने इन गुणों का और भी अधिक विकास करती हुई देखी जाती है।

अध्यात्मरामायण में उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट तथा राम को वन जाने से रोकते हुए चित्रित करके उनके मन द्विविधा का वर्णन किया गया है तथा उनके हृदय में प्रेमभावना और बुद्धि का परस्पर संघर्ष दिखाया गया है अतः तुलसीदास के इस प्रसंग से कौशल्या का चरित्र उनको विदुषी महिला प्रमाणित करता है।

रामचरितमानस में कौशल्या के चरित्र में उच्च बुद्धिमत्ता का भी चित्रण हुआ है। जब वे चित्रकूट में सीता की माता को विषम परिस्थिति में धैर्य धारण करने को कहती हैं, उनके कथन में एक दार्शनिक दृष्टि के साथ-साथ गहरी आत्मानुभूति के दर्शन होते हैं। कौशल्या ने अपने पुत्र राम को इस प्रकार संस्कारित किया है कि विमाता कैकेयी के कुभावों से भी राम विचलित नहीं हुए और सहर्ष वनवासी हुए।

कौशल्या श्री राम को ऐसी ही शिक्षा देती हुई कहती हैं -

1. ‘‘जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता
   जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।’’
2. ‘‘पितृ बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरूह सेवी।
   अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ कोई हरॉसू।।’’

भावार्थ 1 - हे तात! यदि केवल पिताजी की ही आज्ञा हो तो माता को (पिता से) बड़ी समझकर वन को मत जाओ, किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है।

भावार्थ 2 - वन के देवता तुम्हारे पिता होगें और वनदेवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे चरणकमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अंत में तो वनवास करना उचित ही है केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर हृदय में दुःख होता है। कौशल्या का प्रकृति प्रेम यहाँ परिलक्षित होता है।

राजा दशरथ के तीन रानियाँ थी। अतः स्वाभाविक रूप से सौतियापन पनपना चाहिए, किन्तु कौशल्या सौत को सौत न समझकर बहिन सदृश मानती है। कैकयी के बारे में वह सुमित्रा से कहती है-

सिथिल सनेहूँ कहै कोसिला सुमित्रा जू सौं,

मैं न लखि सौति, सखी! भगिनी ज्यों सेई है।।

कौशल्या स्त्रीत्व की जीवन्त प्रतिमा है, दया, ममता, की मंदाकिनी है। तप, त्याग एवं बलिदान की अकथ कथा है। वह राम और भरत में भेद नहीं समझती। पति व पुत्रों से स्नेह रखती है, पर राम के वनगमन पर चुप रहकर अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करती है, उसमें शील, उदात्तता, मातृत्व, नारी सुलभ संवेदना भी है।

जब श्री राम के अभिषेक की प्रसन्नता से हृदय खुशी से उछल रहा है, उसी वक्त कौशल्या राम के वनवास जाने के शब्दों को सुनकर, उन्हें पिता एवं माता कैकयी के आदेश का सम्मान करने के लिए कहती है। यह उनकी उच्चस्तरीय चितंन क्षमता को प्रदर्शित करती है।

राजा दशरथ के अन्तिम क्षणों में वे, कौशल्या से क्षमा मांगते है, लेकिन कौशल्या द्वारा उन्हें रोकते हुए अपने पत्नि धर्म, उनकी आज्ञा को मानने और उनके प्रति श्रद्धा एवं सेवा भाव रखना कोई सामान्य बुद्धिलब्धि का परिचायक नहीं हैं, बल्कि विशाल हृदय, उच्च बुद्धिलब्धि का उदाहरण प्रस्तुत करता है। ऐसे रामायण में कौशल्या सम्बन्धित कई प्रसंग है, जो उनके विदुषी व विचारवान होने का प्रमाण देते है।

**सीता-**

रामायण का मुख्य महिला पात्र सीता, मिथिला नरेश राजा जनक की ज्येष्ठ पुत्री थी। इनका विवाह अयोध्या के नरेश राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री राम से स्वयंवर में शिव धनुष को भंग करने के उपरांत हुआ था। इन्होंने स्त्री व पतिव्रता धर्म का पूर्ण रूप से पालन

किया था, जिसके कारण इनका नाम बहुत आदर से लिया जाता है। रामायण के अनेक प्रसंग सीता का आदर्शमय चरित्र प्रदर्शित करते है।

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।

नदी चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवार्णिनी।।

-वाल्मीकी रामायण, सुन्दर काण्ड, 14.99

सीता प्रतिदिन वैदिक सूत्रों द्वारा प्रार्थना किया करती थी वनवास के समय रावण द्वारा सीता अपहरण करने पर हनुमान जब उनकी खोज में अशोक वाटिका जाते है तो सोचते है कि यदि सीता जीवित है तो वह वैदिक सूत्रों द्वारा संध्या करने इस सरिता तट पर अवश्य आएंगी।

ये श्लोक इस बात का प्रबल प्रमाण है कि स्त्रियों के सम्बन्ध में वैदिक युग की भाँति रामायण काल में भी जीवन के समस्त क्षेत्रों में स्त्रियाँ सक्रिय थीं तथा उनकी उच्च उज्ज्वल छवि प्रेरणादायक थी। राम को वनवास की आज्ञा प्राप्त होने पर महर्षि वसिष्ठ का प्रस्ताव था कि राम की अनुपस्थिति में उनके स्थान पर सीता राज्य का कार्यभार संभाल लें यह प्रकट करता है कि उस काल की महिलाएँ, पुरूषों के समान राजगद्दी हेतु समान अधिकार रखती थीं उसके लिए उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण रूप से सक्षम बनाती है। उस काल में पतिव्रत धर्म सम्बन्धी शिक्षा अति आवश्यक रूप से दी जाती थी जिसका पालन कौशल्या, सीता एवं मंदोदरी ने निष्ठापूर्वक किया।

राम के साथ वनवास जाने के लिए सीता ने कौशल्या के चरणों को स्पर्श किया, तब माता कौशल्या ने सीता के मस्तक को स्नेहपूर्वक चूमते हुए उनका आलिंगन करते हुए, भारतीय संस्कृति में पतिव्रत धर्म सम्बन्धी अति उदात्त एवं अनुकरणीय प्रतिमान के विषय के उपदेश देते हुए भाव व्यक्त किए। जो स्त्रियाँ साध्वी, शीलवती, सत्यवादिनी एवं सन्मार्ग का अनुसरण करने वाली होती हैं, उनके लिए पति ही परम पवित्र सर्वश्रेष्ठ होता है।

प्रत्युत्तर में श्रद्धेय सास का उपदेश सुनकर नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर बोली-जैसे चन्द्रमा की प्रभा चन्द्रमा से कभी विलग नहीं होती, जैसे बिना तार के वीणा तथा बिना

चक्र के रथ नहीं होता उसी प्रकार बिना पति के स्त्री नहीं होती है, भले ही वह सौ पुत्रों की माँ क्यों न हो।

**कैकयी -**

महाकाव्य रामायण के अनुसार कैकयी राजा दशरथ की तीसरी पत्नी थी। कैकये देश के राजा अश्वपति की पुत्री एक शक्तिशाली यौद्धा थी, जिसने युद्ध के दौरान अपने पति की रणभूमि में सहायता की।[192]

**शबरी -**

मांतग मुनि की शिष्या शबरी का वृत्तांत इन महाकाव्यों में उपलब्ध होने से उस युग में स्त्री शिक्षा का प्रमाण मिलते हैं। शबरी का आश्रम पंपा नदी के तट पर था। उसके लिए चीरकृष्णा जिनाम्बरा, जटिला, सिद्धा और तापसी विशेषण वाल्मीकि ने दिये हैं।[193]

**मंदोदरी -**

मंदोदरी रामायण की एक ऐसी पात्र थी जो एक शक्तिशाली व पराक्रमी राजा की पत्नी होने के बाद भी अभागी स्त्री थी। उसका चरित्र गुणवान, धर्मपालक व शिक्षाप्रद था, तभी उसे हिंदू धर्म की सर्वोच्च पाँच नारियों में स्थान दिया। जिन्हें हम पंचकन्या के नाम से जानते हैं। रावण एवं मंदोदरी संवाद में मंदोदरी द्वारा रावण को समझाने का प्रयास किया जा रहा है, यह संवाद ही मंदोदरी की विद्वता, बुद्धिमानी व दूरदर्शिता को प्रदर्शित करता है।

जब श्री राम ने समुद्र पर बाँध बनवा दिया तो, व्याकुल रावण बनावटी हँसी से भय को भुलाकर अपने महल को गया। जब मंदोदरी ने सुना कि प्रभु श्रीराम जी आ गए हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बँधवा लिया है।[194] तब वह हाथ पकड़कर, पति को अपने महल में लाकर परम मनोहर वाणी में तथा चरणों में नतमस्तक होकर अपना आँचल फैलाकर कहा - हे प्रियतम! क्रोध त्याग कर मेरा वचन सुनिए।[195] हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिए, जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सकें। आप में और श्री रघुनाथ जी में निश्चय ही कैसा अंतर है, जैसा जुगनू और सूर्य में।[196]

इस प्रकार मंदोदरी श्री राम के पराक्रम, तीनों लोक में उनका यश, सृष्टि के रचयिता, पालने व संहार करने वाले की आराधना करने के लिए रावण से कहती है

लेकिन रावण अपने अहंकार के कारण मंदोदरी को भयमुक्त रहने के लिए बोलता है और मंदोदरी ने हृदय में ऐसा जान लिया है कि काल के वश में होने से पति को अभिमान हो गया है।[197]

नारी इस संसार में अपनी तपस्या और बलिदान के कारण ही पूजनीय है, परन्तु यदि उसके मन में स्वार्थ का भाव है, पति को लेकर मन में गलत विचार हैं या परपुरूष में किसी प्रकार की कोई रूचि है तो वो पूजनीय नहीं है।[198]

चौपाई 3[199], 4[200] नारी का जीवन त्याग है। माता-पिता भाई-बहिन ये सभी सम्बन्ध एक नारी के लिए मित्रता के सम्बन्ध है। चाहे पति वृद्ध हो, मानसिक रूप से कमजोर हो, रोगग्रस्त हो, मूर्ख हो, धनहीन हो, अंधा हो, क्रोधी हो, दीन हो, बहरा हो, नारी को किसी भी स्थिति में पति का सम्मान करना चाहिए। यदि ऐसे पति का भी अपमान किया जाता है तो मृत्यु के पश्चात् यम की यातना सहन करनी पड़ती है।

एक स्त्री को अपने पति के घर मन, वचन, कर्म से सेवा के भाव के साथ ही जाना चाहिए, किसी भी प्रकार का द्वेष अथवा भेदभाव नहीं रखना चाहिए।[201] स्त्री का दायित्व है अपने परिवार को जोड़कर रखना। स्त्री के मन में सदैव यह भाव होना चाहिए कि वो जिस जगह भी जाए, भाग्य में जितना सुख और दुःख लिखा है वो सहन करना ही पड़ेगा, इसलिए किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए, कष्टों को भोगने से ही कष्ट कम होते हैं। (चौपाई 5)

सोरठा 5 (ख) अनुसूया ने यह शिक्षा केवल सीता जी के लिए ही नहीं अपितु सीता जी के माध्यम से संसार के हर घर के लिए कहा। जिस घर में स्त्री प्रसन्न है, उस घर में समृद्धि का आगमन निश्चित है, परन्तु जहाँ स्त्री प्रसन्न नहीं है वहाँ चाहे कितनी भी सम्पत्ति क्यों न हो, घर में समृद्धि का वास नहीं होता। इसलिए यदि पत्नी पतिव्रत का पालन कर रही है तो पति का भी कर्त्तव्य है कि पत्नी को सम्मान दे और प्रसन्न रखे।

**अनुसूया -**

अनुसूया महर्षि अत्रि की पत्नी थी। अनुसूया का स्थान भारत वर्ष की सती-साध्वी नारियों में बहुत ऊँचा है। इनका जन्म अत्यन्त उच्च कुल में हुआ था। ब्रह्मा जी के मानस पुत्र परम् तपस्वी महर्षि अत्रि को इन्होंने पति के रूप में प्राप्त किया था। अपनी

सतत सेवा तथा प्रेम से इन्होंने महर्षि अत्रि के हृदय को जीत लिया था। अत्रि मुनि की पत्नी जो दक्ष प्रजापति की चौबीस कन्याओं में से एक थी, वनवास काल में जब राम, सीता और लक्ष्मण चित्रकूट में महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँचे तो अनुसूया ने सीता को पतिव्रत धर्म की शिक्षा दी थी।[202]

**अनुसूया द्वारा सीता जी को शिक्षा -**

1. वनवास के दौरान अनुसूया ने सीता को शिक्षा दी कि एक आदर्श पत्नी का अपने पति के लिए कैसा व्यवहार होना चाहिए। पत्नी को गृहस्थ जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिये।
2. चौपाई 2 - वनवास के समय एक समय ऐसा आया था जब सीता जी की साड़ी फट गयी और धैर्य रखकर उस फटी साड़ी को धारण किया, परन्तु किसी ओर को वस्त्र लाने के लिए नहीं कहा। जब सीता जी चित्रकूट में महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँची तब देवी अनुसूया ने सीता जी को वस्त्र एवं आभूषण धारण करने के लिए और साथ ही सीता के पति के प्रति भाव को लेकर उनकी प्रशंसा की। इसके पश्चात् अनुसूया सीता जी से कहती है कि नारी का व्रत और धर्म एक ही है और वो है मन से पति की सेवा करना।
3. पति अपनी पत्नी को जिस रूप में रखे उसे वैसे ही रहना चाहिए।

**रामायणकालीन अन्य विदुषी महिलाएँ -**

तारा प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण के अनुसार सुग्रीव के भाई बालि की पत्नी व सुषेण की पुत्री थी। लंका के राजा रावण की भरी सभा में अपना पैर गाड़ने वाला अंगद तारा का ही पुत्र था। बालि की मृत्यु के उपरांत उसकी पत्नी तारा से बालि के छोटे भाई सुग्रीव ने विवाह किया।[203] तारा की गिनती पंचकन्याओं में भी की जाती है -

अहल्या द्रोपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा
पंचकन्याः स्मरेतन्नित्यं महापात कनाशम।।[204]

बाली की पत्नी तारा के लिए ''मन्त्रवित'' शब्द का प्रयोग किया गया है -

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी।

- वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड, 4.16.13

इस विशेषण से तारा का 'वेदज्ञा' होना स्पष्ट है।[205] रामायण काल की अहल्या भी पंचकन्याओं में से एक थी। रामायण के अनुसार अहल्या का अर्थ है दोष रहित, दूसरा जिस भूमि पर हल न चला हो अर्थात् कुंवारी। अहल्या सौन्दर्य की देवी जिसको गौतम ऋषि ने बड़े यत्न से संभाल के रखा था और ब्रह्मा जी को सुरक्षित लौटा दिया था, ब्रह्मा जी ने गौतम ऋषि के संयम से प्रसन्न होकर, उन्हीं से अहल्या का विवाह करवा दिया। गौतम के श्राप से अहल्या को मुक्ति श्री राम ने दिलायी।[206]

**महाभारत काल की विदुषी महिलाएँ -**

महाभारत के 18 पर्वों में से भीष्मपर्वान्तर्गत श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 10 श्लोक 34 का उपदेश है -

कीर्तिः श्रीवक्चि नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।

''मैं स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाणी स्मृति, मेधा, धृति एवं क्षमा हूँ।'' महाभारत विश्व की वृहत्तम रचना है। उसके रचयिता महर्षि द्वैपायन व्यास हैं। यह 'शतसाहस्री संहिता' अर्थात् एक लाख श्लोकों का अनोखा महाकाव्य है। व्यास जी के अनुसार महाभारत काल में भारतीय स्त्रियों की स्थिति उन्नत दशा में थी। वे आदर की पात्र थीं। स्त्रियों के विषय में महाभारत में तात्कालिक व्यक्त विचारों से स्पष्ट होता है कि उनकी उस युग में उत्तम सामाजिक स्थिति थी।

**कुंती -**

कुंती महाभारत में वर्णित पांडव जो कि छः थे, में से बड़े चार की माता थी। कुन्ती पंच कन्याओं में से एक है, जिन्हें चिर-कुमारी कहा जाता है। कुन्ती यदुवंशी राजा शूरसेन की पुत्री, वसुदेव और सुतसुभा की बड़ी बहिन और भगवान श्री कृष्ण की बुआ थी। नागवंश महाराज कुन्तिभोज ने कुन्ती को गोद लिया था। ये हस्तिनापुर के नरेश महाराज पांडु की पहली पत्नी थी। कुंती को महर्षि दुर्वासा ने देवताओं का आह्वान करने का वरदान दिया था, जिससे कुंती देवताओं को प्रसन्न करके उनसे संतान प्राप्त कर सकती थी। अर्थात् कुंती ने अपनी तपस्या से देवताओं को प्रसन्न करने की विद्या प्राप्त की हुई थी। पाण्डू एवं कुंती ने इस वरदान का प्रयोग किया एवं धर्मराज, वायु एवं इंद्र देवता के आह्वान से पुत्रों की प्राप्ति हुई। कर्ण सूर्यनारायण और कुंती के पुत्र और युधिष्ठिर यमराज

और कुंती के पुत्र थे। भीम की प्राप्ति पवनदेव और कुंती से हुई थी, अर्जुन इन्द्र और कुंती के पुत्र थे। अश्विनी कुमार और माद्री के पुत्र सहदेव और नकुल थे। महाभारत के आधार पर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव पाँच पाण्डवों की माता कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थी।

कुन्ती ने श्री कृष्ण को अपने ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को कौरवों के विरूद्ध युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु विदुला ने महाभारत के 'उद्योग पर्व के अध्याय 133 में जो अपने क्षत्रिय पुत्र संजय के सिन्धुराज से युद्ध में पराजित होने पर वीरोत्तेजक शब्द कह अपना वीरत्व प्रदर्शन करने का उपदेश दिया था, उसके आधार पर महाभारत के अध्याय 134 श्लोक 13-41 में मार्गदर्शन करने को इस प्रकार कहा - ''क्षत्रिय का पुत्र शक्ति और बल रहते हुए भी बलहीन पुरूष के तरह अभिभूत होकर रहेगा - यह अत्यन्त निन्दनीय है। हे कृष्ण! आप युधिष्ठिर से कहें कि तुम्हारी माँ विदुला के उपदेशों का अनुसरण कराना चाहती है कि क्षत्रिय सन्तान को युद्ध से कभी भी भयभीत नहीं होना चाहिए। कुन्ती क्षत्रिय की कन्या, क्षत्रिय की पत्नी एवं क्षत्रिय की जननी के रूप में अपना परिचय देना चाहती है। आप ऐसा करें कि वह ऐसा परिचय दे सके। भारतीय क्षत्राणी की कर्त्तव्यपरायणता सम्बन्धी ओजस्विनी कुन्ती के ये शब्द सर्वोच्च श्रद्धास्पद एवं अनुकरणीय है।[207]

**गान्धारी -**

गांधारी ने महाभारत में पतिव्रत धर्म का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किया है। गंधार निवासी गांधारी को यह विदित होने पर कि उसके पतिदेव धृतराष्ट्र नेत्रविहीन है, उसने भी अपने नेत्रों पर सदा पट्टी बाँधे रखने का संकल्प लिया। गांधारी के विषय में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वह अत्यन्त न्यायकारी प्रवृत्ति की थी। उसने अपने पुत्र दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति समुचित सद्व्यवहार न देखकर, जैसा कि महाभारत के 'सभापर्व' में वर्णित है, अपने पति देव धृतराष्ट्र को उद्बोधन कर कहा था -

"हे राजन! शिष्टाचार से हीन पुत्रों का अनुमोदन करना आपको शोभा नहीं देता। आप अपने ही दोष से दोषी न हों। आपको युधिष्ठिर के परामर्श के अनुसार चलना चाहिए। आपको धार्मिक विदुर के उपदेशों के अनुसार चलना चाहिए। आप अपने पुत्र कुल-कलंक दुर्योधन का त्याग कीजिए, क्योंकि मैं समझती हूँ कि दुर्योधन के कारण

आपका वंश नष्ट हो जाएगा। आप पुत्र-स्नेह के कारण धर्म का परित्याग न करें। शास्त्र के अनुसार अपना कर्त्तव्य निश्चय करें।"[208]

**द्रोपदी -**

द्रोपदी महाभारत की सबसे प्रसिद्ध विदुषी महिलाओं में से एक थी। महाकाव्य के अनुसार द्रोपदी पांचाल देश के राजा द्रुपद की पुत्री थी। द्रोपदी पंच कन्याओं में से एक है जिसे चिर कुमारी कहा जाता है। यज्ञसेनी, महाभारती, सैरंध्री, पांचाली, अग्निसूता आदि नामों से विख्यात है। द्रोपदी का विवाह अर्जुन से हुआ था। महाभारत काल में भी रामायण काल की भाँति स्त्रियों की हर क्षेत्र में सहभागिता को सुनिश्चित किया है। इस काल में भी महिषी अर्थात् राजरानी ने अपने उत्तरदायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन किया। राजकुमारों के समान ही राजकुमारियों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था। द्रोपदी अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण शास्त्रार्थ एवं संवाद किया करती थी। द्रोपदी अपने राजनीतिक ज्ञान से युधिष्ठिर को दृढ़तापूर्वक राजदण्ड धारण करने की प्रेरणा देती है। युग सापेक्ष क्रोध व क्षमा की नीति का अनुसरण करने की प्रेरणा देती है। युधिष्ठिर के मन में वैराग्य उत्पन्न होने पर पृथ्वी का शासन करने के लिए प्रेरित करती है, वनपर्व में द्रोपदी अपने असीम ज्ञान को प्रदर्शित करते हुए सन्तापपूर्ण वचनों से युधिष्ठिर के शक्ति विषयक क्रोध को प्रज्वलित करती है। हॉकिन्स के अनुसार द्रोपदी ब्राह्मण काल की विदुषी स्त्रियों की भाँति शिक्षित बुद्धिमान और आत्मसमर्पण करने वाली नहीं थी। द्रोपदी ने एक बृहद शास्त्रार्थ के माध्यम से प्रारब्ध जैसे कठिन विषयों पर भी अपनी मीमांसा प्रस्तुत की। द्रोपदी दैवीय व मानसिक विषयों की सूक्ष्म चीजों की ज्ञानी महिला थी। पुरूषार्थ को प्रधान मानकर देशकाल के अनुसार साम, दाम, दंड, भेद नीति का परामर्श युधिष्ठिर को देती है। राजनीतिक सिद्धान्त के अनुसार जब शत्रु संकट में हो, तब उस पर आक्रमण करना, ऐसी युद्ध नीति का प्रतिपादन द्रोपदी द्वारा किया गया। अपने पाण्डव पतियों को दास भय से राजनीतिक विषयक ज्ञान द्वारा द्रोपदी ने मुक्त कराया।

महाकवि भारवी ने अपने महाकाव्य किरातार्जुनीयम में द्रोपदी के लिए अद्वितीय रूप से वीरोत्तेजक एवं ओजपूर्ण शब्दों में उदात्त उद्गार व्यक्त किए हैं। किरातार्जुनीयम[209] में वनवास काल में दुर्योधन के साथ कृत सन्धि की अवधि बीतने की प्रतिक्षा में निरत युधिष्ठिर को द्रोपदी ने जो प्रबोधन दिया है वह राष्ट्र नीति के निर्धारण में आर्ष-वाक्य की

सी गरिमा से युक्त है। द्रोपदी का कथन है कि शांति की बात छोड़िए, अपने तेज को शत्रुओं के विनाश के लिए सन्नद्ध कीजिए। राजाओं की सिद्धि है शत्रु-विनाश, न कि शांति। शांति का मार्ग साधु संतों के लिए है न कि राष्ट्र नायकों के लिए -

विहाय शांति नृप धार्म तत्पुनः प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्धिषम।

व्रजन्ति शत्रुनवधूय निः स्पृहा शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृतः।। - किरातार्जुनीयम्

अर्थात् यदि तेजस्वियों में अग्रगण्य आप जैसे लोग इस प्रकार अपमानित होकर संतोष करते हुए बैठ गए, तब तो स्वाभिमानी वृत्ति का कोई आश्रय ही नहीं रहेगा।

''पुरः सरा धामवतां यशोधना सुदुः सहं प्राप्य निकारमी दृशम।

भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रति निराश्रया हन्त हता मनस्विता।।''- किरातार्जुनीयम्

और यदि आप पराक्रम को छोड़कर क्षमा अथवा सहिष्णुता को ही सुख-शान्ति का मार्ग समझते हैं तो ऐसा कीजिए कि धनुष के रूप में इस राजचिन्ह को छोड़िए और संन्यास लेकर जटाएँ बढ़ाकर अग्निहोत्र भर कीजिए। राजकाज आपके वश की बात नहीं है।

''अथ क्षमामेव निरस्त विक्रम श्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।

विहाय लक्ष्मीपति लक्ष्मकार्मुक जटाधरः सञ्जजुहूधीह पावकम्।।'' - किरातार्जुनीयम्

ये अत्यन्त ओजस्विनी वाणी में जो द्रोपदी ने भाव व्यक्त किए हैं वे शाश्वत् स्वरूप होने के आधार पर परम् प्रेरणादायक एवं प्रोत्साहित करने वाले हैं।

महाभारत में द्रोपदी के मुख से युधिष्ठिर को सम्बोधित, इस सम्बन्ध में अत्यन्त शौर्योद्दीपक एवं प्रेरणादायक भाव व्यक्त किए गए हैं -

अवज्ञानं हि लोकऽस्मिन् मरणा दपि गर्हित्मा।

- महाभारत् वन पर्व अध्याय 28, श्लोक 12

आशय है दुर्योधन से अपमानित होकर जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही श्रेयस्कर है। इन शब्दों ने युधिष्ठिर को दुर्योधन के अन्यायपूर्ण आचरण के विरूद्ध क्षात्र

धर्म के अनुसार कठोर कार्यवाही करने को उत्प्रेरित किया। स्पष्ट है कि द्रोपदी दण्डनीति व राजधर्म में प्रवीण थी।

**शकुन्तला -**

महाभारत के 'आदि पर्व' में वेदव्यास जी द्वारा शकुन्तला की तेजोमय भावना का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया गया है। शकुन्तला जब अपने पुत्र भरत के साथ राजा दुष्यन्त के पास हस्तिनापुर जाती है तब वह उसे अस्वीकार कर देते है। उस समय शकुन्तला द्वारा राजा दुष्यन्त की राजसभा में वेदों से प्रचुर प्रमाण उद्धृत करते हुए, जो नीतिपरक तर्क प्रस्तुत किए गए थे, वे उस विदुषी के अनुपम गहन ज्ञान को प्रकट करते हैं। शकुन्तला वैदिक ज्ञान में निष्णात थी।[210] अतः ऐसी अप्रतिम रूप से योग्य महिला पर कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है। शकुन्तला ने दुष्यंत को सम्बोधित करके कहा -

"यदि असत्य में ही आपकी रूचि है और मेरे सत्य कथन को आप नहीं मानते, तो मैं स्वतः ही मिथ्यावादी आप से पृथक हो रही हूँ। आपके साथ रहना मेरे लिए उचित नहीं है।"

- महाभारत, आदि पर्व, 74-108

**काशकृत्सनी[211] -**

विदुषी ने मीमांसा दर्शन पर एक ग्रंथ की रचना की थी। इसने दर्शन-पद्धति के विकास में विशेष रूप से योगदान किया था। महाभारत में ब्रह्मणी द्वारा प्रोक्त मीमांसा का उल्लेख आया है।

**देवयानी -**

महाभारत के 'आदि पर्व' अध्याय 82 के अनुसार शुक्र की कन्या देवयानी परम् विदुषी थी। वह धर्मयुक्त तर्क प्रस्तुत करने में प्रवीण थी। इसके साथ ही उसने संगीत एवं ललित कला में निपुणता से सबको प्रभावित कर रखा था। अतः शुक्र ने राजा ययाति (भारतीय इतिहास में ययाति एक प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध राजा था, जैसा कि महाभारत के 'वनपर्व' के श्लोक संख्या 129.4 से विदित होता है। ययाति की प्रतिष्ठानपुर अर्थात् प्रयाग के अन्तर्गत झूसी स्थान में राजधानी थी) से अपनी कन्या देवयानी को ग्रहण करने के लिए इन शब्दों में प्रस्तावित किया था -

''वृतोऽनया पतिर्वीर सुतया त्वं ममेष्टया।

गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज।।''

- महाभारत, आदि पर्व, 82.32

''अर्ध भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा।''

- महाभारत, आदि पर्व, 74.41

भार्या अपने पति का आधा अंग स्वीकार की गई। भार्या को सर्वश्रेष्ठ सखा माना गया है।

''पितरों धर्मेकार्येषु, भवन्त्यार्तस्य मातरः।''

- महाभारत, आदि पर्व, 74.43

पत्नी धार्मिक कार्यों में पिता के समान सलाह देने वाली तथा दुःखी एवं रोगी पति को माता की तरह सेवा करने के गुणों से युक्त होती है।

''नास्ति भार्या समो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गतिः।

नास्ति भार्या समो लोके, सहायो धर्म संग्रहे।।

- महाभारत, शान्ति पर्व, 144.16

संसार में पत्नी के समान कोई बन्धु नहीं है, पत्नी के समान कोई आश्रय नहीं है और पत्नी के समान धन संग्रह में सहायक भी दूसरा नहीं है।

स्त्रियों के सम्बन्ध में ये सब उच्च विचार इस बात के परिचायक हैं कि महाभारत काल में भी भारतीय स्त्रियों की स्थिति श्लाघनीय एवं परम् मार्गदर्शक की थी।

**शिवा** -अत्र सिद्धा शिवा नाम ब्रह्मणी वेदपारगा।

अधीत्य सकलान् लेभेऽसन्देहमक्षयम।।

- महाभारत, अध्याय, 8.18.19

शिवा ब्रह्मणी द्वारा चारों वेदों में प्रवीण होने का महाभारत में वर्णन आया है -

**उत्तरा -**

उत्तरा राजा विराट की पुत्री थी। पाण्डवों के अज्ञातवास के समय अर्जुन ने बृहन्नला[212] नाम ग्रहण करके, उत्तरा को नृत्य, संगीत की शिक्षा दी थी। अर्जुन की वीरता से प्रभावित होकर राजा विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा के लिए, अर्जुन से विवाह का प्रस्ताव रखा था, परन्तु अर्जुन ने इस प्रस्ताव को इसलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि उत्तरा अर्जुन की शिष्या होने के कारण पुत्री के समान है। कालान्तर में उत्तरा का विवाह, अभिमन्यु से हुआ था।

**बौद्ध व जैन काल की विदुषी महिलाएँ -**

बौद्ध काल में अनेक स्त्रियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर समाज में अपने प्रगाढ़ ज्ञान के आधार पर उच्च स्थिति प्राप्त की थी। जातक साहित्य में इस तरह के उदाहरण हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार[213] ने अनेक विख्यात थेरियों-भिक्षुणियों के विषय में महत्वपूर्ण विवरण दिये हैं -

थेरीगाथा में अनेक थेरियों स्थविर स्त्रियों का वर्णन मिलता है। इन थेरियों में शुभा, सुमेधा और अनुपमा के नाम उल्लेखनीय है। अपने उच्च ज्ञान के कारण इनको 'थेरी' का पद प्राप्त हुआ था। महात्मा बुद्ध द्वारा भिक्षुणियों के लिए पृथक संघ बनाने की व्यवस्था कर दी गई थी।

**भद्राकुण्डलकेशा -**

भद्राकुण्डलकेशा, राजगृह के एक श्रेणी की पुत्री थी। उसने सब शास्त्रों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया था। वह परम विदुषी थी। वह विविध आश्रमों में जाती और वहाँ के विद्वान ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ किया करती थी। बड़े-बड़े विद्वानों और धर्माचार्यों को उसने शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

**सुक्का -**

संयुक्त निकाय में सुक्का नाम की एक विलक्षण विदुषी का उल्लेख है, जो वाग्मिता में अत्यन्त प्रवीण थी। उसकी वक्तृत्व शक्ति अपने समय में अद्वितीय मानी जाती थी। जिस समय वह राजगृह में व्याख्यान देने गई तो एक यक्ष ने सम्पूर्ण नगर-निवासियों

को इन शब्दों में उसके व्याख्यान की सूचना दी - ''सुक्का अमृत वर्षा कर रही है, जो लोग बुद्धिमान है वे जाएं और अमृत रस का पान करें।''

**खेमा -**

भिक्षुणी खेमा का जन्म सागल के राजकुल में हुआ था। खेमा, मगध सम्राट बिम्बसार की पत्नी थी। महात्मा बुद्ध के संसर्ग में आकर वह भिक्खु जीवन अपनाकर रानी से भिक्षुणी हो गई थी। वह अत्यन्त विदुषी, बुद्धिमती, वाग्मी, सुशिक्षिता और विलक्षण प्रतिभा व बुद्धि की धनी थी। भिक्षुणी 'विनय' में पारंगत हो गई थी। उसकी कीर्ति इतनी विस्तृत थी कि कोसल नरेश प्रसेनजित ने उसके पास जाकर अनेक दार्शनिक विषयों पर विचार-विमर्श किया था तथा उसे अपनी शंकाओं का दार्शनिक तथा संतोषप्रद उत्तर प्राप्त हुआ था।

**धम्मदिन्ना -**

धम्मदिन्ना राजगृह निवासी थी। वह महात्मा बुद्ध के उपदेशों को नियमित रूप से सुनकर 'धम्म' का अनुशीलन कर शीघ्र उसमें पारंगत हो गई इसलिए महात्मा बुद्ध उससे बहुत प्रसन्न हुए। वह महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए उपयुक्त क्षमता रखती थी। उसे भिक्षुणियों में सर्वप्रथम माना जाता था।

**संघमित्रा -**

अशोक की पुत्री संघमित्रा, तीनों पिटकों की विद्याओं में निपुणता रखती थी। विनयपिटक का अध्ययन उसने इतनी गंभीरता से किया कि उसका अध्यापन बड़ी योग्यता से कर सकती थी। बौद्ध आगमों की महान शिक्षिकाओं के रूप में उनकी बड़ी ख्याति थी। राजमहल का सुखी जीवन त्यागकर अपने भ्राता महेन्द्र के साथ श्री लंका प्रस्थान कर वहाँ बौद्ध धर्म संबंधी उपदेशों द्वारा उसके सद्गुणों का संदेश दे श्री लंकावासियों की कृत भाजन हुई थी। ऐसी ही नारी राष्ट्र की शोभा है।

**पाटच्चरा -**

पाटच्चरा उन सब स्त्रियों में शिरोमणि मानी जाती थी, जिन्होंने विनयपटक का अवगाहन किया था।

**अंजली -**

अंजली विविध विधाओं में निष्णात विदुषी थी। उसने विनयपिटक में अत्यन्त पांडित्य प्राप्त किया था। बौद्ध समय की स्त्रियाँ अपने को समाज का एक महत्वपूर्ण अंग मानती थी और समाज में उनकी स्थिति सम्मानजनक थी। महावीर और गौतम बुद्ध ने संघ में नारियों के प्रवेश की अनुमति दी थी, ये धर्म और दर्शन के मनन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती थी। जैन और बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि कुछ भिक्षुणियों ने साहित्य के विकास और शिक्षा में अपूर्व योगदान दिया।

**जयंती -**

जैन साहित्य से जयंती नामक महिला का पता चलता है जो धर्म और दर्शन के ज्ञान की प्यास में अविवाहित रही और अंत में भिक्षुणी हो गई। ये राजा सहस्रानिक की पुत्री थी। तीर्थंकर महावीर के धर्म सम्बन्धी तर्कों से संतुष्ट होकर उनसे प्रवज्या ग्रहण की थी। इस काल में यह प्रथा स्थापित हुई थी कि राजा की नाबालिग अवस्था में एक प्रशासक मंडल रहे, जिसकी अध्यक्ष राजमाता हो।[214] इस प्रकार की राजव्यवस्था के उल्लेख जातक[215] व नाटक ग्रंथों में और शिलालेखों में आते हैं। प्राचीन भारत में नायनिका (ई.पूं 125) प्रभावती गुप्त (ई.सं. 380) इत्यादि अनेक राजमाताएँ हुईं जिन्होंने अपने पुत्रों की बाल्यावस्था में शासन की बागडोर ठीक तरह से संभाली।

**कुण्डलकेशा -**

राजगृह के एक श्रेष्ठी की पुत्री कुण्डलकेशा जैन धर्म की अनुयायी थी। उसने सब शास्त्रों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया था और किशोरवय में ही विदुषी हो गई थी।

**अन्य विदुषी महिलाएँ -**

जातक से विदित होता है कि एक जैन पिता की चार पुत्रियों ने देश का भ्रमण करते हुए लोगों को दर्शनशास्त्र पर वाद-विवाद के लिए चुनौती दी थी।[216] पाणिनि ने महिला-शिक्षणशाला का उल्लेख किया है।[217] यद्यपि उस युग में सहशिक्षण का भी प्रचलन है।

**मौर्योत्तर काल से पूर्व मध्यकाल तक की प्रमुख विदुषी महिलाएँ -**

**राजश्री -**

हर्षवर्धन (590-647 ई.) की छठी शताब्दी में उत्तर भारत में थानेश्वर शक्तिशाली राज्य था, वहाँ के वीर पराक्रमी शासक राजा प्रभाकर वर्धन की पुत्री एवं हर्षवर्धन की बहिन राजश्री जो हर्ष से डेढ़ वर्ष छोटी थी को कन्नौज की शासिका बनाया था, वह राजश्री को प्रशासनिक कार्यों में पूरी सहायता देता था। राजश्री सभी कलाओं में निपुण थी।[218] ह्वेनसांग चीनी यात्री (630-644 ई.) तक उनके भारत यात्रा वृत्तान्त Buddhist Record of the western world by Beal अथवा On Yuan shwang Travel in India by waters से पता चलता है कि भारत में उस समय पर्दा-प्रथा नहीं थी। सम्राट हर्ष की बहिन राजश्री (राजेश्वरी) पर्दा नहीं करती थी। वह उनके प्रवचन सुनने आती थी।

**चित्रलेखा -**

विष्णुपुराण में वाणासुर के मंत्री कुष्माण्ड की कन्या का वर्णन है जिसकी सखी चित्रलेखा एक उच्चकोटि की चित्रकार थी और उसने अभिज्ञानार्थ चित्रपट पर देव, दानव, गन्धर्व और मनुष्यों के चित्र बनाये थे।[219]

**रूसा -**

चिकित्सा विज्ञान में भी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। 'रूसा' नामक एक स्त्री ने प्रसव विज्ञान पर प्रमाणिक एवं पांडित्यपूर्ण ग्रंथ लिखा था और खलीफ हारू (आठवीं सदी) ने अरबी भाषा में अनुवाद करवाया था।[220] स्त्री चिकित्सक अथवा दात्री (नर्स) द्वारा एक स्त्री का प्रसूति दृश्य तमिलनाडू के मदूरई के मीनाक्षी मंदिर के मण्डप में अंकित है। यह एक दुर्लभ पुरातात्विक प्रमाण है।

नारियों ने साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की थी, उनकी रचनाएँ साहित्य में रूचि का अद्भुत प्रमाण है। काव्य मिमांसा का वर्णन, प्रमाण है कि राजकुमारियाँ, राजमंत्री की पुत्रियाँ, गणिकायें एवं नटनियाँ शास्त्रज्ञान से स्फुटित प्रतिभा सम्पन्न कवयित्रियाँ होती थी।[221]

**अवन्ति सुन्दरी -**

राजशेखर की पत्नी अवन्ती सुन्दरी कवयित्री एवं टीकाकार दोनों ही थी। अवन्ति सुन्दरी की मान्यता थी कि 'कोई भी वस्तु गुण या दोष से युक्त नहीं है, वह तो कुशल कवि की उक्तियाँ हैं जो उन्हें सगुण अथव निर्गुण बना देती हैं। संस्कृत काव्य की वह प्रकाण्ड पण्डिता थी।[222]

**मोरिखा एवं विज्जा -**

मोरिखा और विज्जा (आठवीं सदी) की महान कवयित्रियाँ थी। विज्जा ने मानव प्रेम एवं प्रकृति पर मुख्य रचनाएँ की हैं। कौमुदी महोत्सव नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना विज्जा/विज्जिका/विजय भट्टारिका/विजयाम्बिका ने ही की थी।[223] विज्जा कर्नाट की रानी थी। कौमुदी महोत्सव, प्राचीन भारत में मनाया जाने वाला एक उत्सव था। यह कौमुदी के दिन (कार्तिक पूर्णिमा) मनाया जाता था। 'कौमुदी महोत्सव' एक नाटक है जो पाँच काण्डों में है। नाटक पाटलीपुत्र के राजकुमार कल्याणवर्मन के जीवन पर आधारित है। कोमादि पर्व गुप्त काल, चंद्रगुप्त मौर्य व अशोक काल में मनाया जाता था। विज्जा जो उच्चकोटि की कवयित्री थी, जिसकी प्रशंसा आलोचक भी करते थे।

**उभयभारती -**

मण्डन मिश्र की पत्नी उभयभारती मीमांसा, वेदान्त की ज्ञाता तथा अपनी बौद्धिक विलक्षणता के कारण शंकराचार्य तथा मण्डनमिश्र के बीच हुए शास्त्रार्थ की निर्णायिका नियुक्त की गई थी।[224] मंडन मिश्र, गृहस्थ जीवन का पालन करने वाले मिथिला के प्रकांड विद्वान थे व कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। मंडन मिश्र के द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ ब्रह्मसिद्धि है। मीमांसा के प्रसिद्ध विद्वान मिश्र ने प्रसिद्ध पुस्तक ''स्फोटसिद्धि'' को भी लिखा है।

इतने प्रकाण्ड विद्वान पति मंडन मिश्र को शास्त्रार्थ में हारते हुए देखकर उभयभारती, अपने समय की शीर्षस्थ दार्शनिक आदि शंकराचार्य से तेरह दिन तक स्वयं ऐतिहासिक शास्त्रार्थ यह कह कर करती रही कि ''अभी उन्होंने मेरे पति के आधे अंग को हराया है। मैं उनकी अर्धांगिनी हूँ मुझे परास्त किए बिना वह मंडल मिश्र पर विजय के अधिकारी नहीं हो सकते।''

आदि शंकराचार्य जैसे 'न भूतो न भविष्यति' मूर्धन्य विद्वान से शास्त्रार्थ करने के लिए आह्वान करना इस तथ्य का द्योतक है कि आध्यात्मिक दर्शन में निष्णात कैसी-कैसी विदुषियों ने प्राचीन भारत को गौरवान्वित किया था तथा भारत में उस समय स्त्रियों की स्थिति पर कौनसा राष्ट्र गर्व नहीं करेगा।

अपि तु स्वयाद्यन समप्रजितः प्रथिताग्रणीर्मम पतिर्येदहम।

वा पुर धर्मस्य न जिता मतिमन् अपि मां विजित्य कुरू शिष्यमि मम।।

अमरकोश[225] ने ऐसी विशेष रूप से विदुषी स्त्रियों को 'उपाध्याया विशेषण प्रदान किया है। अतः सामाजिक दृष्टि से उस काल में स्त्रियों की स्थिति अत्यधिक उन्नत थी। शंकर दिग्विजय द्वारा उभयभारती की बहुमुखी विद्वता एवं विस्तृत ज्ञान का विवरण देते हुए कहा गया है -

सर्वाणिक शास्त्राणि षड्डग वेदान्

काव्यादिकान् वेत्ति परं च सर्वम्।

तन्नास्ति नो वेत्ति यदत्र बाला्।

तस्माद्भूच्चित्र पदं जनानाम्।।

- शंकर दिग्विजय 8/5

यह बाला उभयभारती न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, पूर्वमीमांसा, वेदान्त तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त छन्द, ज्योतिष तथा चारों वेदों और काव्यादि ग्रंथों में पारंगत थी। ऐसा कोई विषय न था, जो उभयभारती नहीं जानती हो। वास्तव में ब्रह्मवादिनी जीवन-पर्यन्त ज्ञानार्जन में लगी रहती थी। प्राचीन काल में भारतीय स्त्रियाँ भी पुरूषों के समान वेदों एवं विविध विधाओं में नियमपूर्वक सर्वोच्च ज्ञान ग्रहण करती थी।

**राजकुमारी उषा -**

राजकुमारी उषा की वेदों एवं वैदिक धर्म में अगाध आस्था थी। बौद्ध मत का प्राबल्य होने पर धर्म जब पृष्ठभूमि में जाता हुआ प्रतीत होने लगा तो राजकुमारी उषा ने संतप्त हृदय से आर्तनाद किया - किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति।

क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, वेदों का उद्धार कौन करेगा? यह एक विदुषी नारी का ही प्रलाप व चिंता थी। उसके उत्तर में वेदों के प्रकाण्ड ज्ञाता महान् मीमांसक कुमारिल भट्ट ने उद्घोषित किया -

मा विभैषि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्ति भूतले।

हे देवी मत व्यथित हो। जब तक भट्टाचार्य इस संसार में है तब तक वेदों का लोप नहीं हो सकता। कुमारिल भट्ट वैदिक धर्म के अनन्य अनुयायी तथा धर्म के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित थे। कुमारिल भट्ट ने पुनः वैदिक मान्यताओं को प्रतिष्ठापित किया था।[226]

'गाथा सप्तशती' से अनेक विदुषी स्त्रियों का पता लगता है।[227] रेखा, रोहा, माधवी, अनुलक्ष्मी, पाहई, बद्धवही, शशिप्रभा जैसी कवयित्रियाँ अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति के लिए विख्यात थी।

स्पष्ट है कि प्राचीन काल में स्त्रियों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध की। चिकित्सा, ज्योतिष, साहित्य, रणकौशल, प्रशासन, राजनीति, अध्यापन, धार्मिक क्षेत्रों में उसका वर्चस्व रहा। वह मंत्रों की ज्ञात्री व निर्मात्री, विधान निर्मात्री, न्यायकर्त्री , ज्योतिर्विद, भूगर्भविद्, योद्धा, अश्वाजनी के रूप में उसने तत्कालीन समाज में अपनी पैठ बनायी।

# Chapter V

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. धर्मदेव विद्यालंकार, **भारतीय समाज शास्त्र**, पृष्ठ 202
2. यशपाल सिद्धांतलंकार, **वैदिक सिद्धान्त**, पृष्ठ 70
3. डॉ. उपेन्द्र ठाकुर, **साहित्य और संस्कृति**, पृ. 14
4. यस्य वाक्यं स ऋषिः। **ऋक्सर्वानुक्रमणी**, 2/4
5. या तेनोच्यते सा देवता। **ऋकसर्वानुक्रमणी**, 2/5
6. यद् अक्षरपरिणामः तच्छन्दः। ऋक्सर्वानुक्रमणी, 2/6
7. निरूक्त, 2/1
8. निरूक्त, 12/13
9. उशना काव्यः ऋग्वेद, 1/83/5
   ऋषिविप्रः पुरएता जनाना मुभुर्थीर उशना काव्येना - **ऋग्वेद**, 9/87/3
   सत्यमहं गभीर: काव्येन सत्यं जातेनासि जातवेदा - **अथर्ववेद** 5/11/3
10. एते वै कवयो यदृषयः- **शतपथ ब्राह्मण**, 1/4/2/8
11. Radha Krishan, **The cultural heritage of India**, Volume Ist, IVth Edition, Calcutta, Page 213
12. **बृहदेवता**, 85-86
13. कक्षीवतो दुहिता घोषा नाम ब्रह्ममवादिन्यृषिः। - **ऋग्वेद 10/39/40 का सायण भाष्य**
14. स्तुतौ तावश्विनी देवौ प्रीतौ तस्या भगान्तरम्।।
    प्रविश्य विजरारोगां सुभगां चक्रतुश्च तौ। - बृहददेवता, 7/46.47
15. आवो रूवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे - **ऋग्वेद**, 1/122/5
16. चोदयंत सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि
    यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चांरू मधवत्सु नस्कृतम।। -**ऋग्वेद**, 10/39/2
17. अमाजुरश्विद् भवथो युवं भगोऽनाशोश्विदवितारापमस्य चित्।
    अन्धस्य चित्रासत्या कृशस्य चिद्युवामिदा हुर्भिषजा रूतस्य चित्। -**ऋग्वेद**, 10/39/3
18. युवं च्यवानं सनयं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।
    निष्टौग्रयमूहशुरुद्भवस्परि विश्वेत्ता वां सतनेषु प्रवाच्या।। -**ऋग्वेद**, 10/39/4
19. पुराणा वां वीर्या प्रब्रता जनोऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा।
    ता वां नु नव्यावसे कारागहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दध्त।। - **ऋग्वेद**, 10/39/5
20. इयं वामह्वे श्रृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मध्यं शिक्षतम्।
    अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम्।। - **ऋग्वेद**, 10/39/6

21. युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृकतं युवद्वयः।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्वपलोमेतवेकृथः। - **ऋग्वेद**, 10/39/8
22. युवं ह रेभं वृष्णा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्त वध्रये।। **- ऋग्वेद**, 10/39/9
23. युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषावस्तो र्हविषा, निहवायमहे।
युवं होत्रा मृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पतौ।। - **ऋग्वेद** 10/40/4
24. युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छेवां नरा।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते थिने शक्तमर्वते।। - **ऋग्वेद**, 10/40/5
25. जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको विचारू हन्वीरूधो दंसना अनु।
आस्मैरीयन्ते निवनेत सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पति त्वनम्।। - **ऋग्वेद** 10/40/9
26. जीवं रूदन्ति विमन्यते अध्वरे दीर्घामनु प्रसिति दीधियुर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिण्वजे।। - **ऋग्वेद** 10/40/10
27. अत्रि गोत्रोत्पन्ना विश्ववारानामिका अस्य सूक्तस्य ऋषिः। - **ऋग्वेद**, 5/28 का सायण भाण्य
28. समिद्धो अग्निर्दिवि श्रोचिरश्रेत्प्रत्यड्डुषसमुर्विया विभाति।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवा ईलाना हविषा घृताची।। - **ऋग्वेद**, 5/28/1
29. अग्ने शधंमहते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रुयतामभितिष्ठा महांसि।। - **ऋग्वेद**, 5/28/3
30. सगिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समाघ्यरेञ्विध्यते।। - **ऋग्वेद**, 5/28/4
31. आजुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे।
वृणी ध्वं हत्यवाहनम।। - **ऋग्वेद**, 5/28/6
32. **ऋग्वेद**, 5/28/4
33. **ऋग्वेद**, 5/28/3
34. **ऋग्वेद**, 5/28/3
35. **ऋग्वेद**, 10/109/5
36. अग्नि वै योनिर्यज्ञस्य। **शतपथ ब्राह्मण**, 1/4/3/11
37. **शतपथ ब्राह्मण**, 3/4/3/19
38. **ऋग्वेद**, 1/106/1, **ऋग्वेद**, 5/76/1
39. **ऋग्वेद**, 5/28/1
40. **ऋग्वेद**, 10/86/6
41. **ऋग्वेद**, 9/86/ का सायण भाष्य

42. ऋग्वेद, 9/86/1
43. ऋग्वेद, 9/86/14, 9/86/15, 9/86/16, 9/86/17
44. ऋग्वेद, 4/18/7 का सायण भाष्य
45. किमण्विदस्मै निविदो भनंतेन्द्रस्यावधं दिधिषतं आपः।
    ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वां असृजदृसिंधून।। - ऋग्वेद, 4/18/7
46. ऋग्वेद, 4/18/7
47. अभिज्ञान शाकुन्तलम (कालिदास ग्रन्थावली) पृष्ठ 492
48. ऋग्वेद, 2/12/11, 4/19/8
49. यजुर्वेद, 34/57
50. अत्रे पुत्रयपालख्या त्वग्दोषपरिहारायानेन सूक्तवेद्र स्तुतवती। -ऋग्वेद, 8/91 का सायण भाष्य
51. ऋग्वेद, 8/91/1
52. ऋग्वेद, 8/91/4
53. ऋग्वेद, 8/91/7
54. ऋग्वेद, 8/91, शांखायन ब्राह्मण सायण द्वारा अपने भाष्य में उद्धृत। - बृह्देवता, 6/103
55. बृह्देवता, 6/106
56. बृह्देवता, 6/101, बृह्देवता 6/103
57. चरक संहिता, 7/4
58. स चेन्द्राणीन्द्रश्चैते त्रयः संहताः संविवादं कृतवन्तः। - ऋग्वेद, 10/86 का सायण भाष्य।
59. ऋग्वेद, 10/86 का सायण भाष्य।
60. शतपथ ब्राह्मण, 14/2/1/8
61. ऋग्वेद, 10/86/6
62. ऋग्वेद, 10/86/9
63. ऋग्वेद, 10/86/10
64. ऋग्वेद, 10/81/15
65. ऋग्वेद, 10/81/16, 10/86/17, 10/86/18
66. ऋग्वेद, 3/49/4
67. महाभारत, शांतिपर्व, 12/330/23-24
68. I therefore conclude that the hymngives us not only a description of the constellation of orion and canis (verses 4 and 5), but clearly and expressly defines the position of sun when he passed to the north of the euator in old times (verses 22) and joined with the legent of the Ribhus we have here unmistakable and reliable internal evidence of the hymns of the Rigveda to

ascertain the period when the traditions in corporated in these hymns were first framed and conceived orion. Page 197.

69. **ऋग्वेद**, 10/86/9
70. The identification of Vrishkapi with orion at once furnishes us with a solution of this questions. We have already seen that the dog is said to commence the new year in Rigveda (1/161/13) and since canis and orion are close to each other, Orion may also be said to have commenced the year. The Devayana, therefore, extended in those days, from the helical to the acroycal rising of Orion, that when Orion rose with the sun, the Devayana, the months after when it rose at the beginning of height. It was the autumnal equinox, the end of the Devayana, Now a Deva ceremonies and sacrifices could be begeen and performed only during the Devayana or as well we find it later traditions only in the Uttarayan, Orion, Page 179.
71. **ऋग्वेद**, 10/86/15
72. **ऋग्वेद**, 10/86/6
73. **ऋग्वेद**, 9/86
74. **ऋग्वेद**, 9/86/का सायण भाष्य
75. टसंगस्य भार्याड़िगरसः सुता शश्वत्याखा भर्तुः पुंस्त्वमुपलक्ष्य प्रीता सती स्वभार्तारं स्तुतवती। - **ऋग्वेद**, 8/1/34 का सायण भाष्य।
76. **ऋग्वेद**, 8/1/34 का सायण भाष्य।
77. **ऋग्वेद**, 8/1/34 का दयानन्द भाष्य।
78. दिव्यो नामांगिरसः ऋषि प्रजायतेः सुता दक्षिणा सा दक्षिणा सा वर्षिका- **ऋग्वेद**, 10/107 सायण भाष्य।
79. **कौषितकी ब्राह्मण**, 15/1
80. **ऋग्वेद**, 10/107/1 का सायण भाष्य।
81. **ऋग्वेद**, 10/107/2
82. **ऋग्वेद**, 10/107/3
83. **ऋग्वेद**, 10/107/4
84. **ऋग्वेद**, 10/107/7
85. **ऋग्वेद**, 10/107/7
86. **शतपथ ब्राह्मण**, 4/3/4/7
87. **ऋग्वेद**, 10/117/6
88. **ऋग्वेद**, 10/107/6, **ऋग्वेद**, 10/107/5
89. अन्त्ययो: षकी-सप्तम्यास्तु भावयव्यरोमशयोः संवादः। - **ऋग्वेद**, 1/126 **का सायण भाष्य**।

90. सप्तम्या रोमशा नाम ब्रह्मवादिनी। - **ऋग्वेद**, 1/126 का सायण भाष्य।
91. उपोप मे परा मृश मामे द्रभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाह्मस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।। - **ऋग्वेद**, 1/126/7
92. **ऋग्वेद**, 1/126/6
93. पुलोम तनया शची स्वात्मानमनेनास्तौत।-**ऋग्वेद**, 10/159 का सायण भाष्य।
94. या तेनोच्यते सा देवता।
95. तस्य तु प्रिया पुलामजा शचीन्द्राणी। **अमरकोष**, 1/1/44
96. **ऋग्वेद**, 10/145
97. **Hymns of the Rgveda**, Griffith, II, Page 596
98. **The Seers of the Rgveda**, Page 289
99. उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः।। **ऋग्वेद**, 10/159/1
100. येनेन्द्रो हविषा कृत्यभवद् द्युम्न्युत्तमः।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम्। **ऋग्वेद**, 10/159/3
101. पूर्वेण इत्यर्थ सहितायाः सप्तत्यास्तु गोधा नाम न्यृषिः ब्रहमवादि - **ऋग्वेद**, 10/134 का सायण भाष्य
102. युवनाश्वपुत्रस्य मान्धातु रार्षम - **ऋग्वेद**, 10/134 का सायण भाष्य।
103. **ऋग्वेद**, 10/134/6
104. **ऋग्वेद**, 10/134/7
105. सं गोष्ट्रेयो वृषभो गोभिरानद् - **ऋग्वेद** 10/111/2
106. **ऋग्वेद**, 10/153
107. एकाष्टका तपसातप्यमाना जजान गर्भ महिमानमिन्द्रम।। - **अथर्ववेद**, 3/10/12
108. कामगोत्राजा श्रद्धा नामर्षिका। **ऋग्वेद**, 10/151 का सायण भाष्य।
109. **ऋग्वेद**, 10/151/1
110. **ऋग्वेद**, 10/151/2
111. **ऋग्वेद**, 10/151/3
112. **ऋग्वेद**, 10/151/4
113. **ऋग्वेद**, 10/151/5
114. **बृहद्देवता**, 86
115. **ऋग्वेद**, 10/189/1
116. **ऋग्वेद**, 10/189/3
117. **ऋग्वेद**, 10/189/3 का सायण भाष्य।

118. **विष्णु पुराण**, 2/10
119. **यजुर्वेद**, 3/54
120. **निरूक्त**, 2/2/1-5
121. सरतेर्वा। **निरूक्त** 12/9
122. **तैत्तिरीय संहिता**, 1/5/3/2-4
123. ए ना मित्री कर्तु संवादमकुर्वन। **ऋग्वेद** 10/108 का सायण भाष्य।
124. **ऋग्वेद**, 10/108 का सायण भाष्य।
125. सरमा सरणात। **निरूक्त**, 11/17
126. नैरूक्ताः पुनः सरमां मध्यमां वाचं मन्यन्ते। **निरूक्त**, 11/17
127. **Sarma the messanger of Gods and Indra. The Hymns of Pigyeda**, Volume II, page 550
128. **ऋग्वेद**, 4/50/4
129. **ऋग्वेद**, 10/154/5
130. **वेद रहस्य**, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ 278
131. **ऋग्वेद**, 10/108 का सायण भाष्य।
132. **वेदान्त सार**, 32
133. अत्र त्रयाणां द्वयानां लोपामुद्रागस्त्यतच्छिष्वैर्यर्दृष्टव्यस्त एवर्षयः। - **ऋग्वेद**, 1/179 का सायण भाष्य।
134. सूक्त प्रतिपाद्योऽर्थो रतिर्देवता - **ऋग्वेद** 1/179 का सायण भाष्य।
135. कश्यपस्य पुत्रयो शिखंडिन्याख्ये द्वे अप्सर सावस्य सूक्तस्य द्रष्ट्रयो। काण्वौ पर्वतनारदावृषी। **ऋग्वेद**, 9/104/का सायण भाष्य।
136. सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत। शिशुं न यज्ञैः परिभूषत श्रिये।। **ऋग्वेद**, 9/104/1
137. समी, वत्सं न मातृभिः, सृजता गय साधनं। देवाव्यं मदमभि द्विशवसं।। **ऋग्वेद**, 9/86/2
138. सनो मदानां पत इंदो देवप्सरा असि। सखेव सख्येगातु वित्तमोभव।। **ऋग्वेद**, 9/104/5
139. सनेमि कृध्यत्मदा रक्षसंकं त्रिदत्रिणं। अपादेवं द्वयुमंहो युयोधिनः - **ऋग्वेद** 9/104/6
140. **ऋग्वेद**, 9/104/3
141. **ऋग्वेद**, 9/104/2
142. **ऋग्वेद**, 9/86/16
143. सुरूचि, प्रजापति (2008), **वैदिक कालीन नारी** (अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध), डा॰ कमलेश शर्मा के निर्देशन में, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा पृ.176-178
144. स्तुता माया वरदा वेदमाता प्रयचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशु कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।।

मह्यं दत्वा ब्रह्मलोकम्॥ (अथर्व. 19/71/1)

145. एष क्षेति रथवीतिर्मधवा गोमतीरनु। पर्वतेष्वपश्रितः॥ (**ऋग्वेद** 5/61/19)
146. निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यानं चक्रथुर्युवानम्। (**ऋग्वेद** 1/118/6)
147. सुरूचि प्रजापति, पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 188-192
148. राजा न सत्यः समितीरियानः। (**ऋग्वेद** 9/92/6)
149. सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। (अथर्व. 7/12/2)
150. नरिष्टा अहिंसिता परैरनभिभाव्या। बहवः संभूय यद्येकं वाक्यं वदेयुः।
तद्धि न परैरति-लघ्ड्यम्। अतः अनभिलघ्ड्यवाक्यत्वाद् नरिष्टेति नाम।, (**सायण-भाष्य अथर्व**, 7/12/2)
151. स्योना सि सुषदा सि क्षत्रस्य योनिरसि।
स्योनामासीद् सुषदामासीद् क्षत्रस्य योनिमासीद्॥
निषसाद धृतव्रतो वरूणः पस्त्यास्वा साम्राज्याय सुक्रतुः॥
(**यजुर्वेद** 10/26/27)
152. अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्धामनु प्रसिर्ति स्पन्दयध्यै। (**ऋग्वेद** 4/22/7)
153. यस्यास्वे घोरासन जुहोम्येषां बन्धानामव सर्जनाय।
जनो भूमिरिति प्रमन्दते निऋर्ति त्वाहं परिवेदविश्वतः॥ (**यजुर्वेद** 12/64)
154. स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अन्हर्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्र॥ (**ऋग्वेद** 5/30/9)
155. रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे (**ऋग्वेद** 10/102/2)।
156. ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवाचचीत्सारथिरस्य केशी।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्दन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम्॥
(**ऋग्वेद** 10/102/6)
157. यमाय यमसूमथर्वभ्यो वतोकां संवत्सराय पर्यायिणी परिवत्सरायाविजातामिदावत्सराया-तीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराविजर्जरां संवत्सराय पलिक्नीभूमुभ्म्यो जिनसन्धं साध्येभ्यश्रचर्ममनम्॥ (**यजुर्वेद** 30/12)
158. (क) सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योस्वनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्त्रवो वाजिनीवति॥
(ख) शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे॥
159. स्त्रीसावित्री। **जैमिनीय ब्राह्मण**, 4/27/17
160. जाया गार्हपत्योऽग्निः। **ऐतरेय ब्राह्मण** 8/24

161. अयोग्यो वाहयेषयोऽपत्नीकः। **तैत्तिरीय ब्राह्मण** 2/2/2/6
162. **शथपथ ब्राह्मण**, 14/3/1/35
163. **तैत्तिरीय ब्राह्मण**, 3/3/3/4
164. **शांखायन ब्राह्मण**, 5/7/6
165. **कौषतिकि गृह्य सूत्र**, 2/5
166. **महाभाष्य**, 4/2/66/4
167. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 2/4/1
168. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 2/4/2
169. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 2/4/3
170. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 2/2/13
171. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 2/4/12
172. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 2/4/13
173. राजयश सूरी शवर्जी, **श्री भगवती सूत्र**, लाब्धी सूरी शवर्जी स्मारक संस्कृति केन्द्र, जिल्द 3, गुजराती एडिशन, पृष्ठ 257
174. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/1/2
175. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/1/2
176. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/6/1
177. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/8/1-2
178. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/8/3
179. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/8/4
180. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/8/7
181. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/8/11
182. **बृहदारण्यकोपनिषद**, 3/8/12
183. बृहदारण्यकोपनिषद, 3/7/1, बृहदारण्यकोपनिषद, 3/3/1
184. **ऐतरेय आरण्यक**, षड्गुरू शिष्य, 3/6/3
185. **ऐतरेय ब्राह्मण**, 5/4
186. **ऐतरेय ब्राह्मण**, 5/4
187. **ताण्डव ब्राह्मण**, 2/1/3
188. **कौषीतकि ब्राह्मण**, 2/8
189. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, **प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन**, 2013. श्री सरस्वती सदन, पृ. 2013

190. जी.के. अग्रवाल, **भारतीय समाज तथा संस्थाएँ**, SBPD पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 313
191. **वाल्मिकी रामायण** (बाल काण्ड) मूल से, 2014

Buck, William (2000), **Ramayana** (अंग्रेजी में) Publication Motilal Banarsidas, I.S.B.N. 9788120817203, अभिगमन तिथि 2018.

192. सोती विरेन्द्र चन्द्र, **"भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति''** पृष्ठ 8-9
193. कृष्ण कुमार**, भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति**, पृष्ठ 284
194. **श्री रामचरितमानस**, लंका काण्ड दोहा 5, 6 चौपाई 1
195. **श्री रामचरितमानस**, लंका काण्ड दोहा 5, 6 चौपाई 2
196. **श्री रामचरितमानस**, लंका काण्ड दोहा 5, 6 चौपाई 3
197. **श्री रामचरितमानस**, लंका काण्ड दोहा 5, 6 चौपाई 2
198. **वाल्मिकि रामायण**, अरण्य काण्ड, चौपाई 8
199. **श्री रामचरितमानस**, लंका काण्ड दोहा 5, 6 चौपाई 3
200. **वाल्मिकि रामायण**, अरण्य काण्ड, चौपाई 4
201. **वाल्मिकि रामायण**, अरण्य काण्ड, चौपाई 5
202. अनुसूइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता।।
रिषि पतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देई निकट बैठाई।।
अरण्य काण्ड वाल्मिकि रामायण चौपाई 1
203. **महाभारत**, वन पर्व, 280 1 से 39
204. **ब्रह्म पुराण**, 3.7.2019
205. धर्मदेव, विद्यालंकार, **भारतीय समाज शास्त्र**, पृ. 205
206. **वाल्मिकि रामायण**, बाल कांड, सर्ग 48-4-33, 49-1.24
207. सोती विरेन्द्रचन्द्र, **'भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति'**, पृष्ठ 14
208. डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य, **भारतीय संस्कृति**, पृष्ठ 35-38
209. डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय, सदस्य सचिव महर्षि सान्दीपनी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन का लेख जो राष्ट्रधर्म में जनवरी 2003 पृष्ठ 15-16 पर प्रकाशित है।
210. **महाभारत** आदि पर्व, 74-108
211. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, **प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन**, पृष्ठ 207.
212. **महाभारत**, विराट पर्व
213. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के ग्रंथ, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक **जीवन**, पृष्ठ 208-212 से

214. **जातक**, चतुर्थ भाग पृष्ठ 105 में कहा गया है कि वाराणसी के राजा के संन्यासी हो जाने पर प्रजा ने रानी से ही राज्य का भार वहन करने का अनुरोध किया, यही साधारण प्रथा थी। ''अन्नो राजा न होति''।
215. कौशाम्बी के राजा उदयन के शत्रु के हाथ बन्दी हो जाने पर उसकी माता ने शसन-कार्य का संचालन किया - **प्रतिज्ञायौगंधरायण**, अंक।
216. **जातक**, सं. 301
217. पाणिनि: 6.2.46, छात्र्यादय: शालायाम। **भगवती सूत्र**, जिल्द 3, पृष्ठ 257 (गुजराती एडिशन)
218. **हर्षचरित**, 4 उच्छवास, पृष्ठ-233
219. विष्णु पुराण, 5/32/22
220. रामचन्द्र वर्मा, **अरब और भारत के सम्बन्ध**, प्रथम संस्करण, मौलाना सय्यद सुलैमान द्वारा व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद, पृ. 120
221. **काव्य मिमांसा** - 5
222. **काव्य मिमांसा** - 5
223. डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, **प्राचीन भारत में नारी**, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 45
224. शंकर दिग्विजय, 8/5
225. सोती विरेन्द्र चन्द्र, **भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति**, पृष्ठ 19
226. यशपाल सिद्धांतालंकार, **वैदिक सिद्धान्त**, पृष्ठ 72
227. सोती विरेन्द्र चन्द्र, **भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति**, पृष्ठ 23

# उपसंहार

शिक्षा प्रकाश का वह स्त्रोत है जो मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाती है। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण (विश्वास + मूल्य + सोच + विचार + व्यक्तित्व), आध्यात्मिक भावना, व्यक्तित्व का निर्माण, विकास और उन्नति, आत्मसंयम, आत्मविश्वास का विकास, समाज के प्रति उत्तरदायित्व, व्यावसायिक कुशलता, प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं की रक्षा करना था।

प्राचीन काल में सैंधव काल से पूर्व मध्य काल तक शिक्षा का स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा। सैंधववासी पढ़ना लिखना जानते थे और उनका एक विकसित पाठ्यक्रम भी था। वैदिक काल में ऋषि कुल एक वैदिक विद्यालय का ही स्वरूप था, जहाँ बालक-बालिकाएँ समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। संहिता काल में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य वर्णों तथा स्वरों का शुद्ध प्रयोग करना, साथ ही वैदिक मंत्रों को कंठस्थ कर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाना था। ब्राह्मण काल में शिक्षा विज्ञान की दृष्टि से विद्यार्थी के ज्ञानार्जन सम्बन्धी विभिन्न उपायों का अविष्कार हो चुका था। जैसे गोष्ठियों में वाद-विवाद की परम्पराऐं, बौद्धिक समस्याओं पर विचार, शास्त्रार्थ आदि। ब्राह्मणकालीन शिक्षा व्यवस्था तथा उपनिषद-कालीन शिक्षा व्यवस्था में स्वरूप की दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं था। किन्तु दोनों शिक्षा व्यवस्थाओं में उद्देश्य की दृष्टि से महान् अन्तर रहा था। उपनिषद युगीन शिक्षा व्यवस्था ब्राह्मणों और क्षत्रियों के आन्तरिक संघर्ष से पर्याप्त प्रभावित हुई। रामायण काल में सत्संग, ज्ञानार्जन में जिज्ञासा एवं शंका के बारे में बताया गया है, महाभारत काल में नित्य वेदाभ्यास पर विशेष जोर दिया गया हैं क्योंकि इससे संस्कार दृढ़ होते है। इस काल में पर्यटन के दौरान वेद-वेदान्तों के गूढ रहस्य को अत्यन्त सरल भाषा में समझाया जाता था। जन शिक्षा के लिए कहानी के माध्यम से उपाख्यानादि देना अत्यधिक उत्कृष्ट था, जो शिक्षा की व्यापकता को भी प्रदर्शित करता है। बौद्धकाल में तत्कालीन प्रचलित शिक्षा प्रणाली से पृथक एक नवीन शिक्षा पद्धति का प्रतिपादन किया था। विद्या संस्कार

के रूप में उपनयन संस्कार के स्थान पर पब्बजा संस्कार तथा गुरूकुलों का स्थान संघों ने ले लिया था।

मौर्यकाल में आचार्य कौटिल्य ने आन्वीक्षिकी की (आत्म विद्या), तीनों वेद (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद) वार्ता (कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धी ज्ञान) तथा दण्डनीति को ही विद्या कहा गया है।

गुप्तकाल में शैक्षणिक क्षेत्र में संस्कृत का प्रचलन था। शिक्षा के विभिन्न विषय हो गये थे और शिक्षा के अनेकों शिक्षा केन्द्रों का महत्व बढ़ता जा रहा था। हर्ष के समय, हर्ष विद्यानुरागी, कवि, नाटककार, ज्ञान संरक्षक व विद्वानों का आश्रयदाता था, इसलिए लोगों में विद्यार्जन करने की प्रवृत्ति बढ़ी हुई थी। फलतः शास्त्र और विज्ञान के जिज्ञासु व्यक्ति थकान और श्रम की चिन्ता न कर विद्या की खोज में प्रवृत्त सैकड़ों मीलों की यात्रा करके शिक्षा-केन्द्रों में पहुँचा करते थे।

शिक्षा का सुव्यवस्थित प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता था, जिसकी आयु अलग-अलग थी। शिक्षा काल अर्थात शिक्षण सत्र छः मास का होता था, प्राचीन शिक्षा पद्धति में अवकाश के दिन भी सुनिश्चित थे, जब अध्ययन-अध्यापन वर्जित रहता था शिक्षा के विभिन्न संस्कार उपनयन, वेदारंभ एवं समावर्तन संस्कार किये जाते थे। शिष्य की योग्यता, प्रवेश परीक्षा अनुशासन एवं दंड की साथ ही परीक्षाऐं, उपाधियाँ, शिक्षा विषय, शिक्षा प्रविधियाँ, शिक्षा के विभाग की उचित व्यवस्था, प्राचीन शिक्षा पद्धति में थी। गुरू-शिष्य स्वरूप, पारस्परिक संबंध, कर्तव्य, शिक्षकों का वर्गीकरण, पारिश्रमिक की उचित व्यवस्था थी। प्राचीन समय के अनेक गुरूकुलों एवं आचार्य का उल्लेख प्राचीन साहित्य में प्राप्त होता है।

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में था, उस समय संस्कृति का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। इस काल में नारी एवं पुरूष की समान साझेदारी थी, नारी को सृष्टि धारण एवं पालन करने वाली माना गया है। वैदिक काल में नारियों की स्थिति सम्मानीय एवं श्रेष्ठ थी तथा नारी शिक्षा के समुचित प्रबन्ध थे। महाकाव्य काल एवं स्मृतिकाल में बाल विवाह, अशिक्षा, विधवा विवाह निषेध आदि नियमों के कारण महिला स्थिति सम्मानजनक नहीं रही।

बौद्ध एवं जैन धर्मों के उद्भव काल में स्त्रियों को अत्यधिक सम्मानित पद प्राप्त था, वे भिक्षुणी एवं साध्वी बनकर ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करती थी।

मौर्यकाल से पूर्व मध्यकाल के मध्य स्त्रियों को अनेक बंधनों में बाँध दिया था। स्मृतिकाल में नारियों की दशा का स्तर गिरा, मनुस्मृति में नारियों की स्वतंत्रता पर सुरक्षा की दृष्टि से अंकुश लगा दिया गया था। समाज में अराजकता, अस्थिरता एवं विदेशी आक्रमणों के कारण महिलाओं की स्थिति पर दुष्प्रभाव पड़ा।

पूर्व मध्यकाल में नारी दशा पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा अत्यधिक संक्रमणशील थी। परिवार में उन स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था, जो पत्नी की अहर्ताओं से युक्त थी। प्राचीन काल में नारी की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक, क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राजनीतिक क्षेत्र से नारी को कोई सरोकार नहीं था, प्रतीक स्वरूप कुछ ही उदाहरण ऐसी स्त्रियों के मिलते हैं, जिनकी प्रशासन से संबद्धता रही थी। इस काल में नारियों का प्रमुख केन्द्र घर माना गया था, फिर भी गृहस्थी में रहकर समाज सेवा के कार्य करती थी। पारिवारिक पृष्ठ भूमि में नारी के पुत्री, पत्नी, माता, बहिन सभी स्वरूप महत्वपूर्ण माने गये है, वेदों एवं पुराणों में स्त्री को सधर्मचारिणी बताया है, जिसके साथ गृहस्थ धर्म का पालन करने से महान् फल की प्राप्ति होती है, आर्थिक क्षेत्र में विभिन्न वर्ग की महिलाओं की भूमिका पृथक-पृथक थी, निम्न वर्ग की महिलाऐं खेती, उद्योगों, में पति की सहायिका होती थी जबकि उच्च वर्ग व सामान्य वर्ग की महिलाऐं घर से बाहर नहीं जाती थी।

धार्मिक क्षेत्र में यज्ञों को सम्पन्न कराने के साथ ही वे वैदिक शिक्षा सम्पन्न होती थी, श्राद्ध के समय मंत्रोच्चारण, पिण्डदान करना, धार्मिक विषयों पर उनका ज्ञान विस्मयकारी होता था। धार्मिक समारोह एवं उत्सवों में (समाजोत्सव, वृक्षोत्सव, देवोत्सव) महिलाओं की पूर्ण सहभागिता थी जो इनके मानसिक प्रसन्नता का कारण होती थी। स्त्रियां जो देवदासी का जीवनयापन करती थी, उन्हें बाल उम्र से ही नृत्य, वाद्य, संगीत में दक्ष कर दिया जाता था। इनका किसी औपचारिक शिक्षण संस्थानों से कोई सम्बन्ध नहीं रहने के कारण यह वर्ग शिक्षा से वंचित रहा।

प्राचीन काल में पूर्व मध्यकाल तक सती प्रथा ने अत्यन्त दृढ़ता प्राप्त कर ली थी। वैधव्य से मुक्ति पाने एवं अशिक्षित एवं अज्ञानी स्त्रियों ने स्मृतिकारों पर विश्वास करके सती होना सहर्ष स्वीकार कर लिया था।

मौर्यकाल समाज में गणिकाओं का भी एक स्त्री वर्ग था जिन्हें नृत्य, शरीर श्रृंगार, गाना, बजाना, आदि विशेष कार्यों में निपुण किया जाता था। वैदिक काल में बालिकाऐं, बालकों के समान मेखला धारण करती थी। इस काल की महिलाऐं वेदाध्ययन, शास्त्रार्थ, मंत्रों की रचना, रणकुशलता आदि कार्यों में निपुण होती थी। उपनिषदों में भी अनेक विदुषी स्त्रियों ने गूढ़ प्रश्नों पर शास्त्रार्थ किया है। महिला के शिक्षा प्राप्ति के दो वर्ग थे- सद्योवधु, ब्रह्मवादिनी। इस काल की स्त्रियाँ आचार्य और उपाध्याया होती थी, जो अध्यापन का कार्य करवाती थी।

महाकाव्य-काल में औपचारिक शिक्षा का स्थान अनौपचारिक शिक्षा ने ले लिया था। महिलाओं के सुरक्षात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए उन्हें शिक्षा कन्या के बान्धवों, घर आए मनीषियों द्वारा, गुरूजनों अथवा नियुक्त उपाध्यायों द्वारा दी जाती थी। स्मृतिकाल में महिला शिक्षा पर सीमित प्रतिबंध लगा दिया था। साधारण परिवारों में शिक्षा का प्रचार अवरूद्ध हो चुका था, किन्तु उच्च परिवारों और राजघरानों में शिक्षा प्रचार पूर्ववत था। प्राचीन काल में सहशिक्षा एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी, जिसमें वे समान रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। कालान्तर में जब स्त्री-शिक्षा कम होने लगी तो सह शिक्षा को भी आघात लगा। इस काल में स्त्रियाँ उच्च शिक्षा ग्रहण करती थी और अपना शैक्षिक योगदान देकर उपाध्याया एवं उपाध्यायानि के पद पर सुशोभित होती थी।

मौर्योत्तर काल में महिला शिक्षा की स्थिति सुरक्षित वातावरण की अनिवार्यता महसूस करवाती है। बालिकाएँ, समानता के शैक्षिक वातावरण में आदर-सम्मान के साथ शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारी थी, मौर्योत्तर काल में कुषाण वंश से प्राप्त सिक्कों, सातवाहन काल से प्राप्त सीसे के सिक्कों एवं अभिलेखों से महिला की सम्मानीय प्रतिष्ठा एवं शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण प्रदर्शित होता है। गुप्तकाल में नारी समाज अपनी पूर्ण अस्मिता एंव विशिष्ट भूमिका में गौरवपूर्ण स्थिति में था।

पूर्व मध्यकाल तक महिलाओं के जीवन स्तर में बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दाप्रथा, बाहरी आक्रमणों आदि कारणों से लगातार गिरावट आती रही। अतः महिला शिक्षा, सामान्य वर्ग की पहुँच से दूर होती चली गई। उच्च वर्गों की स्त्रियाँ धार्मिक रूप से जागृत, शिक्षित एवं साहित्य के प्रति रूचिवान थी, इन्हें संगीत, चित्रकला, नृत्य की शिक्षा भी दी जाती थी। प्राचीन काल की महिलाओं कि शिक्षा स्थिति में वैदिक काल से पूर्व मध्यकाल तक उतार-चढ़ाव आते रहे जिसमें उच्च वर्ग शिक्षा प्राप्ति में अग्रणी रहा। जबकि सामान्य वर्ग एवं निम्न वर्ग की महिलाओं की शिक्षा सामाजिक कुप्रथाओं से प्रभावित होती रही।

वैदिक कालिन विदुषियों ने शास्त्रों का गहन अध्ययन करके विशिष्ट क्षेत्रों में अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। घोषा आयुर्वेद का अध्ययन करके कोढ़ी होते हुए भी विदुषी, ब्रह्मवादिनी एवं विश्वसुन्दरी बनी। विश्ववारा ने अग्नि एवं सूर्य का महत्त्व बताया है तथा यज्ञ में स्त्रियों के समानाधिकार को भी प्रकट किया है, जो परम्परा यथावत चली आ रही है। विदुषी अपाला द्वारा दिये गये सुक्तों में त्वचा सम्बन्धी वैज्ञानिक तथ्य का पता चलता है कि त्वचा कई परतों से मिलकर बनती है, तथा त्वचा संबंधी रोग सफेद दाग (ल्यूकोडर्मा) के उपचार का प्रावधान है जिसका आज भी स्थायी इलाज संभव नहीं है।

ऋषिका इन्द्राणी द्वारा दृष्ट मंत्रों से उत्तम काव्य रूप के दर्शन होते हैं तथा ऋषिका के उत्तरायण सम्बन्धित वर्णन से उसके नक्षत्रिक ज्ञान की गंभीरता विदित होती है। ऋषिका दक्षिणा ने दक्षिणा-जन्य व यज्ञ-जनक का संदर्भ देकर जन्म-जनक भाव सम्बन्ध को उचित तथा विषय स्पष्टता में सहायक बताया है। दक्षिणा को आदरपूर्वक किये गये कार्य का पारिश्रमिक बताया है, इससे कार्य सम्पादक व्यक्ति के प्रति कृतज्ञता तथ कार्य के प्रति समादर व्यक्त होता है। ऋषिका ने सूक्तों द्वारा यह स्पष्ट किया है कि आदर्श समाज में कर्म तथा कर्म करने वाला दोनों ही पूज्य होते हैं।

ऋषिका गोधा ने अपने सुक्तों में विभिन्न साहित्यिक अलंकारों का प्रयोग किया है जिससे ऋषिका के मंत्रों में उत्कृष्ट काव्य-शोभा के दर्शन होते हैं। ऋषिका श्रद्धा के सूक्तों में काव्य सौन्दर्य दृष्टि सर्वत्र माधुर्य तथा पांचाली रीति के दर्शन होते हैं। ऋषिका लोपामुद्रा अपने शिष्यों को उपनिषद, वेदांग का विस्तृत व्याख्यान देती

थी तथा उनकी जिज्ञासाओं का समाधान करती थी। लोपा अपनी शिष्या घोषा व अन्य शिष्यों को कहती हैं कि हम, तुम सबमें समृद्धि का बीज बोएंगें, क्योंकि तुम सब में वैदिक ऋषि और ऋषिका बनने की बीज छिपे हुये हैं। ऋषिका शिखंडिनी-काश्यपी ने अपनी कोमल कल्पनाएँ काव्य के रूप में प्रदर्शित कर यह सिद्ध कर दिया कि एक स्त्री द्वारा ही यह संभव है कि वेदज्ञान जैसे गंभीर विषय को भी वत्सलता से सिक्त कर सरल व हृदय ग्राह्य बना देती है।

परम ज्ञानी गार्गी, पितृ परम्परा से ही विविध शास्त्रों के ज्ञान से सम्पन्न थी। सम्पूर्ण उपनिषद व साहित्य में गार्गी का उल्लेख सिर्फ मिथिला की अध्यात्म सभा के याज्ञवल्क्य संवाद के संदर्भ में ही आता है। याज्ञवल्क्य द्वारा दिए गए उत्तरों से गार्गी ने संतुष्ट होकर याज्ञवल्क्य की श्रेष्ठता का निर्णय विराट् विद्वत सभा में निर्भय होकर सुनाया था जो सत्य प्रमाणित भी हुआ। गार्गी का प्रश्नों के याज्ञवल्क्य के उत्तरों से संतुष्ट होना यह बताता है कि गार्गी पूर्वतः ब्रह्मज्ञान सम्पन्ना थी।

विदुषी गन्धर्व गृहीता द्वारा उदित होम के पक्ष में दिए गए दोनों तर्क उनकी तार्किक शक्ति तथा गहन याज्ञिक ज्ञान को प्रकट करते हैं। ऋषिका के अनुसार सूर्य के उदित होने पर अग्निहोत्र (यज्ञ) करना ही शास्त्र-सम्मत है।

अरून्धवती ने अपने ज्ञान के बल पर सप्तर्षि मंडल में ऋषि पत्नी के रूप में गौरवशाली स्थान पाया। विदुषी 'वाक' ने कृषि क्षेत्र में अनुसंधान किया। रामायण काल की कौशल्या, वाल्मीकि परम्परा में रचित काव्यों और नाटकों में सर्वत्र अग्रमहिषी के रूप में ही वर्णित है।

रामायण की मुख्य महिला पात्र सीता के अनेक प्रसंग उच्चस्तरीय बुद्धिमत्ता एवं आदर्शमय चरित्र प्रदर्शित करते हैं। सीता प्रतिदिन वैदिक सूत्रों द्वारा प्रार्थना किया करती थी। रामायण काल मंथरा, कैकयी की दासी, संरक्षिका एवं आरम्भिक गुरू थी। कैकयी कुशल योद्धा, आखेट में निपुण तथा बुद्धि, तत्परता एवं प्रेम के लिए अपने प्राणों से खेलना उस निर्भया के रूचिकर प्रसंग थे।

रामायण स्त्री पात्र अनुसूया ने सीता जी के माध्यम से संसार को संदेश दिया कि जिस घर में स्त्री प्रसन्न है, उस घर में समृद्धि का आगमन निश्चित है, परन्तु जहाँ स्त्री प्रसन्न नहीं है, वहाँ चाहे कितनी भी सम्पत्ति क्यों न हो, घर में

समृद्धि का वास नहीं होता। महाभारतकालीन कुंती, पंचकन्याओं में से एक है, जिन्हें चिर-कुमारी कहा जाता है, कुंती को देवताओं का आह्वान करने का वरदान मिला हुआ था, अतः उसने अपनी तपस्या से देवताओं को प्रसन्न करने की विद्या प्राप्त की हुई थी, जिस विद्या का प्रयोग समय-समय पर कुंती ने किया। कुंती अथर्ववेद में पारंगत थी।

महाकाव्य की मुख्य पात्र द्रोपदी ने एक वृहद शास्त्रार्थ के माध्यम से प्रारब्ध-जैसे कठिन विषयों पर अपनी मीमांसा प्रस्तुत की। द्रोपदी दैवीय व मानसिक विषयों की सूक्ष्म चीजों की ज्ञानी महिला थी। पुरूषार्थ को प्रधान मानकर देशकाल के अनुसार साम, दाम, दंड, भेद नीति का परामर्श युधिष्ठिर को देती है। इसी महाकाव्य काल की विदुषी शकुन्तला, वैदिक ज्ञान में निष्णात थी। शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त की राजसभा में वेदों से प्रचुर प्रमाण उद्धृत करते हुए जो नीतिपरक तर्क प्रस्तुत किए गए थे, वे विदुषी के अनुपम गहन बौद्धकालीन भद्राकुण्डलकेशा ने शास्त्रों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया था, वह परम विदुषी थी एवं विद्वानों एवं धर्माचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया करती थी। भिक्षुणी खेमा, अत्यन्त विदुषी, बुद्धिमती, वाग्मी, सुशिक्षिता और विलक्षण प्रतिभा व बुद्धि की धनी थी। उसकी कीर्ति इतनी विस्तृत थी कि उसके पास जाकर अनेक ज्ञान जिज्ञासु, दार्शनिक विषयों पर विचार विमर्श कर अपनी शंकाओं का समाधान किया करते थे। बौद्ध विदुषी संघमित्रा तीनों पिटकों की विद्याओं में निपुणता रखती थी। बौद्ध आगमों की महान शिक्षिकाओं के रूप में उनकी बड़ी ख्याति थी। जयंती जैन साहित्य की भिक्षुणी थी जो धर्म और दर्शन की प्यास में अविवाहित रही।

मौर्येत्तरकालीन राजश्री सभी कलाओं में निपुण थी, राज श्री ने प्रशासनिक दायित्व का निर्वाह भलीभाँति किया था। चित्रलेखा एक उच्चकोटी की चित्रकार थी, जिसने अभिज्ञानार्थ चित्रपट पर देव, दानव, गन्धर्व और मनुष्यों के चित्र बनाये थे। रूसा ने प्रसव विज्ञान पर प्रमाणिक एवं पांडित्यपूर्ण ग्रंथ लिखा था। राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी कवयित्री एवं टीकाकार दोनों ही थी। अवन्ति का मानना था कि कोई भी वस्तु गुण या दोष से युक्त नहीं है, वह तो कुशल कवि की उक्तियाँ हैं जो उन्हें सगुण अथवा निर्गुण बना देती है। मोरिखा

एवं विज्जा 8वीं सदी की महान कवयित्रियाँ थी। विज्जा ने मानव प्रेम एवं प्रकृति पर मुख्य रचनाएँ की है। उभय भारती शंकराचार्य एवं मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ की निर्णायिका थी।

वैदिक काल में अथर्ववेद-संहिता में "वेदमाता" की स्तुति करते हुए कहा गया है कि यह वेदमाता द्विजों को पवित्र करने वाली एवं श्रेष्ठ वर देने वाली है। ऋग्वेद के पंचम मण्डल के 61वें सूक्त में वर्णित राजा "रथवीति" की पत्नी ने अपनी पुत्री का विवाह ऐसे व्यक्ति से करने की अभिलाषा व्यक्त की है, जो मंत्रदर्शन के कारण महर्षि की उपाधि से विभूषित हो। रथवीति की पत्नी रात्रि अपनी पुत्री मनोरमा को वेदमाता के रूप में देखना चाहती है। उस समय सर्वसाधारण समाज की दृष्टि में भी मंत्र-द्रष्टाओं का अत्यधिक महत्व था।

वैदिक काल में नारी विधान निर्मात्री एवं प्रशासनिक भूमिका का सार्थक रूप रही। अथर्व संहिता में "सभा" और "समिति" को प्रजापति की पुत्रियाँ कहा गया है। अथर्वसंहिता (7/12/2) में "सभा" को "नरिष्टा" कहकर भी पुकारा गया है, जिसका निर्णय ही विवादास्पद विषयों में सायणाचार्य के अनुसार अन्तिम माना जाता था। ऋक संहिता दशम मण्डल के 85वें सूक्त में प्रयुक्त "साम्राज्ञी" शब्द सार्थक है। यजुः संहिता के मंत्रों के मनन से प्रतीत होता है कि इस समय राजाओं की पत्नियाँ दूसरों को न्याय एवं राजनीति की शिक्षा देती थीं और चक्रवर्ती राजा की तरह ही स्त्री-समाज की समस्याओं पर अपना निर्णय प्रदान करती थी। साथ ही नारी को "घोरा" कहकर उसमें न्याय द्वारा दुष्टदलन के सामथ्र्य की पुष्टि की गई है।

वैदिक-संहिताओं में वर्णित विषयों से स्पष्ट है कि उस समय की नारी विविध विद्याओं की विधाओं से परिचित थी। नारी, विधायिका, न्याय पालिका, कार्यपालिका आदि में सहभागी होती हुई संहिता-कालीन परामर्शदात्री नारी दौत्य-कर्म में भी निपुण थी। देश-जाति के अभ्युत्थान हेतु किये जाने वाले कार्यों में सु-अवसर हेतु लग्नादि का ज्ञान आवश्यक होता है संभवतः संहिताकाल में ज्योतिष शास्त्र की अनिवार्यता की ओर संकेत करते हुए यजुः संहिता में उसका महत्व कहा गया है। वेद-विद्या की ज्ञाता नारी की उस समय भूगर्भ-शास्त्र में भी रूचि थी। ऋक संहिता के सूक्तों में नारी को भूगर्भ-शास्त्र वेत्ता होने की सलाह दी

गई है। यजुः संहिता में नारी के लिए "अश्वाजनी" शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है घोड़ों को प्रशिक्षण देने वाली।

किसी भी राष्ट्र के उत्थान में वहाँ के नागरिकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्र को शिखर पर पहुँचाने के लिए राष्ट्रीय भावना से समर्पित एवं निष्ठापूर्ण राष्ट्र प्रगति के प्रति समर्पित दृष्टिकोण होना आवश्यक है। ऐसे सुयोग्य नागरिकों को बनाने में भारतीय नारी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है क्योंकि इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसमें सराहनीय क्षमता है और वह उत्कृष्ट रूप से उपयुक्त है। अतः राष्ट्र की उन्नति का मुख्य मानव स्त्रोत नारी है।

नारी वैदिक-युगीन अपनी प्रतिष्ठा एवं गरिमा को प्राप्त हो, उसे गौरवपूर्ण स्थान मिले इस तथ्य की सार्थकता सिद्ध करने के लिए भारतीय संस्कृति के तत्सम्बन्धी प्रतिमानों, परम्पराओं, मान्यताओं, सिद्धान्तों एवं दृष्टांतों से जनमानस को अवगत कराने तथा उनमें जागरूकता उत्पन्न करने के लिए इस शोध को उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। स्त्री राष्ट्र का एक अत्यन्त आवश्यक घटक है, साथ ही स्त्रियों की स्थिति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर करती है; क्योंकि ये उत्तम संतान उत्पन्न करती है जिससे उत्तम नागरिकों वाला उन्नत राष्ट्र बनता है। प्रत्येक समाज की संस्कृति और आदर्शों का मूल्यांकन उसकी स्त्रियों की स्थिति पर निर्भर करता है, अतः स्त्री की कभी भी अवहेलना नहीं होनी चाहिए। वसिष्ठ-स्मृति में कहा गया है कि एक हजार पिताओं से माता प्रतिष्ठा में अधिक मानी जाती है। मानवीय मूल्यों का सृजन माँ की गोद में होता है न कि कहीं और। वह ही अपनी संतान को उसके विविध दायित्वों का बोध कराती है। अतः संस्कारित संतान ही सुसंस्कृत, सदाचारी एवं जीवन मूल्यों की अनुयायी होगी।

जिस देश की नारी जितनी अधिक सक्षम, सुशिक्षित, सुसंस्कृत और चैतन्य होगी वह देश भी उतना ही सक्षम, उसकी सामाजिक सोच उतनी ही जागृत, उसका चरित्र, चिन्तन और संकल्प उतना ही उच्च होगा।

वैदिक युग में पुत्र एवं पुत्री में कोई अन्तर नहीं था। कन्या को पुत्र के समान ही माना जाता था। पुत्र एवं पुत्री में कोई भेद-भाव नहीं था।

प्राचीन काल में प्रत्येक युग में अनेक विदुषियों ने अपनी असाधारण विद्वता से भारतीय संस्कृति के प्रति अप्रतिम योगदान दिया है। वैदिक काल की ऋषिकाओं द्वारा सूक्तों, मंत्रों एवं वैदिक साहित्य की रचना करने के कारण इन्हें विशिष्ट विभूति की उपाधि प्रदान करता है। अनेक विदुषियाँ - दार्शनिकाएँ, आचार्य, ब्रह्म विद्या में निपुण, शास्त्रों, सैनिक शिक्षा, आखेट, प्रशासनिक, राजनीतिक शिक्षा में पारंगत हुआ करती थी। बौद्ध, जैन धर्म भिक्षुणियाँ बौद्ध व जैन परम्पराओं की शिक्षा में निपुण होती थी। संघों पर शिक्षार्जन का कार्य हुआ करता था। अनेक विदुषी नारियों ने इतिहास में आदर्शमय व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी है, जो प्रत्येक स्त्री के लिए अनुकरणीय एवं सम्माननीय है। साहित्य जगत में अनेक कवयित्रियों ने प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की है, चित्रकला, चिकित्सा विज्ञान, कृषि विज्ञान, शास्त्रार्थ में विशेष उपलब्धि प्राचीन काल की महिलाओं की रही है। इस काल की नारी की यह विशेषता थी कि वह अपने किसी भी क्षेत्र या कला में निपुणता हासिल करती थी। साहित्य क्षेत्र में वह ज्ञान पिपासु प्रतीत होती है, उसकी वैदिक मंत्रों एवं देवताओं के स्तुति मंत्रों पर पर्याप्त अधिकार रखती थी। एक सुशिक्षित, विकसित राष्ट्र के लिए विदुषियों की आवश्यकता इस राष्ट्र को है, प्राचीन स्त्रोतों से प्राप्त ज्ञान से वर्तमान महिला एवं पुरूष शिक्षा को और सशक्त बना सकते हैं। प्राचीन साहित्य स्त्रोतों को बाहरी आक्रमणकारियों द्वारा क्रूरता से नष्ट किया गया और शिक्षा संस्थाओं को रौंदा गया है। अतः साक्ष्यों के अभाव में प्राचीन भारतीय इतिहास परम्पराओं की महत्वपूर्ण ज्ञान से वंचित रह जाते हैं।

**प्राचीन भारतीय शिक्षा की आज के संदर्भ में प्रासंगिकता -**

आज के युग की आवश्यकताओं को अपनी प्राचीन परम्पराओं से संयुक्त करने और उनको आवश्यकता के अनुरूप ढालने में ही व्यक्ति और समाज की उन्नति और गरिमामय स्वरूप निहित है। प्राचीनकालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, धार्मिक और शैक्षिणिक गतिविधियाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है अतः हम वर्तमान युग की आवश्यकताओं को इसमें संयोजित कर सकते हैं तथा प्रचलित शिक्षा पद्धति को समृद्ध बना सकते हैं।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी का गुरूजनों के निकट सम्पर्क एवं निरीक्षण में रहना, विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन के साथ प्राचीन विज्ञान, कला के अध्ययन की व्यवस्था, शैक्षणिक संस्थानों में शोध और अध्ययन का दृष्टिकोण होना चाहिए। उच्च शिक्षा संस्थाओं में, प्राचीन आठ स्थान (अग्निस्थान, ब्रह्म, विष्णु, महेन्द्र, विवस्वत, सोम, गरूड़ और कार्तिकेय) के समान विभिन्न संकायों के साथ प्राचीन दर्शन, साहित्य, वैज्ञानिक विषयों का समावेश किया जाए।

भारतीय मनीषियों के अनुसार शिक्षा निःशुल्क हो, अर्थात् व्यावसायिक बनाने के विरूद्ध थे। विद्यादान को हमारी संस्कृति में महान पुण्य कार्य समझा गया है अतः शैक्षणिक संस्थानों के संचालनकर्ता उचित रीति से उचित स्थानों से शिक्षा प्रसार करने के लिए धन प्राप्ति हेतु सम्पर्क कर सकते हैं।

# संदर्भ एवं संबंधित साहित्य

## संदर्भ मूलग्रंथ सूची


- आप्टे, गणेश, सं. (1865). **ऐतरेयआरण्यकम**. पूणे: आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थथावली.
- आप्टे, गणेश (1936). **आश्वलायनगह्यसूत्रम**. पूणे: आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली 105.
- आप्टे, विनायक गणेश (1938). **तैत्तिरीय ब्राह्मण**. पूणे: आश्रम ग्रन्थावली
- आयंगर, रंगास्वामी (1941). **बृहस्पति स्मृति**. बड़ौदाः गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज.
- भट्ट, जी. एच. सं. (1960). **रामायण खण्ड** 1-7. बड़ौदाः ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट.
- भट्टट, कृष्ण., एवं शर्मा, वासुदेव सं. (1925). **ऐतरेय ब्राह्मण**. बम्बई. निर्णय सागर प्रेस.
- चन्द्र, थानेश (2011). **याज्ञवल्क्य स्मृति**. दिल्लीः परिमल पब्लिकेशन प्रा. लि.
- चतुर्वेदी, ज्वाला प्रसाद (2013). **मनुस्मृति**. हरिद्वारः रणधीर प्रकाशन.
- दत्त, चक्रपाणि (1941). **चरक संहिता** (आयुर्वेद दीपिका), तृतीय संस्करण. बम्बई: निर्णय सागर प्रेस.
- दत्त, मातृ., नन्द, विश्वेश्वर (1973). **अथर्ववेद** - एक साहित्यिक अध्ययन. होशियारपुर: भारत भारती ग्रन्थमाला.
- देव, सुदर्शन (1974). **यजुर्वेद भाष्य भास्कर**. दिल्ली: आर्ष साहित्य प्रचार, ट्रस्ट.
- गौतम, चमनलाल. एवं माहेश्वरी शैलेन्द्र बी. (2000). **मनुस्मृति**. मथुराः सरस्वती संस्थान. भीकमचंद मार्ग.
- हिवटने, वी. एच. सं. (1962). **अथर्ववेद**. नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसी लाल.
- झा, गंगानाथ सं. (1967). **मनुस्मृति** (मेघातिथि भाष्य सहित) कलकत्ता:
- कुमार, प्रहलाद (1977). **ऋग्वेदालंकार**, प्रथम संस्करण. दिल्ली: मुंशीराम मनोहर लाल.
- महादेव सं. (1985). **तैत्तिरीय आरण्यकम**. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
- महेश्वर, स्कन्दस्वामी, **भाष्य टीका** (2009). निरूक्त. दिल्लीः परिमल पब्लिकेशन्स.
- मिश्र, ज्वाला प्रसाद (1969 संवत्). **यजुर्वेद**. बम्बई: श्री वैंकटेश्वर मुद्रणयन्त्रालय.
- पाण्डेय उमेश चंद्र हिन्दी व्याख्याकार (1966). **गौतम धर्मसूत्र**. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
- पाण्डेय, उमेशचन्द्र व्या. (1967). **याज्ञवल्क्य स्मृति**. वाराणसीः चौखम्बा सीरीज.

- पांडेय, उमेश चंद्र हिन्दी व्याख्याकार (1969). **आपस्तम्ब धर्मसूत्र**. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
- पांडेय, उमेश चंद्र हिन्दी व्याख्याकार (1969). **विष्णु धर्मसूत्र**. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
- पाण्डेय , उमेशचंद्र हिन्दी (1972). **बोधायन धर्मसूत्रम**. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
- पंडित, एस.पी. सं. (1869). **रघुवंशम कालिदास**. बम्बईः संस्कृत सीरीज.
- पंडित, एस. पी. सं. (1889). **मालविकाग्निमित्रम**. कालिदास. बम्बईः संस्कृत सीरीज.
- राय, रामकुमार सं. (1963). **बृहदेवता**, प्रथम संस्करण. वाराणसीः काशी संस्कृत ग्रन्थमाला. 164.
- रघुवरी संपाः (सं. 2040). **रामायण वाल्मीकि**. गोरखपुरः गीता प्रेस.
- सातवलेकर सं. (1942). **मैत्रायणी-संहिता**. पारडी: स्वाध्याय मण्डल.
- सातवलेकर, दामोदर, सं. (1943). **काठक संहिता**. पारडी: स्वाध्याय मण्डल.
- सातवलेकर, दामोदर भाष्य (1985). **अथर्ववेद का सुबोध भाष्य**. पारडीः स्वास्ध्याय मण्डल.
- शास्त्री, रामकृष्ण हर्ष सं. (1982). **मैत्रायणी मानव गृहयसूत्रम**. नई दिल्ली: पाणिनी.
- शास्त्री, देवदत्त., एवं जयमंगला टीका सहित (1964). **कामसूत्रः** वात्स्यायनः बम्बईः निर्णय सागर प्रेस
- शास्त्री, वासुदेव लक्ष्मण सं. (1983). **रामायण**. वाराणसीः इण्डोलोजिकल बुक हाउस.
- शास्त्री, चित्रस्वामि, सं. (1987). **तांडव ब्राह्मण**, द्वितीय संस्करण. वाराणसी: काशी संस्कृत ग्रंथमाला 105, चौखम्बा संस्कृत संस्थान.
- शर्मा, जयदेव भाष्यकर (1930). **यजुर्वेद संहिता**. अजमेरः आर्य साहित्य मण्डल.
- शर्मा, जयदेव भाष्य. (1989 वि.) **अथर्ववेद संहिता**. अजमेरः आर्य साहित्य मण्डल,
- शर्मा, श्री राम सं. (1962). **सामवेद (सायण भाष्य सहित).** बरेलीः संस्कृति संस्थान.
- शर्मा, श्री राम व्या. (1965). **ऋग्वेद**. बरेली: संस्कृत संस्थान.
- सिंह, नागशरण सं. (1985). **ब्रह्म पुराणम**. दिल्ली: नाग पब्लिकेशन्स.
- सिंह, नागशरण सं. (1985). **मत्स्य पुराणम**. दिल्ली: नाग पब्लिकेशन्स.
- सिंह, नागशरण सं. (1985). **पदम पुराणम**. दिल्ली: नाग पब्लिकेशन्स.

- सिंह, नागशरण सं. (1985). **वराह पुराणम**. दिल्ली: नाग पब्लिकेशन्स.
- सिंह, नागशरण सं. (1985). **वायु पुराण**. दिल्ली: नाग पब्लिकेशन्स.
- सिंह, नागशरण सं. (1985). **विष्णु पुराणम**. दिल्ली: नाग पब्लिकेशन्स.
- सुकतनकर, वी.एस. (1959). **महाभारत** (खण्ड 1-19). पूना: ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट.
- सुषमा, सरस्वती (संवत 2011). **कण्व-संहिता** (भाष्य संग्रह). वाराणसीः संस्कृत विश्वविद्यालय.
- वासुदेव, सं. हिन्दी व्याख्याकार (1968). **पाराशर स्मृति**. वाराणसीः चौखम्बा, संस्कृत सीरीज.
- वेबर, अतवेर्तेन सं. (1972). **वाजसनेयि संहिता**. वाराणसीः चौखम्बा, संस्कृत सीरीज.
- विद्यालंकार, जयदेव सं. (1988 वि.). **सामवेद संहिता**. अजमेरः आर्य साहित्य मण्डल.


**संदर्भ ग्रंथ सूची**


- आनन्द, अन्विता (1992). **गुप्तकाल में नारियों की स्थिति**. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स.
- अग्निहोत्री, प्रभुदयाल (1963). **पतंजलिकालीन भारत**. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद.
- अग्रवाल जी.के. (2007). **भारतीय सामाजिक संस्थाएँ**. आगराः एसबीपीडी पब्लिकेशन हाउस.
- अग्रवाल, वासुदेवशरण (संवत 2012). **पाणिनिकालीन भारतवर्ष**. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास.
- अल्तेकर, ए.एस. (1954). **गुप्तकालीन मुद्राएँ (प्रथम संस्करण).** पटनाः पटना प्रकाशन.
- अल्तेकर, अनंत सदाशिव (संवत 2016). **प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति** (द्वितीय संस्करण). प्रयागः भारती-भंडार.
- अल्तेकर, ए. एस. (1938). The Position of Women in Hindu Civilization, Delhi, मोतीलाल बनारसीदास.
- अंतोनोता (1981). **भारत का इतिहास**. दिल्ली: प्रगति प्रकाशन.
- भट्ट, गोवर्धन. हिरियन्ना, एम. (2018). **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन
- बेनर्जी, जे. एन. (1959). **डवलपमेंट ऑफ हिन्दी आइकोनोग्राफी**. कलकत्ताः

- बेनर्जी, आर.डी. (1933). **ईस्टर्न इण्डियन स्कूल ऑफ मिडाइवल स्कल्पचर्स**. दिल्लीः
- भट्टसाली, एन.के. (1958). **आइकोनोग्राफी ऑफ बुद्धिष्ट एण्ड ब्राह्मनीकल स्कल्पचर्स**. ढाकाः इन ढाका म्यूजियम.
- भारद्वाज, कमलेश (2002). **भारतीय संस्कृति के मूलाधार**. जयपुर: पोइन्टर पब्लिशर्स.
- बनर्जी, आर.डी. (1983). **द एज ऑफ दी इंपीरियल गुप्ताज**. बनारस: बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी.
- बनर्जी, एस.पी. (1962). **धर्मसूत्राज ए स्टडी इन देअर ऑरिजिन एण्ड डवलपमंट**. कलकत्ता: पुनथी पुस्तक.
- बसु, जे.ए. (1969). **इण्डिया ऑफ द एज ऑफ द ब्रह्मणाज. कलकत्ता**: संस्कृत पुस्तक भंडार.
- बेडर, क्लेसिस (1925). **वुमन इन एंशिएंट इण्डिया. लंदन**: केगन पॉल ट्रेंच टरबनर,
- भारद्वाज, कमलेश (1999). **प्राचीन भारत में समाज एवं राज्य**. जयपुर: पोइन्टर पब्लिशर्स.
- भारती, धर्मवीर (1955). **सिद्ध साहित्य (प्रथम संस्करण).** इलाहबादः किताब महल.
- भवालकर, वनमाला (1964). **महाभारत काल में नारी सागर**: अभिनव साहित्य प्रकाशन.
- कॉवेल, ई.बी. (2002). **द जातक स्टोरीज**. बम्बई: मुंशीराम मनोहर लाल.
- चैबे, अर्जुन. काणे, पी.बी. (2014). **धर्मशास्त्र का इतिहास** (प्रथम संस्करण). लखनऊ उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान.
- दास, एस.के. (1930). **द एजूकेशनल सिस्टम ऑफ द एंशिएंट हिन्दूज**. कलकत्ता: ट्राईचन्द्रा कॉलेज.
- दास, आर.एम. (1962). **वुमन इन मनु एण्ड हिज सेवन कमेन्टेटर्स.** वाराणसी: कंचना पब्लिकेशन्स.
- दूबे, सत्यमित्र (1964). **मनु की समाज व्यवस्था** (प्रथम संस्करण). किताब महल.
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद (1952). **प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद**. बम्बईः हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर.
- गांगुली, ओ. सी. (1956). **ओरीसन स्क्लपचर्स एण्ड आर्कीटेक्चर**. कलकत्ताः आक्सफॉर्ड बुक एण्ड स्टेशनरी.

- गौरव, प्रशान्त. प्रसाद, ओमप्रकाश (2017). **प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास**. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- हण्डी, क्यू.के.के. (1949). **यशस्तिलक चम्पू एण्ड इण्डियन कल्चर**. भैरोनाथ. वाराणसीः शालापुर विश्वविद्यालय.
- प्रो. इन्द्र (1940). **स्टेटस आफॅ वुमन इन एंशिएंट इण्डिया**. लाहौरः द मिनर्वा बुकशाप.
- इन्द्रा, एम.ए. (1955). **द स्टेटस ऑफ वीमन इन एन्शिएंट इण्डिया**. वाराणसी: मीनर्वा बुकशाप.
- जैन, के.सी. (1984). **लाइफ इन एंशिएन्ट इण्डिया एज द जैन केनन्स एण्ड कामेनट्रीज** (द्वितीय संस्करण). बम्बई: मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स.
- जैन, जगदीशचन्द्र (1965). **जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज**. वाराणसी. चैखम्बा विद्याभवन.
- जायसवाल, पी.के. (1930). **मनु एण्ड याज्ञवल्क्य**. कलकत्ता: बटरवर्थ इण्डिया.
- जोशी, किरीट, **वेद और भारतीय संस्कृति**, 2003, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- काणे, पी. वी. (1941, 1946, 1953). **हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र**. जिल्द (2, 3, 5). पूनाः सेन्ट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट.
- कापड़िया, के.एम. (1963). **भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार**. दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास.
- कोशाम्बी, डी.डी. (1975). **कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एन्शिएंट इण्डिया**. दिल्ली: विकास पब्लिशिंग.
- कविराज, गोपीनाथ (1963). **भारतीय संस्कृति और साधना**. प्रथम संस्करण. पटनाः बिहार राष्ट्र भाषा परिषद.
- कीय, एफ.ई. (1918). **एंशिएन्ट इंडियन एजूकेशन**. बोम्बे: आक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- कुमार, कृष्ण (2017). **प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति**. नई दिल्ली: श्री सरस्वती सदन.
- कुमार, कृष्ण (2008). **प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति**. नई दिल्ली. श्री सरस्वती सदन सफदरजंग.
- लुनिया, बी. एन. (1986). **प्राचीन भारतीय संस्कृति** (प्रथम संस्करण). आगराः लक्ष्मीनारायण अग्रवाल.
- मधुकर, महेंद्र (2019). **लोपामुद्रा**. नई दिल्लीः विद्या विहार.
- मिश्रा, शिवानी (2019). **वैदिक कालीन विदुषियाँ**. दिल्लीः परिमल पब्लिकेशन्स.

- मिश्र, जयशंकर (2013). **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास**. पटनाः बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
- मुकर्जी, आर. के. (1951). **एंशियंट इण्डियन एजूकेशन** (द्वितीय संस्करण). लन्दनः मेकमिलन एण्ड को. लिमिटेड.
- मुकर्जी, राधाकुमुद (1979). **वुमन ऑफ इण्डिया**. गर्वमेंट ऑफ इण्डिया पब्लिकेशन.
- पाण्डेय, राजबली (1978). **हिन्दू संस्कार**. वाराणसीः चौखम्बा प्रकाशन.
- पाण्डेय, विमलचन्द्र (1960). **भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास** (प्रथम संस्करण). इलाहबादः हिन्दुस्तान एकेडमी.
- पाण्डेय, विमलेश कुमार (2006). **प्राचीन भारतीय मुद्राएँ**. दिल्लीः भारत प्रकाशन.
- पणिक्कर, के.एम. (2003). **हिन्दू समाज अपने निर्णय के द्वार पर**. हरिद्वार. द्वारिका प्रकाशन.
- पाटिल, डी.आर. (1946). **कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायु पुराण**. पूना: डेक्कन कॉलेज.
- पी.एल.गौतम, डॉ. कमलेश शर्मा, **प्राचीन भारत**, जैन प्रकाशन मंदिर, जयपुर 2004-5 (पंचम संस्करण)
- उपाध्याय, रामजी (1963). **प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति**. इलाहबादः रामनारायणलाल, बेनी माधव.
- राय, मन्मथ (सं. 2013). **प्राचीन भारतीय मनोरंजन** (प्रथम संस्करण). इलाहबादः भारतीय विद्या भवन.
- राय, सिद्धेश्वरी नारायण (1968).**पौराणिक धर्म एवं समाज**. इलाहबादः पंचनंद प्रकाशन.
- राय, सिद्धेश्वरी. नारायण (1988). **पौराणिक धर्म एवं समाज**. इलाहबाद: पंचनंद पब्लिकेशन.
- सेन, चतुर (1958). **भारतीय संस्कृति का इतिहास**. मेरठः मेरठ प्रकाशन.
- सालटोर, आर. डब्ल्यू. (1943). **लाइफ इन गुप्ता एज.** लेमिंगटन रोड बम्बईः पॉपुलर बुक डिपों.
- शर्मा, बी. एन. (1966). **सोशल लाइफ इन नार्थन इण्डिया**. (प्रथम संस्करण). दिल्लीः मुंशीलाल, मोहनलाल.
- शर्मा, गजानन (1971). **प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी**. इलाहबाद: रचना प्रकाशन
- शर्मा, गजानन (1971). **प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी**. इलाहबाद: रचना प्रकाशन.

- शर्मा, डॉ. कमलेश (2007). **प्राचीन भारत में राजनीतिक एवं विधिक विचार**. जयपुर: आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स.
- शर्मा, पं. मैयाराम (2028 वि.). **विवाह पद्धति**. दिल्ली: मोतीलाल बनारसी दास.
- शर्मा, श्री रामआचार्य (1966). **बीस स्मृतियाँ**. बरेलीः संस्कृत संस्थान.
- श्री, सम्पूर्णानन्द (1956). **हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान** (द्वितीय संस्करण). काशीः भारतीय ज्ञान पीठ.
- सोती, विरेन्द्र चन्द्र (2009). **भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति**. नई दिल्लीः डी.के. प्रिंटवल्र्ड (प्रा.) लिमिटेड.
- स्टेनवेल, लुडविक (1953). **वणिकावृत संग्रह** (प्रथम संस्करण). होशियारपुरः विश्वेश्वरआनंद संस्थान.
- ठाकुर, लक्ष्मीदत्त (1970). **प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन**. लखनऊः हिन्दी समिति.
- त्रिपाठी, सी.बी. (1968). **भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास**. गोरखपुर: दुर्गावती प्रकाशन.
- त्रिपाठी, चन्द्रबली (1981). **भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास** (द्वितीय संस्करण). गोरखपुरः दुर्गावती प्रकाशन.
- त्रिपाठी, लालकृष्ण (1992). **प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति** (खण्ड 2). वाराणसी: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय.
- उपाध्याय, वासुदेव (1961). **प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन**. पटनाः प्रज्ञा प्रकाशन.
- उपाध्याय, वासुदेव (1964). **द सोशीओ रिलीजस कन्डीशन आफॅ नॉर्थ इण्डिया**. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
- वेदमित्र (1964). **एजुकेशन इन एंशिएंट इंडिया**. दिल्ली: आर्य बुक डिपो:
- वर्मा, हरीशचंद (1999). **मध्यकालीन भारत**. दिल्लीः दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- विद्यालंकार, अत्रिवेद (1958). **प्राचीन भारत में प्रसाधन** (प्रथम संस्करण). काशीः भारतीय ज्ञान पीठ.
- विद्यालंकार, सत्यकेतु (1978). **प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन**. नई दिल्लीः श्री सरस्वती सदन, सफदर जंग एन्क्लेव.
- योगी, मोहनलाल (सं. 2013). **जातककालीन भारतीय संस्कृति**. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद.

➢ वाटर्स, टी. (1907). **हुएनसांगस ट्रेवल्स इन इण्डिया**. लन्दन:

## JOURNALS

➢ Goel, Shashi (2012). The status of women in Ancient India. **Atishaykalit, International Journal**. 1(1), 73-7

➢ गुप्ता, दीपा (2017). वैदिक कालीन नारी की स्थिति (वेदों में नारी का गौरव). **इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च**. 4(12). 80-84. https://edupediapublications.org/journls

➢ डॉ. कमलेश (2019). वैदिकयुग की नारी व आधुनिक युग की नारी को पुनः प्रतिष्ठित किया. **इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ संस्कृत रिसर्च** 'अनन्ता'. 5(2), पृष्ठ 51-53.

➢ कौर, परमजीत (2016). दिल्ली सल्तनत से पहले हिन्दू समाज में महिलाओं की स्थिति. **इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इन्फार्मेशन मूवमेंट**. 1(2). http://www.ijim.in/wp

➢ Maity, S.K. (1959). Economic Life of Northern India in the Gupta Period A.D. 300-500. **Journal of the Economics and Social History of the Orient**. 2(3). 337.

➢ Malik, S.C. (1968). Indian Civilization : the formative period. A study of archaeology as anthropology. Simla : **Indian Institute of Advanced Study**. 45(177). pp. 2.25. Cambridge University Press.

➢ मिश्र, ओमकार एवं सिंह, रीता (2017). स्मृतिकाल में शिक्षा (स्त्रियों के संदर्भ में). **अनन्ता इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ संस्कृत रिसर्च**. 3(6), पृष्ठ 102. https://www.anantaajournal.com

➢ मिश्रा, अर्चना (2016). भारत की परम्पराओं में नारी के सामाजिक स्थिति का पुनरावलोकन. **इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमेनिटिज एण्ड सोशल साइन्स रिसर्च**. 2(8), पृष्ठ 30-36. http://www.socialsciencejournal.in

➢ पाण्डेय, दीपशिखा एवं पाण्डेय, सुशान्त (2014). भारत में महिलाओं की परिवर्तित सामाजिक अवस्था: एक तुलनात्मक अध्ययन (आदिकाल से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक). **इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइन्टिफिक एण्ड इनोवेटिव रिसर्च स्टडिज**. 2(9). http://www.csits.org.in

- पाण्डेय, सदानन्द (2014). गुप्तकालीन समाज में महिलाओं की सामाजिक आर्थिक अवस्था: एक अध्ययन. **इन्टरनेशनल मल्टीडिसप्लिनरी रिसर्च जर्नल गोल्डन रिसर्च थॉट** 3(9).
- पाण्डेय, शक्ति (2017). वाल्मीकि के साहित्य में महिला की आर्थिक स्थिति. अनन्ता **इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ सांस्कृतिक रिसर्च**. 3(3). 199-201. https://www.anantaajournal.com
- राय, रजनीश (2018). महाभारतकाल में नारियों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति: एक विश्लेषण. **नेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिस्प्लिनरी रिसर्च एण्ड डवलपमेंट**. 3(1), पृष्ठ 507-510. http://www.nationaljournals.com
- सोहनी, बी.एस. चन्द्रगुप्त-प्-कुमार देवी. **जर्नल ऑफ न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया**.


## ARTICLES


- Altekar, Anant Sadasiv (1982). Ideal Position of Indian Women in Social Life. **Great Women of India**. Calcutta : p.34.
- Apte, V.M. Social and Economic Conditions in Vedic Age. **Essay in History and Culture of Indian People**. Vol-I.P. 393.
- Hawley, Veena Talwar (1994). Sati, The Blessing and Curse. **The Burning of Wives in India**. Oxford University Press. PP. 189, 165.
- Majumdar, Maya (2004). Social Status of Women in India. **Dominant Publishers and Distributors**. New Delhi : P.13
- Majumdar, R.C., Pusalkar, A.P. (1951). The History and Culture of Indian People. **The Vedic Age** : Bombay Bharatiya Vidya Bhawan. Vol-I.P. 394
- Majumdar, Ramesh Chandra (1982). Ideal and Position of India Women in Domestic Life. **Great Women of India**. Calcutta. P.5
- Meheta, Hasa. The Women in Ancient India. **Indian Women**. Delhi : P.95
- Pulaskar, A.D. (1988). Historical Traditions. **The Vedic Age** (Bombay, Bhartiya Vidya Bhawan). PP. 275-332.
- Ramana, Sita Anantha (2009). Women in India. **A Social and Cultural History**. V-2, PP. 12-14, 22.
- तसीवाल, रजनी (2019). भारतीय समाज में नारी: नारी के विभिन्न रूप और गांधी की नारी समीक्षा. **श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका**. 6(9). http://www.socialresearchfoundation.com

**शोध लेख एवं रिपोर्ट्स**


- अग्रवाल, बी.एस. **आर्ट इन दी गुप्ता पीरियड** (न्यू हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पिपल). भाग-6.
- बोस, एस.के. **स्ट्डीज इन गुप्ता पेलियोग्राफी**. इण्डियन कल्चर. भाग-4.
- दीक्षित, के.एन. (1980). **द आर्केयोलाजिकल रिमेंस ऑफ दी गुप्ता पीरियड** (न्यू इण्डियन हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पीपल). भाग-6
- गांगुली, डी.सी. (1938) **द इण्डियन हिस्टोरिकल**. भाग-14.
- लुहाड, सी.इ. (1910). बुधिस्ट केप्स ऑफ सेन्ट्रल. **इण्डियन एन्टिक्वेरी**.
- **शोधलेख, शोध प्रबंध एवं रिपोर्ट्स**
- प्रजापति सुरूचि (2008). वैदिककालीन नारी (**अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध**). प्रो. कमलेश शर्मा के निर्देशन में, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा.
- सरस्वती. एस.के. (1968). टेम्पल आर्कीटेक्चर इन दी गुप्ता पीरियड. **गुप्ता टेम्पल आर्किटेक्चर**. सीरीज-8. वारणसी: पृथ्वी प्रकाशन.


**कोश**


- भट्टाचार्य, वाचस्पति., एवं तर्क, श्री तारानाथ (1962) **वाचस्पत्यम**, भाग 1-6. चैखम्बा संस्कृत ग्रंथमाला, ग्रंथ सं.-94. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस.
- देवबहादुर, राधाकांत (1961). **शब्द कल्पद्रुम**: भाग 1-15. चैखम्बा संस्कृत ग्रंथमाला, ग्रंथ संख्या 93. वाराणसी: चैखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस.
- केतकर (1921). **ज्ञानकोश.** नागपुर: महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश मण्डल लिमिटेड.
- शास्त्री, हरिगोविन्द (संपा). (2026 संवत). **अमरकोश** (मणिप्रभा टीका सहित) अमरसिंह. वाराणसी: चैखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस.
- शास्त्री, राजवीर (1975). **वैदिक कोश** (प्रथम संस्करण). दिल्ली: आर्ष संस्कृत प्रचार ट्रस्ट.
- शास्त्री, विश्वबन्धु (1936). **वैदिक पदानुक्रम कोश** (भाग 1-15). लाहौर: विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान.

**पत्र-पत्रिकाएँ**


- **शोध पत्रिका**: इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज (साहित्य संस्थान) राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर.
- **वैचारिकी**: संपा. डॉ. बाबूलाल शर्मा, भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता.
- **JIJNASA (जिज्ञासा)**: A Journal of the History of Ideas and Culture, Department of History and Indian Culture, University of Rajasthan. Jaipur.
- **शोध-समवेत**: संपा. डॉ. श्यामसुन्दर निगम, क्वार्टरली जर्नल ऑफ श्री कावेरी रिसर्च इंस्टीट्यूट, उज्जैन
- **राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्स**
- **इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्स**
- **शोध साधना** ; संपादित मनोहर सिंह, श्री नटनागर शोध संस्थान, मालवा (म.प्र.)
- **Indian Culture**; Indian Research Institute, Caltutta
- **ब्रह्म पुराण**; योजना मासिक पत्रिका, 1998
- **महादेवी अभिनन्दन ग्रंथ**; संपादित देवदत्त शास्त्री, भारती परिषद, प्रयाग.
- **PURATATTVA** : Ed. K.N. Dikshit. Bulletin of the Indian Archaelogical Society.
- **शोधक**: संपादित डॉ. राम पाण्डेय, मालवीय शोध संस्थान, जयपुर
- **संस्कृत साहित्य परिषद**: संपा. कालीपद तर्काचार्य, राजदीनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता
- **हिस्ट्री टुडे**: संपा. पालले, मासिक पत्रिका लंदन www.historytoday.com
- **इतिहास शोध पत्रिका**: भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली. http://www.ichr.ac.in/
- **एपिग्राफिया इंडिका**: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण

## WIKISOURCE


- Crindle, MC., & Watson, John (1877). Ancient India as described by Megasthenes and Arrian. djvu. Calcutta. Thacket, Spins Co.
- **Wikipedia**
- Gurukula
- Vedic Education - Gurukula system of education
  http://educational_system.blog
  Spot.in/2013/09/Vedc-education-gurukula-system-of.html.
- **Blog**
- वैदिक काल में स्त्री
  https://m.jagran.com/blogs
- वैदिक काल में भी तिरस्कृत थी स्त्री:
  https://m.jagran.com/blogs
- स्त्री विमर्श का वैदिक परिप्रेक्ष्य
  https://m.jagran.com/blogs

## पुस्तकालय / LIBRARIES

- Raghubir Library and Research Institute, Shree Natnagar Shodh Sansthan, Malwa (M.P.)
- Central Library University of Rajasthan, Jaipur (Raj.)
- Central Library, Jai Narain Vyas University, Jodhpur (Raj.)
- Central Library, Vardhman Mahaveer Open University, Kota (Raj.)
- Central Library, Kota University, Kota (Raj.)
- Rajkiya Sarwjanik Mandal Pustkalay, Kota (Raj.)
- प्रो. कमलेश शर्मा का व्यक्तिगत पुस्तकालय

# परिशिष्ट

# PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH

AN INTERNATIONAL JOURNAL

PRINT ISSN No. 2250 - 1991

JOURNAL DOI : 10.36106/paripex

JOURNAL FOR ALL SUBJECTS

VOLUME-10 | ISSUE-11 | NOVEMBER-2021

A PEER REVIEWED, REFERRED, REFEREED & INDEXED INTERNATIONAL JOURNAL

UGC SR. No. 47432

IMPACT FACTOR - 6.941

₹ 500

# Certificate of Publication

Print ISSN No : 2250-1991

This is to certify that

Mr./Mrs./Ms./Prof./Dr. **Prabhavati Malav**

has contributed a paper as author/ Co-author to

**PARIPEX- INDIAN JOURNAL OF RESEARCH**

*A Peer Reviewed, Referred, Refereed & Indexed International Journal*

Title "**Praachin Bharat mein sanskritik jeevan mein mahilaon ki bhumika ka itihasik adhyayan**"

and has got published in volume **10**, Issue **11**, **November-2021**

The Editor in Chief & The Editorial Board appreciate the Intellectual Contribution of the author/co-author

109

Executive Editor | Editor in Chief | Member, Editorial Board

# INDEX


| Sr. No. | Title | Page No. |
|---|---|---|
| 1 | **Study Of Hemoglobin And Iron Status Of Newborn In Correlation With Hemoglobin And Iron Status Of Mother**<br>Dr Gargi H Pathak, Dr Anuya V Chauhan, Dr Shivani Arora | 1-3 |
| 2 | **Epidemiological Profile Of SARS-COV-2 Infection- Wave I & Ii In A Tertiary Care Govt. Hospital In Chennai, South India - A Descriptive Study.**<br>Dr. Shanthimalar R, Dr. Subhalakshmi. R, Dr. P. Saravanakumar | 4-7 |
| 3 | **Ayurvedic Management Of Dyspareunia - A Case Study.**<br>Dr. Sujitha.S.Nair, Dr. Salini.P | 8-10 |
| 4 | **Correlation Of Glycemic Control & Duration With Microalbuminuria In Patients With Type Ii Diabetes Mellitus: Results Of A Cross Sectional Study**<br>Dr Munawar Dhanish, Dr M H Bharatesh, Dr Sathiqali.a.s, Dr Ibrahim Masoodi, Dr Sapna Kalaimani, Dr Sony Parethu Sunny | 11-13 |
| 5 | **Correlation Of Hba1c, Fasting Blood Sugar And Post Prandial Blood Sugar, Bmi And Duration Of Diabetes With Clinical Manifestations Of Peripheral Neuropathy And Retinopathy.**<br>Sapna Kalaimani, Munawar Dhanish, M H Bharatesh, Sony Parethu Sunny | 14-17 |
| 6 | **Praachin Bharat Mein Sanskritik Jeevan Mein Mahilaon Ki Bhumika Ka Itihasik Adhyayan**<br>Prof. Dr. Kamlesh Sharma, Prabhavati Malav | 18-20 |
| 7 | **Relative Effects Of Muscardine And Flacherie Diseases On The Biochemical Contents Of Male Moths Of Mulberry Silkworm**<br>Md. Takhlique | 21-23 |
| 8 | **Innovations Food Packaging Technologies: Future And Quality Prospective**<br>Nathi Gouthami | 24-26 |
| 9 | **Electronic And Traditional Marketing: A Comparative Approach**<br>Dr. Jitender Kumar | 27-28 |
| 10 | **E-banking As An Emerging Area In India And Its Challenges**<br>Dr. Jitender Kumar | 29-30 |
| 11 | **An Article On Recent National Polices For Food And Agricultural Development In India.**<br>Chintha Yella Swamy | 31-33 |
| 12 | **Financing Of Weaker Sections By Government Sponsored Corporations**<br>Mr K.Malyadri, Ret. Prof. T.Siddaiah, Prof. M. Venkateswarlu | 34-36 |
| 13 | **Role Of Odisha In The Implementation Of Sdgs In The State**<br>Sucharita Dash | 37-39 |
| 14 | **Investigation Of Nutraceuticals Of Natural Apis Honey From Kolar Of Karnataka, India.**<br>Dr M. Bhushanam, Dr Madhusudan S | 40-42 |
| 15 | **Informal Sector And Informal Workers In India**<br>Dr. K. Radhika, A.vasaiah | 43-47 |
| 16 | **Effect Of Weight Training On High Density Lipoprotein Cholesterol Among Middle Aged Overweight Men**<br>Dr Baiju P Jose, Dr Baljit Singh Sekhon, Dr P V Shelvam | 48-50 |
| 17 | **An In-depth Study On Financial Performance Of Selected Public Sector Banks: An India Perspective**<br>Miss. Himaniben A. Pandya, Dr. Arvind M. Patel | 51-52 |
| 18 | **Present Scenario Of English Teaching**<br>Dr. Reshma Hafeez | 53-54 |
| 19 | **Economic Status Of Rural Women In Imphal West, Manipur**<br>Huidrom Devkanta Singh, Dr. Kh. Dhiren Meetei | 55-57 |
| 20 | **Recent Trends In Human Resource Management**<br>Kapisha Rajput, Dr. Gyanendre Tripathi | 58-60 |
| 21 | **Banking Facilities In Tribal Dominated Rural Areas - A Case Study Of Hezamara Block, Mohanpur, Tripura**<br>Dr. Sayan Saha, Dr. Kiran Sankar Chakraborty | 61-65 |
| 22 | **Market Basket Analysis Of Medical Stores During Covid19 To Discover New Revenue Products**<br>Dr. K.Umadevi | 66-68 |

PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH | Volume - 10 | Issue - 11 |November - 2021 | PRINT ISSN No. 2250 - 1991 | DOI : 10.36106/paripex

ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

# प्राचीन भारत में सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की भूमिका का ऐतिहासिक अध्ययन

**KEY WORDS:** नारी शिक्षा, प्राचीन भारत, नारी अधिकार, नारी स्थिति।

प्रो. डॉ. कमलेश शर्मा — शोध निर्देशिका वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा।

प्रभावती मालव — शोधार्थी, इतिहास वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा।

**ABSTRACT**

प्राचीन भारत में युग के आरम्भ में नारी की सृजनात्मक भूमिका प्रदर्शित होती है, नारी पुरूषों के समान ही अधिकारों का उपयोग करती थी। इसी युग में कांस्य प्रतिमा (नृत्यांगना) से नारी की मनोरंजन में सहज प्रवृत्ति का आभास होता है। ऋग्वैदिक काल में नारी की स्थिति सम्मानीय व श्रेष्ठ थी। इसी युग में नारियों के विदुषी होने के प्रमाण भी है, जो यह सिद्ध करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में उपेक्षित न थी। ऋग्वेद काल में दहेज का उल्लेख मिलता है परन्तु वर्तमान की तरह भयावह नहीं था। उत्तर वैदिक काल में नारियों की स्थिति का पतन होने लगा और समाज में पत्नी से कठोर अनुशासन व त्याग की अपेक्षा की जाती थी। मनुस्मृति में नारी को देवी का स्थान भी दिया है किन्तु स्त्रियों की दासता का सिद्धान्त भी दिया है। स्मृति व धर्मसूत्र काल में नारी को सम्पत्ति के अधिकारों से पूर्णतया वंचित कर दिया गया था। उपनयन संस्कार से वंचित करना, महिला शिक्षा के पिछड़ेपन को प्रदिर्शत करता है जो इस काल में हुआ। मौर्य युगीन भारत में नारी की स्थिति विवादास्पद रही, वहीं गुप्तकाल में नारी की राजनीति एवं शासन को दृढ़ता से चलाने में विशेष रूचि प्रदर्शित होती है। पूर्व मध्यकाल में उन स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था जो पत्नी की अर्हताओं से युक्त थी।

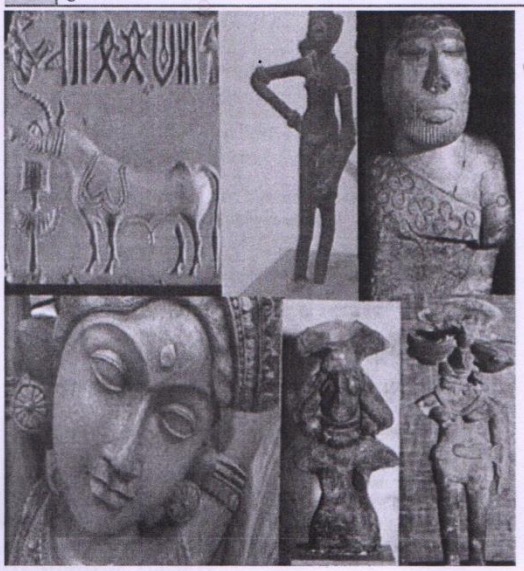

*प्रस्तावना –*

*प्रागैतिहासिक युग में नारी एवं पुरूष की समान साझेदारी थी। नारी की प्रजनन क्षमता के कारण उसे सृजनात्मक शक्ति का द्योतक माना जाता था। सिन्धुघाटी संस्कृति से प्राप्त नारी मूर्तियों से नारी को, सृष्टि धारण करने वाली ही नहीं अपितु पालन करने वाली भी माना गया है। वैदिक काल में नारियों की शिक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध थे। समाज में दाम्पत्य सम्बन्ध का बहुत महत्व था। महाकाव्य एवं स्मृतिकाल में बाल विवाह, अशिक्षा, विधवा विवाह निषेध के कारण स्थिति सम्मानजनक नहीं थी।*

*महाभारत काल में नारी, पुरूष दोनों के कर्मक्षेत्र भिन्न थे। नारी को पत्नी के रूप में निजी सम्पत्ति समझ उसका शोषण किया जाता था। समाज में नियोग प्रथा प्रचलित थी। पूर्व मध्यकाल में नारी की दशा पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा सर्वाधिक संक्रमणशील थी। गुप्तकाल में नारी का राजनीति एवं प्रशासन में भूमिका का उल्लेख मिलता है।*

*सांस्कृतिक जीवन में महिलाओं की भूमिका –*

*प्रागैतिहासिक युग में समाज में नारी एवं पुरूष की समान साझेदारी थी। मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में था। संस्कृति का पूर्ण रूप से विकास नहीं हुआ था। पुरूष और स्त्री शिकार करके पहल कच्चा फिर अग्नि का आविष्कार होने के बाद पका कर खाते थे। महिलाएँ शिकार भी करती थीं और उसे पकाने का कार्य भी करती थीं। नारी पुरूष के समान ही अपने अधिकारों का उपयोग करती थीं। नारी की प्रजनन क्षमता के कारण उसे सृजनात्मक शक्ति का द्योतक माना जाता था। सांकलिया के प्रागैतिहासिक अन्वेषणें के आधार पर मिर्जापुर क्षेत्र में बेलन घाटी से प्राप्त नारी मृण्मूर्ति मातृदेवी सी लगती है।*

*भारत की प्राचीनतम संस्कृति सिन्धु घाटी की संस्कृति को राखाल दास बनर्जी, सर जान मार्शल, दयाराम साहनी आदि ने रेखांकित किया। यहाँ उत्खनन के अवशेषों में मिट्टी की अनेक नारी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों में वक्ष और उदर का भाग असंतुलित रूप से उभरा हुआ दिखाया गया है। अनका उन्नत वक्ष एवं उदर नारी की सृजनात्मक शक्ति का द्योतक होगा। नारी को सृष्टि को धारण करने वाली ही नहीं अपितु पालन करने वाली भी माना गया। मातृदेवी की प्रसन्नता के लिए प्रतिमा पूजन का विधान प्रचलित किया गया होगा। इसी कारण यह प्रत्येक घर के अवशेषों में प्राप्त हुई। एक कांस्य प्रतिमा नृत्यांगना की भी प्राप्ति हुई है।*

*मुहरों पर एक प्रधान देवी उत्कीर्ण है और उनके सामने एक व्यक्ति बलि देने का उद्यत है। सात अन्य देवियाँ भी उपस्थित हैं जो उपशक्तियाँ रही होंगी। दूसरी मुद्रा पर स्त्री के पैर ऊपर हैं और स्त्री के गर्भ से वनस्पति का जन्म प्रदर्शित किया गया है। मातृदेवी की परिकल्पना, परम् शक्ति के रूप में प्रदर्शित की गई है जिसमें मानव, पशु एवं वनस्पतियों को जन्म देने वाली प्रदर्शित किया गया है। एक अन्य मुद्रा में वृक्ष की दो शाखाओं के बीच खड़ी एक नारी को वनस्पति देवी बताया है। यह सभी मुद्रा, नारी की सृजनात्मक भूमिका प्रदर्शित करते हैं।*

*सैंधव सभ्यता से प्राप्त नारी मूर्तियों से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ पर नारियों की प्रधानता एवं मातृ सत्तात्मक समाज था। साथ ही यह तथ्य भी उजागर होता है कि इस काल में नारियों को पुरूषों के समान स्तर प्राप्त था।*

*वैदिक काल में नारियों की स्थिति सम्माननीय एवं श्रेष्ठ थी। वैदिककालीन आर्य नारियों का अत्यधिक सम्मान करते थे। उस काल में नारियों की शिक्षा के समुचित प्रबन्ध थे। ऋग्वैदिक काल में नारियों के विदुषी होने के अनेक प्रमाण हैं। उन्होंने अनेक ऋचाओं की रचना की। वह ब्रह्मवादिनी और मंत्र दृष्टा भी थी। विश्ववारा, अपाला, शंची, अदिती आदि ने मंत्रों की रचना कर ऋषि पद प्राप्त किया। शिक्षा के क्षेत्र में नारी उपेक्षित न थी। वह शिक्षिका का पद योग्यता द्वारा प्राप्त करती थी।*

*वैदिक आर्यों की दृष्टि में दाम्पत्य सम्बन्ध को अत्यन्त कोमल सम्बन्ध माना जाता था। माता–पिता की सहमति से होने वाला विवाह आदर्श माना जाता था। स्त्री–पुरूष दोनों ही परस्पर पति–पत्नी के चुनाव के लिए स्वतंत्र थे।*

*ऋग्वेद में दहेज का उल्लेख भी मिलता है। परन्तु यह प्रथा वर्तमान कुरूप रूप में समाज में प्रचलित न थी। एक विवाह को ही आदर्श जीवन का आधार माना जाता था। उत्तर वैदिक काल में भारत में विवाह के विभिन्न रूप प्रचलित थे। कन्या का विक्रय, उपहरण करके भी कन्या से विवाह किया जाता था। बहुविवाह की प्रथा भी समाज में प्रचलित थी। अनेक मंत्रों से बहुपत्नी प्रथा के संकेत मिलते हैं। विधवा विवाह एवं नियोग का प्रचलन था। पर्दा प्रथा की परम्परा समाज में नहीं थी। पत्नी को अपने घर में गृहस्वामिनी का दर्जा मिला हुआ था। सभी धार्मिक कृत्यों में पत्नी भाग लेती थी। पत्नी के बिना यज्ञ की क्रिया अधूरी मानी जाती थी।*

*महाकाव्य काल तथा स्मृति काल में नारियों की स्थिति में परिवर्तन आ गया। उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति बाल–विवाह, अशिक्षा, विधवा विवाह–निषेध आदि नियमों के कारण सम्मानजनक नहीं रही। रामायण काल में स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। पर्दे का प्रयोग अधिक नहीं था। यज्ञ व संध्योपासना भी करती थी। सैनिक शिक्षा भी यदा–कदा दी जाती थी। क्योंकि कैकयी को अपने पति के साथ युद्ध में जाते हुए बताया गया। किन्तु उसे बराबर की भागीदारी प्राप्त नहीं थी। समाज में पत्नी के कठोर अनुशासन व त्याग की अपेक्षा की जाती थी। पतिव्रता एवं साध्वी नारियों की प्रशंसा इस साहित्य में उपलब्ध है।*

इस युग में नियोग की प्रथा थी। जब ऋषि परशुराम ने क्षत्रियों का नाश कर दिया तो क्षत्राणियों ने नियोग द्वारा ब्राह्मणों से सम्बन्ध कर अपना वंश चलाया। नारी का समानता का अधिकार नहीं था। भीष्म ने स्त्रियों के प्रति उच्च आदर भाव को प्रदर्शित करते हुए कहा था कि सदैव पूज्य मानकर उससे स्नेहपूर्ण व्यवहार करना आवश्यक है। इसी पर्व के एक स्थान पर युद्धिष्ठिर ने भीष्म पितामह से स्त्रियों की प्रकृति के बारे में जानने की इच्छा की तब भीष्म ने बताया कि स्वभाव से स्त्री में लालच को दबाने की क्षमता नहीं होती और इसलिए उसे सदैव किसी पुरूष का संरक्षण मिलना आवश्यक होता है। स्त्रियों के दो प्रकार बताये गये हैं – साध्वी और असाध्वी। साध्वी स्त्रियाँ पृथ्वी की माता और इसकी संरक्षिका है जबकि असाध्वी स्त्रियाँ अपने दुष्ट व्यवहार से कहीं भी पहचानी जा सकती है।

भारत में दो सुधारवादी धर्मों के उद्‌भव से स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया। बौद्ध धर्म में स्त्रियों को अत्यधिक सम्मानित पद प्राप्त था। इस समय अनेक स्त्रियाँ भिक्षुणी बनकर सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य में ही व्यतीत करती थी। जैन धर्म में भी स्त्रियों को आत्मसंतोष मिला तथा साध्वी बनने का गौरव प्राप्त किया। स्मृतिकाल में नारियों की दशा का स्तर गिरा एवं मनुस्मृति द्वारा नारियों की स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिया गया। इसी ग्रंथ में नारी को देवी का स्थान भी दिया, किन्तु स्त्रियों की दासता का सिद्धान्त भी दिया है।

भारतीय नारी ने जीवन को संस्कारों से परिपूर्ण एवं संतान को योग्य बनाने की जिम्मेदारी का प्रयास हर युग में किया है। मौर्ययुगीन भारत में नारी की स्थिति इस तरह विवादास्पद थी। स्त्रियों को अनेक बंधनों में बांध दिया गया था। घर की चार दीवारी तक सीमित थी। बहु विवाह प्रथा विद्यमान थी। व्यभिचारी, प्रवासी, पतित, राजद्रोही एवं नपुंसक पतियों का स्त्री परित्याग कर सकती थी।

पुरूष स्त्रियों का वध कर दिया करते थे इसके लिए समाज में राजकर्मचारी एवं अन्य के लिए दण्ड व्यवस्था का प्रावधान था, नारी हत्या को ब्रह्म हत्या के समान अपराध घोषित किया गया था।

इसी काल (मौर्ययुगीन काल) में स्त्रियों की स्थिति साहित्य मात्र से प्रमाणित नहीं होती अपितु अभिलेख, गुफाओं, स्तूप और चैत्य आदि पर उत्कीर्ण चित्र आदि में तत्कालीन समाज की झांकी मिलती है।

स्मृतियों एवं धर्मसूत्र काल में साहित्य द्वारा नारी की स्थिति की प्रमाणिकता सिद्ध होती है। उनके लिए वेद अध्ययन और यज्ञ करने पर प्रतिबंध लगाया गया। उसे उपनयन संस्कार से वंचित कर दिया गया। नारियों का एक मात्र धर्म घर–परिवार संभालना रह गया। विधवा विवाह पूर्ण निषेध हो गया।

स्त्री की स्वतन्त्रता पर पूर्ण अंकुश लगा दिया गया। बाल विवाह एवं शिक्षा के अभाव ने आत्मज्ञान के अवसर छीन लिये गये। आजीवन पिता, पति, पुत्र के सानिध्य में रहने को मजबूर थी स्त्री कभी स्वयं स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। इस काल में स्त्रियों को मानसिक रूप से अयोग्य तथा दुर्बल सिद्ध करने के लिए भ्रमपूर्ण प्रचार किए जाने लगे। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकारों से पूर्णतया वंचित कर दिया गया। सामाजिक विकृति और धार्मिक संकीर्णता नारी पर हावी थी। दूसरी से पाँचवी शताब्दी के बीच बनने वाली व्यास स्मृति ने नारी को नौकरानी का दर्जा दिया।

समाज में अराजकता, अस्थिरता एवं विदेशी आक्रमणों के कारण महिलाओं की स्थिति पर दुष्प्रभाव पड़ा। इन्हें आरम्भ से ही बंधनों में रखा गया। किन्तु इनके संस्कारों, रीति–रिवाजों ने जीवन के संघर्षपूर्ण उत्तरदायित्व को धारण किया। सामाजिक सामंजस्य में भी उनकी भूमिका प्रशंसनीय रही। इन्हें नगरवधु, विषकन्या एवं वैश्या का जीवन भी व्यतीत करना पड़ता था। पुरूष समाज का वर्चस्व एवं पितृ सत्तात्मक परिवार के कारण था।

पूर्व मध्य काल में नारी की दशा पूर्ववर्ती युगों की अपेक्षा सर्वाधिक संक्रमणशील थी। यद्यपि गृहस्थाश्रम में एक पत्नी के रूप में उसकी प्रतिष्ठा थी। धर्म, अर्थ और काम की उपलब्धता का आधार पत्नी मानी जाती थी। पत्नी से यह अपेक्षा रखी जाती थी कि वह व्यवहार कुशल, विनम्र, मृदुभाषिणी, सेवारत, शील और सन्तान–सम्पन्न आदि हो। पत्नी के रूप में उसका स्थान पति से निम्न था। दक्ष व व्यास के अनुसार उपरोक्त अर्हताओं से सम्पन्न पत्नि केवल 'महान' पुण्य कर्मों से ही उपलब्ध होती है। स्त्रियों को घरेलू कार्यों में प्रायः व्यस्त रखा जाता था। घर से बाहर समाज में उसकी विशेष स्थिति नहीं थी। परिवार में उन स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था, जो पत्नी की अर्हताओं से युक्त थी। गुण सम्पन्न संस्कार–युक्त पत्नी को भाई के समान स्थान प्राप्त था। पत्नी के रूप में उसका कार्य आय–व्यय और घर की देख–रेख, स्वच्छता, भोजन बनाना, विवाहाग्नि या गृहाग्नि की सुरक्षा आदि था।

*राजनीतिक क्षेत्र में नारी की भूमिका –*

प्राचीन युग में साधारण नारी समाज में अपने परिवार के प्रति उत्तरदायित्व से दबी हुई थी। उसे स्वतंत्रता एवं शैक्षणिक अधिकारों से वंचित किया हुआ था। उसका क्षेत्र गृहस्थी तक सीमित हो गया था। राजनीतिक क्षेत्र से नारी का कोई सरोकार नहीं था। इस युग में प्रतीक स्वरूप कुछ ही उदाहरण ऐसे स्त्रियों के मिलते हैं जिनकी प्रशासन से सम्बद्धता रही थी। सामान्य वर्ग की स्त्रियों का इसमें प्रवेश करने का कोई अवसर नहीं था, केवल राज परिवारों की स्त्रियाँ ही इसमें भाग लेती थीं। राजघरानों में बाल्यावस्था से ही राजकुमारों के समान ही राजकुमारियों को राजनीति की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। राजनीति की यह शिक्षा, राजकुमारियों को शासन का कार्यभार सम्भालने में समर्थ बनाती थी। सातवीं शती में उत्तर भारत के दो स्त्री राज्यों का उल्लेख चीनीयात्री हुएन–सॉंग ने किया है। इनमें से एक पूर्व की ओर तथा दूसरा पश्चिम की ओर था जिन्हें ''पूर्वी स्त्री राज्य'' तथा ''पश्चिमी स्त्रियों का देश'' कहा जाता था। इन राज्यों में प्रत्येक की अपनी सरकार थी।

प्राचीनकाल में स्त्रियों की राजनीति एवं शासन को दृढ़ता से चलाने में विशेष रूचि हुआ करती थी। गुप्तकाल में नारियाँ शासन कार्य में सहयोग देती थी। चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्कों पर महादेवी कुमार देवी के चित्र का अंकन इस बात का प्रतीक है। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त ने अपने पति बाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के निधन पर अपने पुत्र प्रवरसेन द्वितीय की अल्प व्यस्कता के कारण संरक्षिका के रूप में राज्य किया था। रानियाँ राज्य संचालन के साथ युद्ध में वीरता का प्रदर्शन भी करती थीं। 8वीं शती में दाहिर की बहिन रानी बाई ने अरब जनरल मोहम्मद बिन कासिम से युद्ध किया था और पति की युद्धक्षेत्र में वीरगति पा जाने के पश्चात् पराजित होने की आशंका से अग्नि में प्रवेश कर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया था। सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ भी संभवतः सैनिक होती थी, युद्धक्षेत्र में जाती थी। इसकी पुष्टि खजुराहो की मूर्तिकला से होती है। विश्वनाथ मंदिर के बाएँ बाह्य भाग में उत्कीर्ण एक दृश्य में एक स्त्री शस्त्रों से सुसज्जित दिखाई दे रही है, संभवतः वह पुरूष के साथ युद्ध क्षेत्र में जा रही है। एक अन्य स्त्री बाएँ हाथ में बड़ी सी तलवार लिए खड़ी है और दाहिने हाथ से तलवार का ऊपर भाग पकड़ा हुआ है यह दृश्य दूल्हादेव मंदिर के पिछले बाह्य भाग में उत्कीर्ण है। इन दृश्यों से स्पष्ट हो जाता है कि राजा स्त्रियों की सैनिक टुकड़ियाँ भी रखते थे जो निश्चित रूप से आपत्तिकाल में सहयोग देती थीं। भोज का ग्वालियर अभिलेख भी स्त्री सैनिक टुकड़ी की पुष्टि करता है।

*आर्थिक क्षेत्र में नारी की भूमिका –*

प्राचीन काल के आरंभ से महिलाओं का परिवार में आर्थिक योगदान रहा है। लेकिन विभिन्न–विभिन्न वर्ग की महिलाओं की आर्थिक क्षेत्र में भूमिका पृथक–पृथक है। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पुरूष के साथ आर्थिक कार्यक्रम में घर के बाहर सम्मिलित नहीं हो पाती थी। केवल निम्न वर्ग की स्त्रियाँ कुटीर उद्योगों में अपने पति की सहायिका होती थी। जैसा कि विष्णु के कथन से प्रतीत होता है कि चरवाहे, सुराकार, नटकार, धोबी, आखेटक की पत्नियों द्वारा लिया गया ऋण उनके पति को देना पड़ता है क्योंकि उनकी पत्नियाँ उनके उद्योग में सहायिका होती है। याज्ञवल्क्य द्वारा दिए गए इसी प्रकार के निर्देश (2.48, पृ. 206) का समर्थन अपरार्क और मिताक्षरा में भी किया गया है। नारियों द्वारा दुकान चलाने और कृषि कार्य में सहयोग देने का उल्लेख साहित्य में भी मिलता है। कादम्बरी में प्रतिहारी, ताम्बूलकरंग वाहिनी और चंवर डुलाने वाली सेविकाओं का उल्लेख मिलता है। कामन्दकीय नीतिसार में स्त्रियों को निवास में कर्मचारिणी नियुक्त करने का निर्देश दिया गया है। कथासरित्सागर में एक स्थल पर एक स्त्री गुप्तचर का भी उल्लेख किया गया है।

साहित्य में यदा–कदा वणिकों द्वारा लाभार्थ अपनी पत्नी के दुरूपयोग का भी उल्लेख मिलता है, जो पतनोन्मुख समाज का निम्न चित्र उद्‌घाटित करता है। सोमदेव अर्थलोम नामक व्यापारी के बारे में लिखता है कि, उसकी पत्नी मानपरा उसके निर्देश पर अपनी इच्छा के प्रतिकूल विवश होकर अपने मधुर रूप, भाषण, व्यवहार से मनुष्यों को आकृष्ट कर व्यापार चलाया करती थी।

*नारी का धार्मिक क्षेत्र में स्थान –*

प्राचीन युग में नारी के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण को लेकर दो विरोधी धारणाएँ समाज में प्रचलित थी। एक ओर पम्परागत हिन्दू सामाजिक विचारकों ने नारी को धर्म सम्बन्धी अधिकारों से वंचित कर दिया था। इस विचारधारा का मेधातिथि तथा कुल्लुक ने समर्थन किया है। स्मृति चन्द्रिका और कृत्यकल्पतरू ने विष्णु को उद्धृत करते हुए लिखा है कि, पति की जीवितावस्था में व्रतोपवास करने वाली नारी पति की आयु का क्षय करती है और नरकगामी होती है। प्रायः सभी परवर्ती स्मृतियों ने नारी के लिए व्रत, उपवास, तपादि को निषिद्ध कर दिया और पति सेवा को ही उसकी परमगति का साधन और नारी–धर्म बताया। पराशर माधवीय ने भी इसी धारा का समर्थन और अनुमोदन किया है। इस सन्दर्भ में उसने मार्कण्डेयपुराण, शंखलिखित, कात्यायन आदि का उद्धरण देते हुए नारी के सधवावस्था में अलग से किए जाने वाले धर्म कार्यों को निष्फल माना है। साहित्य में भी ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं।

इस विचारधारा के विपरीत दृष्टिकोण तंत्रवाद से प्रभावित वाममार्गी और

सहजीया विचारधारा के अन्तर्गत विभिन्न धर्म सम्प्रदायों से सम्बद्ध शाखाओं में विकसित हुआ है, जिसने खुलकर स्त्रियों को दीक्षा देने और ग्रहण करने तथा सन्यस्त होने का अधिकार प्रदान किया। समय मातृका में विवृत है कि मृगवती नामक वैश्या पहले शाक्त मठ में प्रवेश करती है और भैरव सोम से दीक्षा लेकर शिखा नाम धारण करती है। मालती माधव में लाल परिधान युक्त, कामन्दीकी और उसकी शिष्या अवलोकिता का बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में उल्लेख है। इसी ग्रंथ में कपाल कुण्डला और उसके गुरू उपधोरघंट द्वारा मालती को बलि देने का विवरण है।

ग्रंथ में बौद्ध भिक्षुणी कामन्दीकी मंत्री भूरिवसु को सहपाठी बताते हुए कहती है कि विद्याध्ययन के लिए हम लोगों का अनेक दिगन्तों में वास और साहचर्य था। कर्पूर मंजरी में भरवानन्द का कथन है कि 'रण्डा अर्थात् विधवा, चण्डा अर्थात् क्रूरा और तान्त्रिक शिक्षा में दीक्षित स्त्रियाँ ही हमारी पत्नियाँ है। इसी ग्रंथ में राजकुल की रानी द्वारा दीक्षा गण किए जाने का उल्लेख है। दशकुमारचरित में बौद्ध संन्यासिनी द्वारा कुटनी–कार्य करने का भी विवरण है। कथा सरित्सागर में कालरात्रि नामक ब्राह्मणी की चर्चा की गई है। जो भैरव की पुजारिन है और सिद्धि प्राप्त करने की दीक्षा देती है। देवी भागवत पुराण में नारियों के लिए आजीवन कौमार व्रत की चर्चा की गई है। कथा सरित्सागर में भी इस प्रकार की ब्रह्मचारिणी नारियों का उल्लेख है।

सामाजिकता के प्रति सजग विचारकों ने गृहस्थ नारियों को इस प्रकार की भिक्षुणी और संन्यासिनियों के सम्पर्क से दूर रहने का निर्देश दिया है।

## संदर्भ


1) "दांसपंए भ्ण्क्ण ;1978द्धए च्तम.भ्पेजवतपब ।तज पद प्दकपंए च्हण 8ए ब्तवसपदं ।बंकमउपब च्तण ;श्रनदम 1ए 1978द्ध
2) "दांसपंए भ्ण्क्ण ;1978द्धए च्तम.भ्पेजवतपब ।तज पद प्दकपंए च्हण 29ए ब्तवसपदं ।बंकमउपब च्तण ;श्रनदम 1ए 1978द्ध
3) "दांसपंए भ्ण्क्ण ;1978द्धए च्तम.भ्पेजवतपब ।तज पद प्दकपंए च्हण 31ए ब्तवसपदं ।बंकमउपब च्तण ;श्रनदम 1ए 1978द्ध
4) डंरनउकंतए त्ण्ब्ण ;1982द्धए ।दबपमदज प्दकपंए च्हण 32ए डवजप स्संस ठंदंतेप वें ;1982द्ध
5) ऋग्वेद 10.27.2
6) ऋग्वेद 1.109.2
7) तैत्तरीय संहिता 2.3.4.1; मैत्रायणी संहिता 1.10.11
8) ऋग्वेद 1.162.11; 1.71; 7.26.3; 10.145.3–4
9) ऋग्वेद 10.42.2; 10.18.8
10) रामायण 2.20.25
11) रामायण 4.16.12
12) रामायण 2.9.15–16
13) महाभारत, अनुशासन पर्व, 43, 5
14) महाभारत, अनुशासन पर्व, 46, 14
15) महाभारत, अनुशासन पर्व, 43, 19, 2
16) कौटिल्य का अर्थशास्त्र – "नीचत्वं परदेश वा प्रस्थतो राज कितिवषी प्राणा भिहन्ता पतितास्याज्येक्लीवोपिता पतिः।
17) कौटिल्य का अर्थशास्त्र (4.10.1)
18) मनुस्मृति 9, 3 "पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने, रक्षान्तिस्या विरे पुत्रा नस्त्री स्वातत्यमर्हति।
19) व्यासस्मृति : 2, 27 "दासी वदिष्ट कार्येषु मार्या भर्तु : सदा भवेत।"
20) दक्ष स्मृति, 4.1, पृ. 70 तथा व्यव. का, पृ. 522 पर उद्धत दक्ष।
21) स्मृ.च, व्यव.का., पृ. 523
22) स्मृ.च., व्यय. का. पृ. 524
23) स्मृ.च., व्यय. का. पृ. 523
24) बृहस्पति, 24.4, कृत्य. व्यय. का, पृ. 608 पर भी उद्धत।
25) क
26) क
27) क
28) कुल्लुक, 5.162 एवं सति पुन–र्भूत्वमपि प्रतिषिद्धम्।
29) समय मातुका, 2.45
30) विक्रमांक देवचरित, 14.29, पृ. 19
31) कादम्बरी, पृ. 45
32) कामन्दकीय नीतिसारऋ 7.44
33) कथासरित्सागर, खण्ड 1, पृ. 35
34) कथासरित्सागर, खण्ड 1, पृ. 199–200
35) मेघातिथि, 5.153, पृ. 558
36) कुल्लुक, 5.155
37) क
38) क
39) क
40) क
41) समयमातुका, 2.43, व 58
42) मालतीमाधवम्, प्रथम अंक, पृ. 18
43) मालतीमाधवम्, प्रथम अंक, पृ. 22
44) मालतीमाधवम्, प्रथम अंक, पृ. 22
45) कर्पूर मंजरी, पृ. 47
46) कर्पूर मंजरी, चतुर्थ अंक, पृ. 229
47) कथा सरित्सागर, खण्ड 1, पृ. 389
48) क
49) देवी भागवतपुराण, 5.17.15

# 19वीं से 20वीं शताब्दी में कोटा दरबार एवं भारतीय सरकार के मध्य शिक्षा सम्बन्धों पर ऐतिहासिक समीक्षा

प्रभावती मालव

हमारे देश में प्राचीनकाल में शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व रहा है। उत्तर प्राचीनकाल से शिक्षा का महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा, यही कारण है कि दसवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक अधिकांश हिन्दू राजा प्राय: निरक्षर थे। उनके मंत्री भी साक्षर ही थे। उस काल में शिक्षा का महत्त्व इसलिए भी कम था क्योंकि राजा के लिए शूरता और मंत्री के लिए प्रपंच-कौशल पर्याप्त गुण माने जाते थे। शासक, स्वयं के अशिक्षित होने के कारण शिक्षा प्रचार पर ध्यान नहीं दिया जाता था। कोटा दरबार के राजराणा जालिमसिंह ने सेना, माल, जकात, कृषि आदि विभागों को अच्छा संगठित किया था और कई बातों में अंग्रेजी ढंग को ग्रहण किया था किन्तु वे अशिक्षित थे।

अत: शिक्षा के महत्त्व को अनुभव नहीं किया। सन् 1874 से पहले राज्य की ओर से कोई पाठशाला नहीं थी। परगनों में शिक्षा का अव्यवस्थित रूप था जिसमें लड़कों को देशी हिन्दी और मामूली हिसाब पढ़ाया जाता था। भारत में शिक्षा प्रचार का सूत्रपात सर्वप्रथम कम्पनी सरकार ने किया था। भारतीय राज्य के प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंगज ने कलकत्ता में एक कॉलेज स्थापित करवाया और हिन्दी तथा उर्दू की पुस्तकें लिखवाई गई। लार्ड बैंटिक के शासनकाल में अंग्रेजी भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया गया। लार्ड मेयो (तत्कालीन वायसराय) ने सन् 1870 में राजपूताने में मेयो कॉलेज का अजमेर में शिलान्यास किया गया और प्रथम अंग्रेजी स्कूल सन् 1869 में अजमेर में ईसाइयों ने स्थापित किया था। अंग्रेजी सरकार की नीति थी कि देशी राज्यों में आधुनिक शिक्षा का प्रचार किया जावे। नवाब फैजअली खाँ उर्दू और फारसी का विद्वान था, अंग्रेजों के सम्पर्क से वह शिक्षा के महत्त्व को भी समझने लग गया था, अत: कोटा राज्य के प्रबन्ध की बागडोर हाथ में लेते ही राज्य की ओर से नवाब ने शिक्षा का प्रचार का कार्य आरम्भ किया।[1]

कोटा नगर में एक लड़कों का स्कूल जिसमें मुख्याध्यापक जिसे आज के सन्दर्भ में प्रधानाचार्य कह सकते हैं, उन्हें सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, हिन्दी विषय के दो-दो अध्यापक नियुक्त थे। लड़कियों के स्कूल में दो-पाँच लड़कियां जिन्हें एक अध्यापिका पढ़ाती थी। आरम्भ में शिक्षा का कुल वार्षिक खर्च 3760/- रुपये था। नवाब फैजअली द्वारा खोली गई प्रथम पाठशाला की लगातार उन्नति होती गई। कोटा राज्य में बारॉं, इटावा, घाटोली, कनवास, शेरगढ़, किशनगंज, बड़ौद, कुन्जेड़, सांगोद, खानपुर, सुल्तानपुर, दीगोद, सीसवाली, मांगरोल, अन्ता, कैथून और छावनी में सन् 1893 से पहले विद्यालय खुल चुके थे।[2] मेयो कॉलेज की स्थापना के समय कोटा राज्य ने भारी चन्दा दिया था। कोटा राज्य ने हजारों रुपये खर्च करके एक छात्रालय भी बनवाया था। पीपल्दा के ठाकुर कोटा राज्य के प्रथम मेयो कॉलेज में प्रवेश लेने वाले छात्र थे। सन् 1880 में लड़कों को पारितोषिक वितरण में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने अपने भाषण में कहा था कि मेयो कॉलेज की शिक्षा का एक यह भी उद्देश्य है कि विद्यार्थी अपने देश और धर्म से प्रेम करना सीखें।[3]

शत्रुशालजी के देहान्त के बाद गोदनशीनी के विषय में भारत सरकार ने अपना निश्चय घोषित कर महाराव उम्मेदसिंह का उत्तराधिकारित्व स्वीकार किया। अब तक उम्मेद सिंह जी को व्यवस्थित रूप से कोई शिक्षा नहीं मिली थी, अत: राजतिलक के बाद इनको शिक्षा प्राप्ति के लिए मेयो कॉलेज में भर्ती किया गया। मेयो कॉलेज में लगभग चार वर्ष तक इन्होंने शिक्षा पाई। इस दौरान अंग्रेजी और हिन्दी का साधारण ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद भारत सरकार ने इनको शासन के कुछ अधिकार दे दिये। इनके पुत्र महाराज कुमार भीमसिंह जी ने भी मेयो कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की। सन् 1922 में कोटा छोड़ते समय कर्नल मेकोनजी पॉलिटिकल एजेण्ट ने अपनी विदा दावत का ध न्यवाद देते हुए कहा था कि "मुझे खेद है कि महाराजकुमार इस समय यहाँ उपस्थित नहीं है, परन्तु उनके विषय में सब ओर से यह सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है कि मेयो कॉलेज में उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। मुझे विश्वास है कि जब दरबार उनको कॉलेज से वापस बुलायेंगे तो उनको शासनकार्य की भी आप स्वयं शिक्षा देंगे।[4] कोटा राजपरिवार में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण राजपूताने में राजकुमार की मेयो कॉलेज में शिक्षा सम्बन्धी उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण थी।

**सम्राट द्वारा सम्मान** - उम्मेद सिंह जी के राजकार्य से प्रभावित होकर साम्राज्ञी विक्टोरिया ने दिसम्बर सन् 1899 को के.सी.एस.आई. उपाधि से सम्मानित किया।[5] इस उपाधि के उपलक्ष में 03 अप्रेल सन् 1901 को दरबार में कर्नल वाइली ए.जी.जी. ने साम्राज्ञी विक्टोरिया की ओर से कोटा नरेश को उपाधि के चिह्न भेंट करते हुए कहा था कि आपसे जो भी आशा की वह सब प्रकार से पूरी की है। आपकी प्रजा की भलाई में व्यक्तिगत रुचि है, राज्य के शासन को उन्नत करने में सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। आपका व्यक्तिगत जीवन निष्कलंक है। इन गुणों के कारण और उच्च वंश के कारण तथा साम्राज्ञी के प्रति राजभक्ति दिखाने के कारण स्वर्गीय साम्राज्ञी ने तथा वायसराय ने आपको इस उपाधि से सम्मानित करने की कृपा की है।[6] 28 जनवरी 1908 को वायसराय लार्ड मिन्टों ने महाराव उम्मेद सिंह जी को कलकत्ता बुलाकर मर्यादापूर्वक स्वागत किया और जी.सी.आई.ई. की उपाधि से कोटा नरेश को अलंकृत किया। महाराव

उम्मेद सिंह जी ने सन् 1901 में महू में पश्चिमी शैली की सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। सन् 1911 में सम्राट ने प्रसन्न होकर कोटा नरेश को ऑनरेरी लेफ्टिनेन्ट कर्नल नियुक्त किया। इस उपाधि के लिए तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग ने सिफारिश की थी।

सन् 1974 में महाराव उम्मेद सिंह जी को जी.बी.ई. की उपाधि प्राप्त हुई एवं साम्राज्य में कोटा नरेश ने बहुत ऊँचा सम्मान प्राप्त किया। महाराव उम्मेद सिंह जी ने भारत में सन् 1901 में चीफ्स कॉलेजों के सुधार के लिए तत्कालीन वायसराय ने रइसों की एक सभा की थी, जिसमें कोटा नरेश सम्मिलित हुये। 1915 में पं. मदन मोहन मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के उत्सव पर कोटा नरेश को आमंत्रित किया। कोटा दरबार ने एक लाख पचास हजार रुपये इसमें दिये थे।[10] इसी वर्ष वायसराय ने स्त्रियों के मेडिकल कॉलेज का उद्घाटन किया, इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए वायसराय ने कोटा नरेश को आमंत्रित किया था।[11] इसमें कोटा नरेश ने एक लाख रुपये का चन्दा दिया था। सन् 1936 में काशी विश्वविद्यालय ने कोटा नरेश महाराव उम्मेदसिंह जी को एल.एल.डी. की उपाधि से विभूषित करने के लिए सन् 1937 में विश्वविद्यालय ने निमन्त्रित किया एवं उपाधि से अलंकृत किया। उपाधि स्वीकार करते हुये कोटा नरेश ने कहा कि विश्वविद्यालय और इसका सम्पूर्ण श्रेय ऋषिवर पण्डित मालवीय जी को है। लार्ड कर्जन एवं कोटा दरबार 6 नवम्बर 1902 को लार्ड कर्जन पहला वायसराय था जिसने कोटा राज्य का दौरा किया। महाराव की शिष्टाचार दावत में कर्जन ने धन्यवाद देते हुए कहा कि मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरा राजपूताने का दौरा ऐसी रियासत से आरम्भ हुआ है जिसके युवक शासक कार्य का इतिहास इतना सुन्दर है। लार्ड कर्जन कोटा में चार दिन रुके थे। कर्जन ने कहा कि "मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि मैं ऐसी रियासत में आया जहां का पुराना इतिहास इतना अच्छा है और जिसका शासन ऐसे सुयोग्य और देशभक्त राजा के हाथ में है। सन् 1900 में कर्जन ने कोटा नरेश को के.सी.एस.सी. की उपाधि भेंट की।[12]

**लार्ड लिटन और कोटा दरबार** - सन् 1925 में लार्ड लिटन कोटा आये। कोटा में हरबर्ट कॉलेज और भीम केडिट कोर को देखा। उम्मेद भवन में महाराव के द्वारा दी गई दावत में धन्यवाद भाषण में लिटन ने कहा कि इस अर्से में मैंने देख लिया कि जो कुछ मुझसे कहा गया था वह बहुत बहुत सत्य है। अपने शासक की कोटा राज्य की प्रजा बड़ी कृतज्ञ है और उनसे प्रेम करती है। नि:स्वार्थ भाव से जनहित चिन्तन में लगे रहने के कारण कोटा नरेश इस प्रेम और कृतज्ञता के पात्र हैं।[13]

**लार्ड रीडिंग** - मार्च 1926 में लार्ड रीडिंग कोटा आये और इन्होंने भी केडिट कोर और हरबर्ट कॉलेज को देखा। इन्होंने कोटा नरेश के लिए कहा कि "आपका प्रजा-प्रेम और हित चिन्तन प्रसिद्ध है। आपके राज्य से बाहर रियासतों से सम्बन्ध रखने वाले मामलों जैसे नरेन्द्र मण्डल और रईसों के कॉलेजों पर भी आपका बड़ा ध्यान है। महासमर (प्रथम विश्व युद्ध) के समय आपने साम्राज्य की भारी सहायता की थी,





उल्लेखनीय चन्दा दिया था तथा आत्मोत्सर्ग किया था। आपको जो उपाधियाँ मिली हैं वे इस बात की सूचक है कि सम्राट आपकी व्यक्तिगत सेवाओं का, जो आपने इस रियासत के रईस की हैसियत से की है, कितना आदर करते हैं। ऐसी बहुत कम रियासतें हैं जहाँ की सैनिक परम्परायें आपके राज्य से अधिक अच्छी हो।[14]

**लार्ड इर्विन** - इर्विन के समय कांग्रेस ने राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए घोर आन्दोलन किया था। 27 जनवरी 1929 को इर्विन कोटा आये। परम्परागत शिष्टाचार के अनुकूल वायसराय दरबार से और दरबार वायसराय से मिले। वायसराय ने कहा कि व्यापक प्रेम और अनुग्रह से मैं कोटे में घिर गया हूँ वह अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। राजा के व्यक्तित्व की उसकी प्रजा पर छाप लग जाती है यह उनमें प्रतिबिम्ब होने लगता है। दरबार जानते हैं कि वर्तमान ज्ञान और विज्ञान का जनता की आवश्यकता के लिए कैसे उपयोग किया जाता है। साथ ही ये उन प्राचीन रिवाजों और परम्पराओं की रक्षा की भी चिन्ता करते हैं जो राजपूत और राजपूताने की जादू भरी विशेषतायें हैं। आपके राज्य के बारह नरेन्द्र मण्डल में जहां अपने साथी नरेशों को नेक सलाह देने के लिए आप सदैव तत्पर रहते हैं या आपके विस्तृत मित्र मण्डल में जहां आप आदर और प्रेम उपार्जित कर चुके हैं, कोटा महाराव के नाम का बड़ा आदर है परन्तु चम्बल नदी के तट पर आपका नाम इससे भी अधिक कीर्ति का परिचायक है। आपके राज्य की शिक्षा की ताजा रिपोर्टों में मैंने पढ़ा है कि हिन्दी तथा दूसरी परीक्षाओं में तमाम राजपूताने के स्कूलों में आपके राज्य का स्थान बहुत ऊँचा है। कल हरबर्ट कॉलेज को देखने से मैंने आपके राज्य की शिक्षा संस्थाओं की उत्तमता की जो चर्चा सुनी थी, उसकी पुष्टि हो गई है। इस क्षेत्र में आपने बतला दिया है कि आधुनिक जीवन में जो शिक्षा का मार्मिक भाग है, उसको आप खूब समझते हैं।[15]

**कर्नल बेनर मेन** - कोटा राज्य का सर्वोच्च उत्तरदायी शासक पोलिटिकल एजेण्ट रहा। महाराव उम्मेद सिंह जी को शासन संचालन के पूर्ण अधिकार प्राप्त होने पर भी पोलिटिकल एजेण्ट से शासन कार्य में परामर्श किया जाता था। इन्होंने कहा कि कुछ समय पहले मेरे मित्र रायबहादुर मु. शिवप्रताप जी को रायबहादुरी की सनद भेंट करने का जब मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ तब मैंने जिक्र किया था कि उनकी नियुक्ति से अब तक राज्य में शिक्षा की सन्तोषप्रद उन्नति हुई है। गत चार वर्षों में छ: ग्राम पाठशालाएं और खुल गई हैं। मैंने अपने दौरे में देखा कि अधिकांश विद्यार्थी महाजनों और अफसरों के पुत्र हैं, परन्तु फिर भी पटेलों तथा सम्पन्न कृषकों के लड़के भी पाठशालाओं में आने लगे हैं। पहले लोग प्रारम्भिक शिक्षा से विमुख थे किन्तु अब लोग अनुभव करने लगे हैं कि नि:शुल्क शिक्षा से लाभ उठाना श्रेयस्कर है।

**कोटा राज्य में शिक्षा** - सन् 1893 से पहले राजधानी में एक लड़कों का तथा एक लड़कियों का स्कूल था और इलाके में 18 ग्राम पाठशालाएँ थी। सम्पूर्ण राज्य में 1085 विद्यार्थी शिक्षा पाते थे, सब मिलकर 34 अध्यापक थे और 8710 रुपया शिक्षा

विभाग पर व्यय होता था। सन् 1893 में मु. शिवप्रताप जी इस विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए और उन्होंने बड़ी लगन से शिक्षा प्रचार करना प्रारम्भ किया। इस समय ग्रामीण पाठशालाओं में हाड़ौती लिपि पढ़ाई जाती थी। सन् 1898 में प्रथम बार राज्य के सब स्कूलों में हिन्दी जारी की गई। आरम्भ में कुछ कठिनाई अवश्य हुई परन्तु एक वर्ष बाद ही इसका सुपरिणाम दृष्टिगोचर होने लगा। सन् 1903 में मि.टी.एल.रीड. प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट कॉलेज अजमेर को कोटा दरबार ने अपने राज्य की शिक्षा प्रणाली का निरीक्षण करने के लिए तथा भविष्य के लिए आयोजन तैयार करने के लिए आमंत्रित किया। उसने कोटा राज्य के प्राय: सब स्कूलों को देखकर तथा स्थानीय परिस्थिति का अध्ययन करके शिक्षा के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट पेश की जो स्वीकार की गई और तब से मि.रीड. की बताई हुई शिक्षा शैली से इस राज्य में शिक्षा दी जाने लगी। सन् 1906 में स्कूलों की तथा विद्यार्थियों की संख्या इतनी बढ़ गई थी। मु. शिवप्रताप जी के साथ दो इन्सपेक्टर नियुक्त हुये और शिवप्रताप जी डायरेक्टर ऑफ स्कूल्स कहलाने लगे।

**कोटा राज्य में अंग्रेजी शिक्षा** –1893 से पूर्व राजधानी में केवल एक ही अंग्रेजी विद्यालय था। सन् 1894 में राजपूतों के लिए एक पृथक विद्यालय स्थापित किया गया जिसका नाम नोबल्स स्कूल रखा गया। कर्नल चार्ल्स हरबर्ट कोटा राज्य का पोलिटिकल एजेण्ट रह चुका था एवं महाराव उम्मेद सिंह जी का मित्र था। इसी वर्ष नोबल्स स्कूल, हरबर्ट हाई स्कूल में सम्मिलित कर दिया गया। अनुभव से सिद्ध हुआ कि जाति विशेष के लिए अलग शिक्षा संस्था हितकर नहीं है। मु. शिवप्रताप जी ने विज्ञान की प्रयोगशालाओं को सम्पन्न तथा पुस्तकालय को उन्नत करके इस संस्था को सर्वांग सुन्दर बना दिया। सन् 1921 से हरबर्ट हाई स्कूल इन्टर कॉलेज कहलाने लगा।

**कोटा राज्य में स्त्री शिक्षा** – बारां में जनता का स्त्री शिक्षा के प्रति विरोध था कि स्कूल में लड़कियों को अक्षर शिक्षा नहीं दी जा सकती थी। सन् 1905 में महारानी जाडेचीजी ने स्त्री शिक्षा के लिए पच्चीस हजार रुपये प्रदान किये जिससे वर्तमान महारानी कन्या पाठशाला की स्थापना हुई।

भारत में शिक्षा प्रचार का सूत्रपात सर्वप्रथम कम्पनी सरकार ने किया था। मि. वारेन हेस्टिंगज को भारतीय राज्य का प्रथम गवर्नर जनरल बनाया गया। उसने कई कॉलेज स्थापित करवाये तथा हिन्दी उर्दू की पुस्तकें लिखवायी। उच्च शिक्षा में अंग्रेजी माध्यम लार्ड बेन्टिक के शासन में रखना निश्चित हुआ। लार्ड मेयो (तत्कालीन वायसराय) ने 1870 में राजपूताने में मेयो कॉलेज का शिलान्यास किया। भारत में 19वीं–20वीं शताब्दी में कोटा राज्य में नवाब फैजअली ने अंग्रेजों के सम्पर्क में आकर शिक्षा के महत्त्व को समझा साथ ही उर्दू, फारसी के साथ–साथ अंग्रेजी भाषा को महत्त्व देने लगा। कम्पनी सरकार ने भारतीय राज्यों में आधुनिक शिक्षा के प्रचार के लिए कोटा राज्य के प्रबन्ध की बागडोर नवाब फैजअली को सम्भला दी। कोटा राज्य में लड़कों एवं



लड़कियों के पृथक विद्यालय खोले। कोटा राज्य ने मेयो कॉलेज की स्थापना, छात्रालय निर्माण, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, नरेन्द्र मण्डल आदि में सराहनीय आर्थिक योगदान दिया। लार्ड लिटन द्वारा मेयो कॉलेज की शिक्षा का यह भी एक उद्देश्य बताया है कि विद्यार्थी अपने देश एवं धर्म से प्रेम करना सीखें। अर्थात् भारतीय सरकार ने अंग्रेजी शिक्षा में भी देशप्रेम और धर्म के महत्त्व को बताया। शत्रुशाल जी के बाद महाराव उम्मेदसिंह जी ने साम्राज्ञी विक्टोरिया से के.सी.एस.आई. की उपाधि प्राप्त की जो राजभक्ति का प्रतीक होने के साथ स्वयं के व्यक्तिगत गुण, शिक्षित होकर शासन के अधिकारों को जानते हुए ऊँचा सम्मान प्राप्त करना था। अर्थात् भारतीय सरकार ने शासन के अधिकार भी प्रत्येक राजभक्ति करने वाले शासक को नहीं दिये बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त, शासन की समझ रखना, प्रजा हितेषी होना, प्रजा प्रेमी आदि गुणों से युक्त होने पर ही ऊँचा सम्मान प्राप्त किया। महाराव उम्मेद सिंह जी को उनकी पश्चिमी शैली की शिक्षा के लिए उन्हें सन् 1914 में आनरेरी लेफ्टिनेन्ट कर्नल नियत किया। सन् 1901 में चीक्स कॉलेजों के सुधार, हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास, स्त्रियों के मेडिकल कॉलेज आदि उत्सवों में सम्मिलित होकर शिक्षा में आर्थिक योगदान दिया। लार्ड कर्जन पहला वायसराय था जिसने कोटा राज्य का दौरा किया। जिसमें कर्जन ने महाराव के शासक कार्य को राजपूताना की कोटा रियासत इतिहास में सुन्दर बताया है। लार्ड लिटन ने कोटा महाराव के लिए कहा कि कोटा राज्य की प्रजा बड़ी कृतज्ञ है और अपने शासक से प्रेम करती है। भारतीय सरकार ने कोटा रियासत के शासकों के नि:स्वार्थ भाव से जनहित में चिन्तन के कारण प्रेम और कृतज्ञता के पात्र बताया है।

**लार्ड रीडिंग** कोटा आये एवं कोटा नरेशों को कोटा रियासत का रईस बताया उसमें यहाँ के शासकों द्वारा की गई व्यक्तिगत सेवाओं के कारण उपाधियों से नवाजा गया यह बताता है कि भारतीय सरकार ने रियासतों के शासकों को उपाधियों से आकर्षित किया हुआ था। लार्ड इर्विन के 1929 में कोटा आने पर कोटा दरबार में कहा कि दरबार जानते हैं कि वर्तमान ज्ञान और विज्ञान का जनता की आवश्यकता के लिए कैसे उपयोग किया जाता है। राज्य की शिक्षा रिपोर्टों में तमाम राजपूतानों, कोटा राज्य का स्थान परीक्षाओं में बहुत ऊँचा बताया है। कोटा नरेश के लिए कहा गया कि इस क्षेत्र (शिक्षा) में आपने बतला दिया कि आधुनिक जीवन में शिक्षा के मार्मिक भाग को आप खूब समझते हैं। पाठशालाओं में सभी वर्ग के विद्यार्थियों का आने में रुझान बढ़ा। पहले लोग प्रारम्भिक शिक्षा से विमुख थे, बाद में अनुभव करने लगे कि नि:शुल्क शिक्षा से लाभ उठाना श्रेयस्कर है। प्रारम्भिक शिक्षा में नि:शुल्क शिक्षा आज भी विद्यमान है।

भारत सरकार ने कोटा राज्य में शिक्षा के प्रचार के साथ शिक्षा के महत्त्व को कोटा शासकों को समझाया। कोटा के शासक शिक्षा को लेकर सचेत हुए और अपनी आने वाली पीढ़ियों एवं प्रजा के प्रति शिक्षा जागरूकता बढ़ी। कोटा शासकों का भारतीय

सरकार को आर्थिक सहयोग करना यह दर्शाता है कि हमारे शासकों ने भारतीय सरकार के प्रत्येक उस कार्य में सहायता की है जिससे प्रजा व देश को लाभ पहुँचे। प्रजा अंग्रेजी शिक्षा एवं हिन्दी, उर्दू भाषाओं से अपना विकास करने में सक्षमता बढ़ी। प्रजा को अपने शासकों को उपाधियों से अलंकृत होते देख उन्हें भी अच्छे विद्यालयों और कॉलेजों में पढ़ने की इच्छा प्रबल हुई। भारतीय सरकार ने उच्च शिक्षित शासकों को अधिक महत्त्व दिया है यह हमारा ऐतिहासिक रिकार्ड बताता है। क्योंकि उनका मानना था कि उच्च शिक्षित व्यक्ति को शासन के अधिकारों की समझ अधिक होगी। इस शोध प्रपत्र के शोध कार्य से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि शिक्षा के महत्त्व ने प्रत्येक काल वर्ग में व्यक्ति को सम्मान दिलवाया है। शासन कार्य को भलीभांति समझने की क्षमता पैदा की है। भारतीय सरकार ने अपने लाभ के लिए ही सही किन्तु अपरोक्ष रूप से भारतीय जनता को भी लाभ पहुँचाया है। यहाँ के शासकों ने माना कि राजभक्ति की है किन्तु इनके शिक्षा में आर्थिक योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। कोटा राज्य के शासकों की गणना रईसों में होती थी। इस रईसी के कारण प्रत्येक शिक्षा सम्बन्धित एवं अन्य कार्यों में इनको ससम्मान आमंत्रित किया जाता था। कोटा राज्य के भारतीय सरकार के शिक्षा सम्बन्ध बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रबल रहे।

## सन्दर्भ


1. *दफ्तर हिसाब बजट सम्वत् 1940*
2. *मेजर डब्लू. स्ट्रेटन - ए शॉर्ट हिस्ट्री आफ दी कोटा स्टेट, पृ. 35*
3. *महकमा खास, सन् 1937, फौजदारी नं. 15*
4. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् 1976 पृ. 5*
5. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् 1956 पृ. 1*
6. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सन् 1964 पृ. 1-3*
7. *उपरोक्त, सम्वत् 1958, पृ. 1*
8. *उपरोक्त, सम्वत् 1971, पृ. 2*
9. *उपरोक्त, सम्वत् 1972, पृ. 3*
10. *उपरोक्त, सम्वत् 1972, पृ. 6*
11. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् 1959 पृ. 6-7*
12. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् 1981 पृ. 7-11*
13. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् 1982 पृ. 7*
14. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् 1985 पृ. 6-7*
15. *एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट सम्वत् 1959 पृ. 5-12*
16. *डॉ. जगतनारायण, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2008*

Rajasthan HISTORY CONGRESS
32[ND] SESSION
$22^{ND}$-$24^{TH}$ DECEMBER, 2017

S.S. JAIN SUBODH P.G. (AUTONOMOUS) COLLEGE
Rambagh Circle, Jaipur, Rajasthan

# CERTIFICATE

THIS IS TO CERTIFY THAT

PROF./DR./MR./MS. Prabhawati Malav

OF Research scholar, vardhman Mahaveer open university, Kota

HAS PARTICIPATED / PRESENTED RESEARCH PAPER ENTITLED "19 वीं से 20 वीं शताब्दी में कोटा दरबार एंव भारतीय सरकार के मध्य शिक्षा सम्बन्धों पर ऐतिहासिक समीक्षा

IN THE $32^{ND}$ SESSION OF RAJASTHAN HISTORY CONGRESS, ORGANISED BY S. S. JAIN SUBODH P.G. (AUTONOMOUS) COLLEGE, JAIPUR ON $22^{ND}$ - $24^{TH}$ DECEMBER, 2017.

**Prof. K. B. Sharma**
Principal
S.S. Jain Subodh P.G. (Autonomous) College
Jaipur

**Dr. Anshul Sharma**
Local Secretary
S.S. Jain Subodh P.G. (Autonomous) College
Jaipur

**Prof. S.P. Vyas**
Secretary
Rajasthan History Congress

# PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH

AN INTERNATIONAL JOURNAL

PRINT ISSN No. 2250 - 1991
JOURNAL DOI : 10.36106/paripex

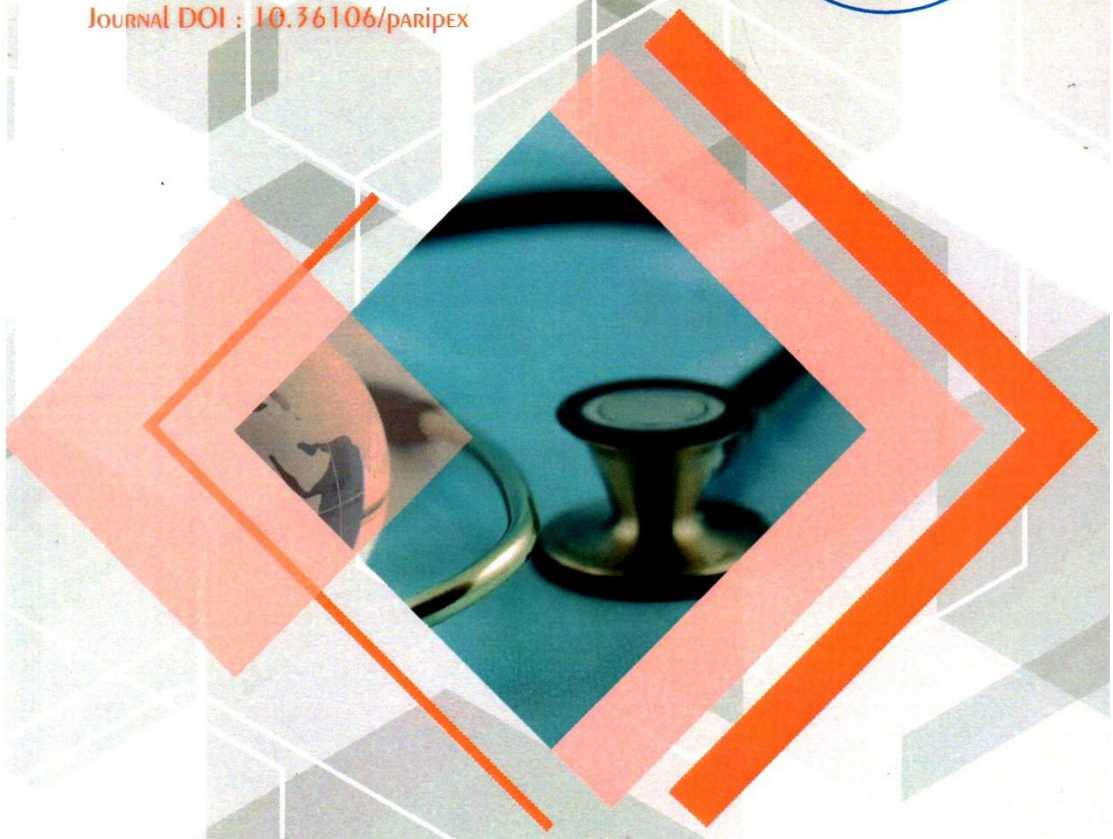

JOURNAL FOR ALL SUBJECTS

VOLUME-10 | ISSUE-12 | DECEMBER-2021

A PEER REVIEWED, REFERRED, REFEREED & INDEXED INTERNATIONAL JOURNAL

UGC SR. No. 47432
IMPACT FACTOR - 6.941
₹ 500

# Certificate of Publication

Print ISSN No : 2250-1991

This is to certify that

Mr./Mrs./Ms./Prof./Dr. **Prabhavati Malav**

has contributed a paper as author/ Co-author to

**PARIPEX- INDIAN JOURNAL OF RESEARCH**

*A Peer Reviewed, Referred, Refereed & Indexed International Journal*

Title "**Rajasthani Riyaasat Ki Pramukh Lok Kathaon Mein Varnit Sanskritik Pahloo : Ek Adhyayan**"

and has got published in volume **10**, Issue **12**, **December-2021**

The Editor in Chief & The Editorial Board appreciate the Intellectual Contribution of the author/co-author

Executive Editor | Editor in Chief | Member, Editorial Board

# INDEX


| Sr. No. | Title | Page No. |
|---|---|---|
| 1 | **Study To Evaluate ST-T Changes In Myocardial Infarction Patients After Thrombolysis With Streptokinase**<br>Aditya Mehta | 1-1 |
| 2 | **Adiponectin: A Novel Marker On Urban Epidemic- Obesity**<br>Dr. Vinita Singh, Dr. Sneha Wadalkar, Dr. Z.G. Badade | 2-4 |
| 3 | **Clinical Profile And Brain Imaging of CVT - A Cross Sectional Study**<br>Prof. (Dr.) D. Anbarasu, Dr. Amrith S Vysakh | 5-7 |
| 4 | **A Study of Clinical Profile of Patients With Haematological Abnormalities In Decompensated Chronic Liver Disease In Kanchipuram**<br>Dr Anbazhagan G, Dr Chakradhar Arepalli, Dr Sarika N Holla, Dr Uppuluri Vagdevi | 8-9 |
| 5 | **Study of Lipodystrophy And Lipoatrophy In Human Immuno Deficiel.Incy Virus (HIV) Patients On Anti Retroviral Therapy**<br>Dr. Harmeet Singh, Dr Sachin Chittawar, Dr. K.K.Kawre | 10-12 |
| 6 | **Prevalence of Dental Caries And Oral Hygiene Status Amongst Juvenile Prisoners And Abandoned Children In Government Organizations In Ahmedabad City, Gujarat.**<br>Pooja Chaubey, M Ganesh | 13-14 |
| 7 | **A Study of Estimation Serum Homocysteine Levels In Thyroid Disorders In Patients In A Tertiary Care Hospital In Kachipuram**<br>Dr. Nandha Kumar, Dr. Mohanraj, Dr. Ponugoti Manoj Kumar, Dr. Mohammed Thanish | 15-16 |
| 8 | **A Case Report of Carcinoma Cecum Presenting As Small Bowel Obstruction**<br>Dr. Vaishnavi PE, Dr. Pooja Patnaik | 17-18 |
| 9 | **A Rare Case Report On Adult Intussusception Caused By Leiomyoma of Ileum**<br>Dr. Pooja Patnaik, Dr. Vaishnavi P.E. | 19-20 |
| 10 | **Case Series of Xanthogranulomatous Prostatitis- A Mimiker of Carcinoma Prostate**<br>Dr Prafull B Mishra, Dr Laxmikant Sharma, Dr Sunil Kumar, Dr Rakesh Vadher | 21-22 |
| 11 | **Strabismus - Its Effect On Amblyopia**<br>Khushbu Uppal | 23-23 |
| 12 | **Acute Small Bowel Obstruction In Crohn's Disease.**<br>Dr. K.Anandan, Dr. N.Hariprasad, Prof.R.Kannan | 24-25 |
| 13 | **An Empirical Analysis of The Growth With Stability In India**<br>Dr. Kishor P. Kadam | 26-28 |
| 14 | **Comparison of Self-Concept And Self-Sufficiency Among Hearing Impaired Visually Impaired And Orthopedically Impaired Persons**<br>Dr. Amalesh Adhikari | 29-31 |
| 15 | **Role of Public Relations In Public Healthcare System**<br>K.Eswaramma | 32-34 |
| 16 | **2-Aminomethylpyridine Nickel(II) Complexes-Synthesis, Molecular Structure And Catalysis of Ethylene Polymerization**<br>Dr. D.K.Tyagi, Dr. Raj Kumar | 35-36 |
| 17 | **Rajasthani Riyaasat Ki Pramukh Lok Kathaon Mein Varnit Sanskritik Pahloo : Ek Adhyayan**<br>Prof. Dr. Kamlesh Sharma, Prabhavati Malav | 37-37 |
| 18 | **Odishan Cultural Artifacts And Traditional Packaging**<br>Dr. Sasmita Kamila | 38-39 |
| 19 | **Knowledge Management Challenges For An Effective Pricing Policy In Logistics Industry (Freight Forwarding)**<br>Manoj Prakash, Dr. Venu Thyagarajan | 40-43 |
| 20 | **Music And Nature**<br>Dr. Sandip Kumar Raut | 44-45 |
| 21 | **Visual Perception In Visual Communication: A Study On Awareness Advertisement Through Print Media During Covid-19 Pandemic Situation In India**<br>Gautam Dutta | 46-47 |
| 22 | **Education of The Girl Child: A Strong Steps Towards Women Empowerment.**<br>Tejaswini Hantal | 48-51 |
| 23 | **Rashtrabhasha "Hindi" Ki Vishwa Star Par Bhumika Ka Adhyayan**<br>Dr Sumitra | 52-52 |

PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH | Volume - 10 | Issue - 12 |December - 2021 | PRINT ISSN No. 2250 - 1991 | DOI : 10.36106/paripex

ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

# राजस्थानी रियासत की प्रमुख लोक कथाओं में वर्णित सांस्कृतिक पहलू : एक अध्ययन

KEY WORDS: लोक साहित्य, संस्कृति, समुदाय, कथाएँ, विधाएँ।

**प्रो. डॉ. कमलेश शर्मा** वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

**प्रभावती मालव** वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

**ABSTRACT**

राजस्थानी संस्कृति कई विधाओं को समेटे हुए लोक समुदाय को प्रफुल्लित करने का एक सुकून है। यहाँ की संस्कृति में लोक साहित्य, लोक गीत, लोकनाटय, संगीत, वाद्य, गाथाएँ विद्यमान है जो वास्तविक जीवन की झलक को भी गंभीरता, मृदुलता से प्रस्तुत करती ह। जन समुदाय में प्रचलित अज्ञात व्यक्ति द्वारा रचित कहानी जिसमें भाषा, विचार और भावों की सरलता उसे लोककथा कहा गया है जो परम्परागत वसीयत के रूप में हमें प्राप्त हुई है। लोक कथाएँ देश के सभी क्षेत्रों में का साहित्यिक हिस्सा होती है, परन्तु राजस्थान इसका मुख्य केन्द्र है। लोककथाओं में बलिदान, समर्पण, मनोरंजन, शिक्षा, प्रेम, सौन्दर्य, घृणा, उपदेश, मनोविज्ञान धार्मिकता सभी पहुलओं का अलग–अलग तरीके से करने के लिए क्षेत्रीय लोक कथाओं का हृदयंगम करना जरूरी है। ये रूचिपूर्ण लोक कथाएँ जनसमुदाय के मन मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ती है। इन कथाओं से सामाजिक बुराइयों, कुरीतियों को मिटाकर जनमानस के पटल पर एक स्वच्छ छवि का निर्माण कर सकते है।

प्रस्तावना –

लोक साहित्य में कहीं नृत्य, कहीं संगीत, वाद्य, कहीं गीत, कही गाथाएँ तो कहीं नाट्य रूप–बिरंगे रूपों में झूमते से नजर आते हैं, लोक साहित्य इन कई विधाओं को समेटे हुए हैं। इन्हीं में से लोकप्रिय विधा है लोक कथाएँ।

लोक अथवा जन समुदाय में प्रचलित किसी अज्ञात व्यक्ति दवारा रचित कोई परम्परागत कहानी जिसमें भाषा, विचार और भावों की सरलता होती है। ये कहानियाँ मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों, परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोक कथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरित्रों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण है। एक ही कथा विभिन्न सन्दर्भों, अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती है। लोकगीतों की भाँति लोक कथाएँ भी हमें परम्परागत वसीयत के रूप में प्राप्त है। लोककथाओं की प्राचीनता के संदर्भ में, इन लोक कथाओं का प्रादुर्भाव कब, कहाँ, कैसे किसके दवारा हुआ यह बताना गहन अनुसंधान का विषय है लेकिन कथाओं की प्राचीनता को ढूँढते हुए अंत में अन्वेषक ऋग्वेद के उन सूक्तों पर पहुँचकर रूक गए हैं जिनमें कथोपकथन के माध्यम से "संवाद सूक्त" कहे गए हैं। पीछे ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों में भी परम्परा विद्यमान है। किन्तु इन सबसे पूर्व कोई कथा कहानी थी ही नहीं ऐसा नहीं कहा जा सकता, प्रश्न उठता है जो कथाएँ उन सब में आई है उनका उदगम कहां है? जहां उनका उदगम होगा लोक कथाओं का भी वहीं आरंभिक स्थान माना जाना चाहिए। पंचतंत्र की बहुत सी कथाएँ, लोककथाओं के रूप में जन जीवन में प्रचलित है। किन्तु यह भी सत्य है कि जितनी कथाएँ लोक जीवन में मिल जाती है, उतनी पंचतंत्र में भी नहीं मिलती।

लोक कथाएँ तो हमारे देश के सभी भागों में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है, परन्तु राजस्थान तो इनका प्रमुख केन्द्र है। यहाँ के नर–नारियों ने बड़ी ही रूचिपूर्ण सरस कथाएँ इस प्रदेश में छोड़ दी है। इतिहास में तो कुछ लोगों की जीवन कहानी रहती है परन्तु लोक हृदय पर ऐसे अगणित व्यक्ति अमिट रेखाएँ खींच जाते हैं, जिनका इतिहास में कहीं जिक्र भी नहीं मिलता। राजस्थानी लोक कथाएँ अपनी विशेषता लिए हुए हैं। लोक समुदाय के जीवन का अध्ययन करने के लिए यहाँ की जन कथाओं को हृदयंगम करना जरूरी है। इनमें वास्तविक जीवन की झलक भी है, और अर्थ की गंभीरता भी, मृदुलता भी है और निर्देश भी। राजस्थानी लोक कथाओं के विविध प्रकार है। दुनियाँ के सारे रंग, आनन्द, सुकून, जनकल्याण, धार्मिकता, मनोविज्ञान, मानवता, नीति, सदाचार, शोषण, समानता, असमानता, लिंगभेद, त्याग, बलिदान, समर्पण, मनोरंजन, शिक्षा, प्रेम, उपदेश, सौन्दर्य, घृणा इनमें समाहित है।

राजस्थानी जनकथाओं में वीरता की कहानियाँ सर्वाधिक है। ये कहानियाँ ही राजस्थान का प्राण है। राजस्थान वीरता के आदर्शों से ओत–प्रोत है गोर बादल, अमरसिंह राठौड़, सादूलों भाटी आदि। इन कथाओं में कैसे–कैसे शौर्य एवं बलिदान के आदर्श प्रस्तुत किये है, मनुष्य का स्वभाव हमेशा से कीर्ति के लिए प्रयासरत रहा है।

बाल कथाएँ नन्हें शिशुओं को सुनाई जाती है, जो बहुत छोटी होती है इनमें किसी प्रकार की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता। कागलो पर कोचरी, चीड़ो–चीड़ी आदि।

बाल जगत की परियों की कहानियाँ बना पाणी को महल, दूध में साँप, जिन्नां की बस्ती, भूत सेरणी आदि।

धार्मिक कथाएँ आसा भागोती, मैंगला, गोरी, प्रेम कथाओं में ढोला मरवण, जगमल भारमा, रूठी–राणी, मूमल–महिन्द्रा आदि है। इन प्रेम कथाओं में वीरता, बिरह, मधुर मिलन, वियोग आदि का समावेश है। परेशानियों में भी उच्चतम जीवन की समीक्षा करना इन कहानियों का लक्ष्य है।

राजस्थान की लोक कथाओं में ढोला मारू प्रेम गाथा विशेष लोक प्रिय रही है। इस प्रेमाख्यान का नायक ढोला, नरवर के राजा नल का पुत्र था जो कछवाहा राजवंश से सम्बन्धित है जिसे इतिहास में ढोला व सातह कुमार के नाम से जाना जाता है। ढोला का विवाह बालपन में जांगल देश (बीकानेर) के पूँगल नाम ठीकाने के स्वामी पंवार राजा पिंगल की पुत्री मारवणी के साथ हुआ था। उस वक्त ढोला 3 वर्ष का, मारवणी 1) वर्ष की थी। इसलिए मारवणी को ढोला के साथ नरवर नहीं भेजा गया था। बड़े होने पर ढोला की एक और शादी मालवणी के साथ हो गयी और ढोला बचपन की शादी को लगभग भूल चुका था। मारवणी को ढोला के बारे में जानकर उसे पाने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। इस प्रेम संघर्ष में मारवाणी का अपने पति के प्रति विरह, प्रेम, जीवन दान, षड़यन्त्र आतिद चक्रव्यूह से निकलकर ढोलामारू की कहानी इन लोक कथाओं का महत्वपूर्ण हिस्सा बनी। इस लोक कथा में बाल विवाह का गम्भीर दुष्परिणाम मारवणी को झेलना पड़ा। इस वंश (कछवाहा वंश) का एक राजकुमार दुतहे राय राजस्थान आया और उसके पुत्र काकिल देव ने मीणा को परास्त कर आमेर पर अपना राज्य स्थापित किया। इसके वंशजों में स्व. भैरोसिंह जी शेखावत व श्री देवसिंह शेखावत की धर्म पत्नि श्रीमती प्रतिभा पाटिल इस देश की राष्ट्रपति रही।

रूठी रानी की प्रेम कथा में राजकुमार उमादे, राव मालदेव व दासी भारमली की त्रिकोणिय कहानी में रानी उमादे जीवन भर, राव से रूठी रही एवं उनके निधन पर जलती चिता में प्रवेश कर सती हो गई। यह कहानी हमें सोचने पर विवश करती है कि यह कैसा प्रेम है जो जीवन रहते पा ना सके और मरकर सती प्रथा का सहारा लिया गया।

राजस्थान रियासत की प्रमुख कथाओं में जन समाज की अच्छाई–बुराई सभी कुछ इनमें मिलेगी। दोनों का सम्मिश्रण सांस्कृति पहलु है। विविध मान चरित्र इन कथाओं में होते है, इनमें सबसे बड़ा तत्व कौतुहल, जिज्ञासा, घटनाक्रम, मनोरंजन आदि का होता है। इन लोक कथाओं के माध्यम से हम समाज की कुरीतियों को मिटा कर समाज के मानस पटल पर एक स्वच्छ छवि का निर्माण कर सकते हैं। चरित्र निर्माण मानवीय मूल, त्याग, बलिदान राजस्थान संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलुओं की रक्षा कर सकते हैं।

सन्दर्भिका :–

1. डॉ. अभिनव कमल रैना : राजस्थान संस्कृति के विविध आयाम (पधारो म्हारे देस) अभिनव प्रकाशन, अजमेर
2. देवी सिंह मंडावा : कच्छवाहों का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2001
3. चेतन शर्मा : उपनिष्दों की कथाएँ, पाराशर पुस्तक भण्डार, 2004
4. अर्जुन सिंह शेखावत : राजस्थानी व्रत कथायां साहित्य अकादमी
5. सावित्री परमार : लोक संस्कृति के शिखरं श्याम प्रकाशन जयपुर, 1997

शोध पत्रिका

1. भारत की लोक कला निधि, शंकर भाग प्रथम, सी.बी.टी प्रकाशन पैठछ 81.7011.053.7 प्रकाशित वर्ष 1998

शोध पत्र

1. डॉ. ज्योत्सना रावत: गढ़वाली लोक गीत : एक परिचय, 2013, इन्टरनेशनल सोशिआलॉजी एण्ड ह्यूमिनिटिज

NATIONAL CONFERENCE
SSV - 2017
शास्त्रों में विज्ञान
(Science in Scriptures)
प्रभावती मालव
(शोधार्थी इतिहास)
(वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा)
आपस्तम्ब एवं बोधायन
शुल्ब सूत्र को हम पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जाते हैं। खोज 3000 वर्ष पूर्व की जा चुकी थी।
$3^2 + 4^2 = 5^2$
वेदांगा ज्योतिष
में सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रों, सौर मण्डल के ग्रहों के विषय में जानकारी मिलती है। आर्यभट्ट ने वेद, उपनिषद का अध्ययन करने के बाद ही कहा था कि 'पृथ्वी अपनी धूरी पर रहते हुए सूर्य की परिक्रमा पूरी करती है' आज का आधुनिक विज्ञान भी यह मानता है।
परमाणु शास्त्र
ऋषि कणाद ने वेदों में लिखे सूत्रों के आधार पर परमाणु सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। विख्यात इतिहासज्ञ टी.एन. कोले बुक ने लिखा है कि अणुशास्त्र में आचार्य कणाद तथा भारतीय शास्त्रज्ञ यूरोपीय वैज्ञानिकों की तुलना में विश्व विख्यात थे।
प्रस्तावना
शास्त्र क्या है ?
किसी कला, विद्या या विशिष्ट विषय के मौलिक सिद्धान्तों से लेकर विषय वस्तु के सभी आयामों जिसमें सभी अंगों, उपांगों, प्रक्रियाओं आदि का वैज्ञानिक ढंग से वर्णन और विश्लेषण होता है तथा उन तथ्यों पर आश्रित होता है जो हमें अपने अनुभवों, निरीक्षणों आदि के आधार पर प्राप्त होते हैं वह विज्ञानशास्त्र होता है। इसमें वस्तुओं का सम्बन्ध प्रकृति से होता है।
परन्तु आध्यात्मिक तथ्यों का विवेचनात्मक स्वरूप जो हमें अनुभवों निरीक्षणों आदि अनुशीलन या मनन करने पर विदित होते हैं, जो विस्तृत होकर उस सीमा की ओर बढ़ते हैं जहाँ उसका सम्बन्ध हमारी आत्मा और मनोभावों से स्थापित होता है। विज्ञान के अस्तित्व की सूचना हमें प्राचीन शास्त्रों से ही मिलती है।
इसी संदर्भ में आधुनिक ज्ञान–विज्ञान तथा तकनीकी मूल्यों से अनुप्रेरित गणित, चिकित्सा, वनस्पति, ज्योतिष, भौतिकी, रसायन आदि विज्ञान विषयों का दिग्दर्शन प्राचीन शास्त्रों में ही होता है।
यजुर्वेद
दशमलव प्रणाली के अस्तित्व तथा तेरह शून्यों तक संख्या का उल्लेख मिलता है।
नासा व इसरो
ब्रह्मांड की ध्वनियों के रहस्य के बारे में वेदों से ही जानकारी मिलती है इन ध्वनियों को वैज्ञानिक संगठनों ने भी माना है।
सुश्रुत संहिता
इस ग्रंथ में शल्य सर्जरी से सम्बन्धित 125 से भी अधिक उपकरण एवं 300 प्रकार की सर्जरियों का उल्लेख है। 2600 वर्ष पूर्व यह कार्य सुश्रुत ने कर दिखाया था। जो आधुनिक विज्ञान 400 वर्ष पूर्व से ही करने लगा है।
अगस्त संहिता
संस्थाप्य मृण्मये पात्र ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम।
छादयेच्छिखिग्रीवेनचार्दभिः काष्ठा पांसुभिः।।
दस्ता लोष्टोनिधात्वयः पारदाच्छादितस्ततः।
संयोगाज्जायते तीजो मित्रा वरूण संज्ञितम्।।
निष्कर्ष
शास्त्रों से वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान परिलक्षित होता है, दशमलव प्रणाली, शून्य परमाणु सिद्धान्त, ध्वनि संकेत, शल्य क्रिया, पाइथागोरस प्रमेय, आदि खोजों का प्रयोग आज भी हो रहा है। यद्यपि यह ज्ञान मंत्रों, स्त्रोतों, स्तुतियों, श्लोकों, ऋचाओं के एक जटिल प्रणाली में लिपिबद्ध किया गया था।
संदर्भ ग्रंथ
1. यजुर्वेदी (वाजस्नेही संहिता)
2. आपस्तम्ब शुल्ब सूत्र
3. बोधायन शुल्ब सूत्र
4. अगस्त संहिता
5. Joyser, Sanskrit Civilization P. 48 उद्धृत आर्य भटीयम

स्वामी विवेकानन्द शोधपीठ, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

राष्ट्रीय संगोष्ठी

"विज्ञान, आध्यात्म एवं विवेकानन्द"

(SSV-2017)

19 – 20 सितम्बर 2017

( चतुर्दशी – अमावस्या, कृष्ण पक्ष, अश्विन माह, विक्रम सम्वत् 2074 )

आयोजक

सह आयोजक

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री/श्रीमती/~~श्री/डॉ./प्रो.~~ प्रभावती मालव, शोधार्थी इतिहास

संस्था वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान ने

"विज्ञान, आध्यात्म एवं विवेकानन्द" विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में ~~आमंत्रित वक्ता/प्रतिनिधि/~~प्रतिभागी के रूप में दिनांक

19–20 सितम्बर 2017 को भाग लिया एवं शोध पत्र हेतु ~~आमंत्रित व्याख्यान/मौखिक/~~पोस्टर द्वारा विषय "शास्त्रों में विज्ञान"

पर प्रस्तुतीकरण करते हुए "प्रथम स्थान" प्राप्त किया। ~~पर प्रस्तुतीकरण किया।~~

डॉ. एन. एल. हेड़ा
आयोजन सचिव

डॉ. संदीप सिंह चौहान
कुलसचिव

डॉ. भवानी सिंह
संयोजक

# SHRI NATNAGAR SHODH SAMSTHAN

*(The Raghubir Library & Research Institute)*

Dr. Raghubir Sinh Marg, Sitamau, Dist. Mandsaur (M.P.)

Founder

## National Seminar

**12th to 14th November 2016**

## *Certificate*

*This is to certify that ~~Mr./~~Ms./Dr.* प्रभावती मालव, शोधार्थी

*Department of* वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*College/University* (राजस्थान) *.....attended/Participant in the National Seminar on.*

*"The Indian States and their Contribution in Art, Architecture, Literature and Cultural History (Through the Ages)"*

*and ~~He~~/She ~~Chaired/co-chaired a session~~/presented paper*

*entitled* राजस्थानी रियासत की प्रमुख लोककथाओं में वर्णित सांस्कृतिक पहलु: एक अध्ययन'

Dr. M.S. Ranawat
Coordinator/Director

P.S. Rathore
Chairman

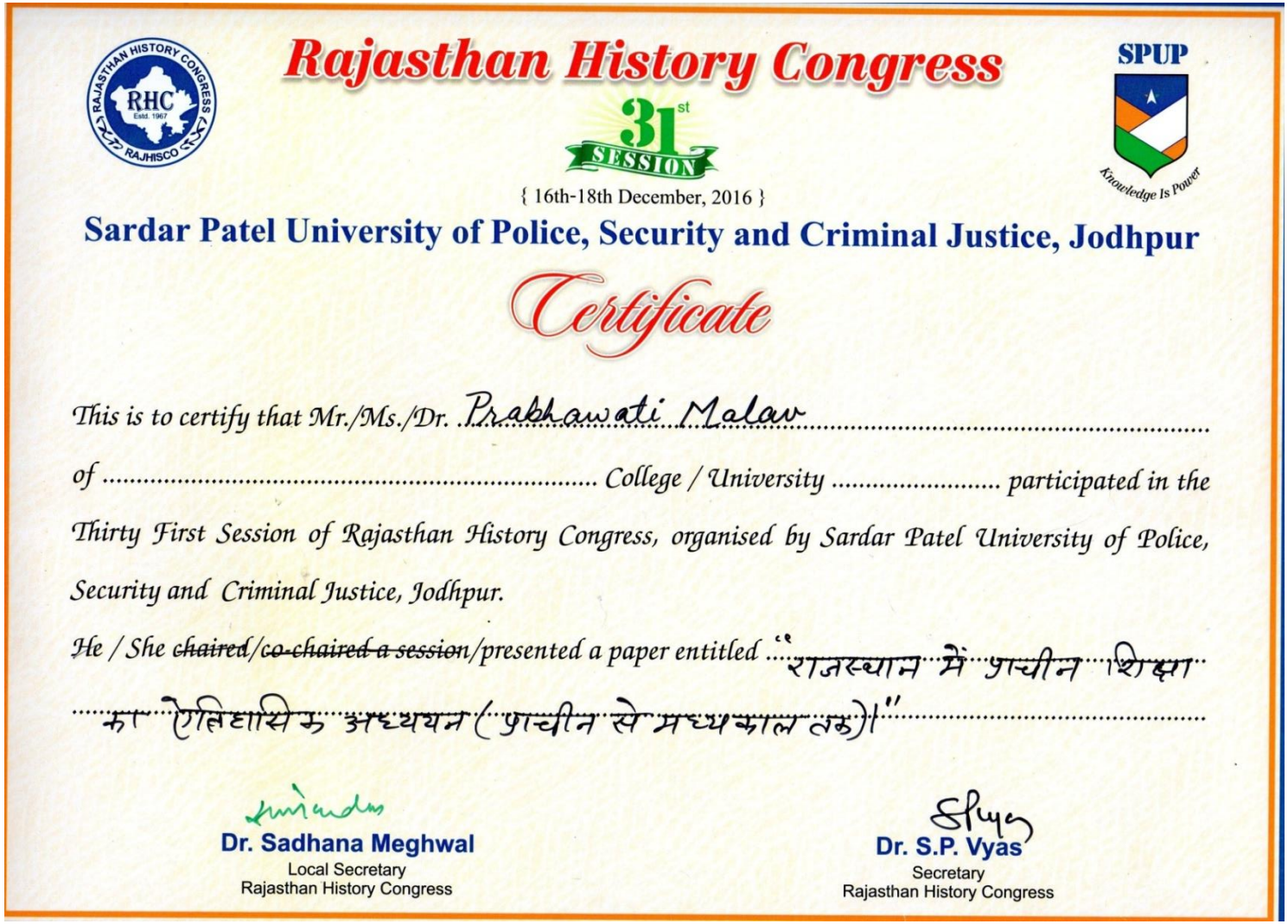

# Rajasthan History Congress

31st SESSION

{ 16th-18th December, 2016 }

## Sardar Patel University of Police, Security and Criminal Justice, Jodhpur

SPUP

Knowledge Is Power

# Certificate

This is to certify that Mr./Ms./Dr. Prabhawati Malav

of .................... College / University .................... participated in the Thirty First Session of Rajasthan History Congress, organised by Sardar Patel University of Police, Security and Criminal Justice, Jodhpur.

He / She ~~chaired~~/~~co-chaired a session~~/presented a paper entitled "राजस्थान में प्राचीन शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन (प्राचीन से मध्यकाल तक)"

**Dr. Sadhana Meghwal**
Local Secretary
Rajasthan History Congress

**Dr. S.P. Vyas**
Secretary
Rajasthan History Congress